



आधुनिक काव्य प्रवृत्तिया . एक पुनर्मूल्याकन

डा० गणेश खरे



# आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियां : एक पुनर्मूल्यांकन

डा० गणेश खरे  
शासकीय दिग्विजय महाविद्यालय,  
राजनांदगांव, म० प्र०

पुस्तक संस्थान  
१०९/५० ए नेहरू नगर, कानपुर १२

Adhunik Kavya Pravratayan ek Punarmulyankan  
by Dr Ganesh Khare  
Price Rs Twenty five only

पुस्तक लेखक	आधुनिक काव्य प्रवर्तिया एक पुनमूल्यांकन डा० गणेश खरे
प्रकाशक मुद्रक	पुस्तक सस्थान १०६/५० ए, नेहरू नगर, कानपुर-२०८०१२ विवेक प्रिण्टर्स ब्रह्मानगर कानपुर-२०८०१२
आवरण मुद्रक	भारत सिल्क स्पीन ब्रह्मानगर कानपुर-२०८०१२
पुस्तक बंध संस्करण	अदुल गफूर एण्ड सस, बनसगज कानपुर प्रथम, १९७६
मूल्य	पच्चीस रुपये

## भूमिका

द्वितीय-युग के बाद हिन्दी कविता विचार और शिल्प, दोनों ही क्षेत्रों में विविध-आयामी और विकासशील रही है। एक ओर इससे पुरातनता से मध्य किया है तो दूसरी ओर अपने का आधुनिकता और नयी सृष्टि से जोड़ा है। अद्यतन परिप्रेक्ष्य और आज के वर्तमान हुए मूल्य उभरने वाली साधकता के साथ स्थापित हुए हैं। भारतीय और पाश्चात्य सृष्टि का अन्त-संक्राति ने भी आधुनिक कविता को अनुप्रेरित किया है, जिसमें नयी दृष्टि और विचारणा का माग प्रकट हुआ है तथा शिल्प को भी नये आयाम मिले हैं। इस विविधता के कारण ही आधुनिक कविता का विभिन्न समाया-दृष्टियाँ से परखा गया है और उसके उत्पत्त और अनुदात्त पक्षों का रेखांकित किया गया है। यद्यपि इसमें आधुनिक काव्य में सम्बन्धित समीक्षा-काय प्रचुर मात्रा में हुआ है पर वह अधिकांश स्व-दृष्टि मुन्दी है चतुर्मुखी नहीं। समीक्षकों ने अपनी दृष्टि का प्रमुख मानकर एक ही कृति पर एक-एक विराधी मत लिखे हैं कि जिनमें उच्चस्तराव छात्रा और शाधवर्त्ताओं के सामने, उभे विशेष कृति के सम्बन्ध में एक घु घमा छा जाती है। यह ध्राति प्रमुख रूप में मनोवैज्ञानिक प्रगतिवादी अनियथावादों और अस्तित्ववादी समीक्षा-दृष्टियों से उत्पन्न हुई है। लेखक और युग्-परिवेश की दृष्टि से कृति का स्वस्थ मूल्यांकन बहुत कम समीक्षकों द्वारा किया गया है। ठीक यही स्थिति काव्य-प्रवर्तियों के मूल्यांकन और विश्लेषण में भी रही है। किन्तु भी काव्य-प्रवर्तियों का मूल्यांकन उतकी अपनी ही दृष्टि से होना चाहिए, ऊपर से आगेवित समीक्षा-मान से नहा।

डा० गणेश शर्मा की प्रस्तुत कृति का मैंने आद्यतन पढ़ा है और इस पर अनेक तक-वितक एवं चर्चाएँ भी हुई हैं। उन्होंने जिन जिनो सृष्टि से आवद्ध हुए, स्वतंत्र रूप से आधुनिक काव्य प्रवर्तियों का अध्ययन और विश्लेषण किया है इसी लिए वे इन प्रवर्तियों के स्वरूप-रचने में निर्विवाद रूप से सफल हुए हैं। इस पुन मूल्यांकन में उनकी दृष्टि सिद्धांत और व्यवहार, दोनों पर सही है अतः उनके निष्पन्न प्रामाणिक और वास्तविकता से युक्त हैं। उन्होंने आधुनिक काव्य-प्रवर्तियों के विकास-स्रोतों को बनी गहराई में पकड़ा है और उनको उनके अधिधार और मूल्य युग के साथ सहज और स्पष्ट रूप में प्रतिष्ठापित किया है। कहना न होगा कि इस कृति में आधुनिक काव्य-प्रवर्तियों के विशिष्ट और शिल्पगत आयामों का, उनकी व्यापकता के बीच में पूरे सामंजस्य के साथ मूल्यांकित किया गया है। यह कृति सामयिक

काव्य के स्वरूप और उसकी स्थिति का परिज्ञान कराने में निश्चित ही समय है।

इस कृति के परिशिष्ट में दिया गया पाश्चात्य काव्य-चिन्तन वस्तुतः इस कृति का पूरक है। क्योंकि इस अंश में विवेचित उपपत्तियों ने हमारे आधुनिक काव्य और समीक्षा-मानों को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। कुछ हिन्दी-कवि एवं समीक्षक तो इनमें आनन्द झूझ दिखाई देते हैं। क्योंकि उन्होंने इन प्रवृत्तियों को फलन के रूप में बलात् ग्रहण कर लिया है।

डॉ० गणेश घरे आधुनिक काव्य के गहन अध्ययता हैं। वे लगभग अठारह वर्षों से इसी काल के अध्ययन अनुसन्धान और चिन्तन में रत हैं। इस दिशा में उनकी इससे पूर्व भी कई कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं। जिन्होंने अनेक मौलिक निष्कर्ष साहित्य जगत् को दिये हैं। आशा है उनकी प्रस्तुत कृति का भी साहित्य-जगत में पूर्ववत् स्वागत होगा।

१५-१-१९७६

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

सी० एम० दुबे स्नातकोत्तर महाविद्यालय

विलासपुर (म० प्र०)

## दो शब्द

आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों पर हिन्दी साहित्य में अनेक स्वतन्त्र और शोधपरक ग्रंथ उपलब्ध हैं। समीक्षात्मक स्फुट निबन्धों के रूप में तो इन प्रवृत्तियों पर विपुल सामग्री प्राप्त है। काव्यात्मक दार्शनिक, साम्प्रतिक, कलात्मक या सौन्दर्यशास्त्रीय, प्रगतिशील, मनोवैज्ञानिक यथायवादी अतियथायवागी, अस्तित्ववादी आदि दृष्टिकोणांशों से इन काव्य प्रवृत्तियों के विभिन्न पक्षा का उदघाटन भी किया जा चुका है। तुलनात्मक समीक्षा के माध्यम से भी इन काव्य प्रवृत्तियों के वैशिष्ट्य, सीमाओं और उपलब्धियों का जाबलन किया जा चुका है। इन स्थितियों में आज किसी नये दृष्टिकोण से इन काव्य प्रवृत्तियों के अध्ययन-अनुमधान के स्थान पर इन विभिन्न दृष्टिकोणों के मध्य सामंजस्य विधान की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। प्रस्तुत कृति पुनर्मुल्यांकन की इसी दिशा में किया गया प्रयास है।

इसमें इस शताब्दी की प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियों—छायावाद, रहस्यवाद, ह्यालावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता आदि पर काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुन विचार किया गया है और तत्सम्बन्धी वास्तविकताओं का निस्संग दृष्टि से आलोकन किया गया है। इसके परिशिष्ट में आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संप्रभावित करने वाली पाश्चात्य काव्य प्रवृत्तियों का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। सारा विश्वास है कि इस कृति से हिन्दी साहित्य के विचारियों और शोधकर्ताओं का पथ बहुत कुछ प्रशस्त हो सकता है।

अंत में मैं अपने मित्र और बंधु डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चंद्र' के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा हूँ जिन्होंने इस कृति की भूमिका लिखकर मुझ पर अपने अशेष प्रेम भाव का प्रदर्शन किया है। मूल रूप में यह कृति आज से ७-८ वर्ष पहले डा० चंद्र के साथ ही अध्यापन कार्य करते हुए बिलासपुर में लिखी गई थी अतः इसकी रचना क्रिया का जितना अधिक परिज्ञान उनको है, उतना जय किसी को नहीं। इस पुस्तक के साथ उनके सान्निध्य की अनेक स्मृतियाँ भी जुड़ी हुई हैं अतः इसकी भूमिका-लेखन पर उतना पूरा पूरा अधिकार भी रहा है।



वाध्य के स्वरूप और उसकी स्थिति का परिज्ञान कराने में निश्चित ही समय है।

इस कृति के परिशिष्ट में दिया गया पाश्चात्य काव्य-चिन्तन वस्तुतः इस कृति का पूरक है क्योंकि इस अंश में विवेचित उपपत्तियों ने हमारे आधुनिक वाध्य और समीक्षा-भानों को अनेक रूपों में प्रभावित किया है। कुछ हिन्दी-कवि एवं समीक्षक तो इनमें आवृत्त दृष्टि दिखाई देते हैं क्योंकि उन्होंने इन प्रवृत्तियों को फलन के रूप में बलात् ग्रहण कर लिया है।

डॉ० गणेश शर्मा आधुनिक काव्य के गहन अध्येता हैं। वे लगभग अठारह वर्षों से इसी काल के अध्ययन अनुसंधान और चिन्तन में रत हैं। इस दिशा में उनकी इससे पूर्व भी कई कृतियाँ प्रकाश में आ चुकी हैं, जिनमें अनेक मौलिक निरूद्ध साहित्य जगत को मिले हैं। आशा है उनकी प्रस्तुत कृति का भी साहित्य-जगत में पूर्ववत् स्वागत होगा।

१५-१-१९७६

डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल 'चन्द्र'

प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

सी० एम० दूब स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बिलासपुर (म० प्र०)

## दो शब्द

आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों पर हिन्दी साहित्य में अनेक स्वतन्त्र और शोधपरक ग्रन्थ उपलब्ध हैं। समीक्षात्मक स्फुट निबन्धों के रूप में तो इन प्रवृत्तियों पर विपुल सामग्री प्राप्त है। काव्यात्मक, दार्शनिक, साम्प्रतिक कलात्मक या सौन्दर्यशास्त्रीय, प्रगतिशील मनोवैज्ञानिक यथायवादी, अनियथायवाची अस्तित्ववादी आदि दृष्टिकोणों से इन काव्य प्रवृत्तियों के विभिन्न पक्षों का उदघाटन भी किया जा चुका है। तुलनात्मक समीक्षा के माध्यम से भी इन काव्य प्रवृत्तियों के वक्षिष्ठ सीमाओं और उपलब्धियों का आकलन किया जा चुका है। इन स्थितियों में आज किसी नये दृष्टिकोण से इन काव्य प्रवृत्तियों के अध्ययन-अनुसंधान के स्थान पर इन विभिन्न दृष्टिकोणों के मध्य सामंजस्य विधान की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। प्रस्तुत कृति पुनर्मुल्यांकन की इसी दिशा में किया गया प्रयास है।

इसमें इस शताब्दी की प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियों—छायावाद रहस्यवाद हास्यवाद, प्रगतिवाद प्रयोगवाद, नयी कविता, अकविता आदि पर काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से पुनर्विचार किया गया है और तत्सम्बन्धी वास्तविकताओं का निस्संग दृष्टि से आकलन किया गया है। इसके परिशिष्ट में आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सप्रभावित करने वाली पाश्चात्य काव्य प्रवृत्तियों का भी संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। मेरा विश्वास है कि इस कृति से हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों और शोधकर्ताओं का पक्ष बहुत कुछ प्रशस्त हो सकता है।

अतः मैं अपने मित्र और बन्धु डा० सुरेशचन्द्र शुक्ल चन्द्र के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर रहा हूँ जिन्होंने इस कृति की भूमिका लिखकर मुझ पर अपने विशेष प्रेम भाव का प्रदर्शन किया है। मूल रूप में यह कृति आज से ७-८ वर्ष पहले डा० चन्द्र के साथ ही अध्यापन कार्य करते हुए बिलासपुर में लिखी गई थी अतः इसकी रचना-क्रिया का जितना अधिक परिज्ञान उनको है उतना अब किसी को नहीं। इस पुस्तक के साथ उनके साहित्य की अनेक स्मृतियाँ भी जुड़ी हुई हैं अतः इसकी भूमिका-लेखन पर उनका पूरा पूरा अधिकार भी रहा है।

## विषय सूची

### अध्याय १ छायावाद

१७-३८

(अ)—छायावाद का निर्माण तथा प्रयोग छायावाद के अर्थ और विराट, द्विवेदीयुगीन समाक्षरों द्वारा निर्दिष्ट छायावाद की विशेषतायें।

(आ) मूल सात तथा स्वरूप (१) नूतन जीवन-दर्श, (२) व्यक्ति-अनुभूति और राष्ट्रीय चेतना (३) मूल्य-निष्ठ काव्य-प्रवृत्ति (४) आध्यात्मिकता और रहस्य भावना (५) छायावाद तथा रहस्यवाद (६) त्रिवेदीयुगीन प्रतिक्रिया, विद्रोह या विवास, (७) समाज-दर्शन (८) प्रेम-सौंदर्य-मया स्वच्छन्द चेतना (९) भाव, भाषा और छन्द का मुक्ति (१०) नवान मानवाय मूल्य की रचना (११) स्वानुभूत सुख-दुःखों की काव्य-मृष्टि (१२) भारतायता का सन्निवृत्त (१३) समृद्ध करण-वाङ्मय तथा दास्य रंग का फल (१४) अनन्य जीवन की गहरी संवेदना (१५) प्रथम महायुद्ध के लक्ष्य-द्विताय महायुद्ध के बीच की कविता (१६) एक सम्पूर्ण काव्य-दर्श और काव्य-मृष्टि (१७) जीवन-माया का काव्य (१८) सन्निवृत्त का य प्रवृत्ति।

(इ)—पतन के कारण का विश्लेषण।

### अध्याय २ रहस्यवाद

३६-६५

(अ)—रहस्यवाद के मूल सात [१] रहस्यवाद एक अनुभूत्यात्मक सत्ता [२] अज्ञात और अनन्त सत्ता के प्रायः आत्मनिवृत्त [३] हृदय की त्रि-य अनुभूति [४] जड-चेतन के एकाकरण की गहरी वास्तविकता (५) ब्रह्म के प्रति प्रणय-निवृत्त [६] समष्टि-सौन्दर्य बाध [७] अनुरागजनित जात्म-विसर्जन, [८] अलौकिक शक्ति के शान्त और निश्चल सम्बन्ध [९] आनन्दमयी भावनिष्कता की स्थिति, [१०] भगवत्सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला, [११] विवक्षित्य मूकता, [१२] अतर्जान का जाग्रत।

(आ)—रहस्यवाद की विविध अवस्थाएँ [१] परमात्मा के प्रति आश्चर्य बुतुहल और जिज्ञासा की भावनायें [२] सबज्ञ परमात्मा की वाकी देखना और आत्मा-परमात्मा के बीच अद्वैत सम्बन्ध के प्रति दर्श आस्था [३] दशन-लानसा परमात्मा के प्रति गहरी आश्चर्य प्रेम जीव विरह का अनुभव [४] परमात्मा के साथ जात्मा के अन्तक सम्बन्ध की स्थापना, [५] आत्म-समर्पण और पूर्णतः तादात्म्य-भावना।

(इ)—रहस्यवाद के विभिन्न साधन—साधारण प्राण विश्व प्राण और महा

प्राण, सूफा रहस्यवाद म शरीरगत, तरीकत हुकीकत और मारफन ।

(ई)—रहस्यवाद के भेदोपभेद—[१] ज्ञान और दाशनिक्ता प्रधान, [२] दाम्पत्यमूलक या प्रेमपरक, [३] सोदयमूलक, [४] भक्ति-उपासना सम्बन्धी, (५) प्राकृतिक रहस्यवाद ।

(उ)—रहस्यवाद उदभव और विकास [क] वदिक साहित्य म, [ख] उप निपदा म [ग] मध्यकाल म [घ] भक्तियुग मे ।

(ऊ)—फारसी रहस्यवाद, ईसाई रहस्यवाद, आधुनिक रहस्यवाद, मध्य कालीन तथा आधुनिक रहस्यवाद ।

### अध्याय ३ हालावाद

६६-८८

(अ)—प्रवक्त का प्रश्न, (१) हाला भौतिक या पारलौकिक ।

(आ)—उमर खयाम जीवन-दृशन और काव्य,—(१) प्राकृतिक जीवन-दृष्टि, (२) दुःखवादी जीवन, (३) सुरा-सुन्दरी का गुण गान, (४) उन्मुक्त भोग वाद, (५) जीवन-जगत के कोलाहल स पलायन, (६) इस्लाम धम और सूफी-दशन ।

(इ) हालावाद क उद्भव काल की विविध परिस्थितिया । हालावाद का स्वरूप—(१) मद्दु भावो की अगूरी हाला, (२) कलित कल्पना की हाला, (३) दग्ध प्राणा की कविता (४) विश्व विजयिनी मधुशाला, (५) सर्वात्मवादी हाला, (६) सदा मुहागिन मधुशाला, (७) उन्मुक्त भोग (८) भाग्यवाद, क्षणवाद । साग्रह विचारारम्भता ।

(ई)—उपसंहार ।

### अध्याय ४ प्रगतिवाद

८९-१२५

(अ)—प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द । प्रगतिवाद की प्रेरणा भूमिया—(क) युग चेतना (ख) राजनीतिक स्थितिया (ग) प्रगतिशील लेखक सघ (घ) प्रगतिशील पत्र पत्रिकाये (ङ) साम्यवादी प्रचारप्रसार, (च) शक्तिप्रसार ।

(आ)—माक्सवाद । ऐतिहासिक भौतिकवाद । समाजवाद और कम्युनिज्म । प्रगतिवाद और फ्रायडवाद । माक्सवाद और ज्ञात्स्कीवाद । रूसी माक्सवादी साहित्य ।

(इ) हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य—(१) माक्सवाद का साहित्यिक सस्करण, (२) बगहीन समाज की स्थापना (३) पूजोपतियो का विरोध (४) सबहारा चप क प्रति सहानुभूति, (५) व्यस्य प्रधानता (६) सामाजिक जाति का उदघाप (७) नाल निशान का जयगान, (८) नारी मुक्ति का स्वर (९) भौतिक अम्युदय (१०) रूढियो और जाति पाति का विराध, (११) यथायवादी चेतना (१२) साहित्य एक उपयोगी कला । (१३) खुल गये हृद के बन्ध, (१४) जन भाषा का आग्रह (१५) जनवादी अप्रस्तुत विधान ।

(ई)—प्रगतिवाद पर लगाय जान वाल आक्षेप, विमय, ।

(उ)—प्रगतिवाद का प्रदेय ।

## अध्याय ५ प्रयोगवाद

१२६-१६७

प्रयोगवाद न के-न-वात् प्रपञ्चवाद । प्रयोगवात् के प्रेरणा स्रोत ।

प्रथम तार सप्तक प्रयोगमूलक दृष्टिकोण—[१] व्यक्ति कुण्ठार्ये [२] अपना पथ ढूँढन वाले बचन मन की अभिव्यक्ति [३] जीवन परिपाटियाँ म घोर वैषम्य [४] भाषा की जपर्याप्तता [५] उलची हुई संवेदनार्ये [६] जीवन की जटिलता [७] यौन वजनाएँ [८] प्रगतिशीलता का कथ्य [९] भाषा की अनगड प्रयोगशीलता [१०] हल्कर गयो के आवरण समुत्त चित्र विधान [११] मुक्त-छन्द का नया तत्र [१२] नान सीरियस [१३] एक जयोजनाबद्ध आत्मान [१४] आत्म सत्य का अवेपण [१५] परम्परा एक गहृग संस्कार [१६] बुद्धि रस की आस्वादीनीयता [१७] प्रयाग एन टुहरा साधन [१९] साधारणीकरण एक अत विरोध, [१६] गत् की नई रागात्तजन शक्ति की खोज [२०] विभाजित सत्य को समुच्चा दखन का प्रयत्न ।

द्वितीय तार सप्तक क कवि—भवानी प्रसाद मिश्र घमपीर भारती नरेश कुमार महता —नयी कविता—पारस्परिक अनुबन्ध । नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ । प्रगीन ताय जोर नयी कविता एक ज विरोध । नयी कविता—विरोध के स्वर (१) अनराप्नीयता (२) बुद्धि विशिष्टता—कच्ची जकल क कारनाम ।

तीसरा सप्तक—[१] पूर्वाग्रहरहित अध्ययन की माग [२] कद्रीयकरण आत्म-मूल्यांकन और विश्लेषण [३] नय शत्रु नय जय संस्कारो की आवश्यकता [४] विषय नय वस्तु मौलिक [५] नरली आलोचक नकली कमीटिया [६] नयी शिल्प दृष्टि [७] कवि कर्म क प्रति गभीर उत्तरदायित्व [८] नयी कविता कवि व्यक्तिक क मोक्ष [९] सौ न्य-ब्राध बुद्धि का व्यापार ।

तीसरे सप्तक क कवि और उनका का य—विजयदेव नारायण साही मदन वात्स्यायन सर्वेश्वरदयाल सक्मेना ।

नयी कविता क नय स्वर—(१) शिल्प-सत्त की अतिरक्ता, (२) यौन-प्रतीको की बहुलता (३) जलते माय पर सून कुहरे की छाया निराशा (४) पथ हो जायें उज्ज्वल नयी आशा (५) इन्द्रधनु रीते हुए य (६) भदसपन यथार्थानुभूति, (७) कही कोई ठौर नहा अनास्था (८) क्षण क जीवन म हो तममय क्षणवाद (९) साप तुम संभव तो हुए नहीं न हाग न्यग्य (१०) मौलसिरी की गाछ की जार मुवन अनुपम लखन पद्धति ।

## अध्याय ६ साठोत्तरी काव्य अकविता युवालेखन

१६८-१७८

[१] बदलत सन्दर्भों म नय मानव मूल्य [२] अकविता आत्मा

की अमुक्तावस्था [३] नित नये वार्दों का आन्नालन, [४] सूर्य की नयी लालिमा नया युग बोध, [५] हम मरणासन्न मनुष्य के प्रतिनिधि, [६] अब कहीं कोई यात्रा नहीं गतिहीनता, [७] एक द्विकालिक दुषटना, [८] सारे सद्दर्भा से कटे हुए ऐकात्मिकता, [९] नागदेश के अधिवासी व्यग्य [१०] आत्महत्या के विरुद्ध, [११] कुछ भी सही न होने की पीडा, [१२] भूखी पीडी वाम की नग्नता म, [१३] एक कुत्ता रात भर रोता रहा [१४] केवल पर्याय हाथ मलने का ।

परिशिष्ट

१७६-२००

(पश्चिम की कलावादी काव्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय)

- (१) अन्तश्चेतनावाद (फ्रायडवाद)
- (२) प्रतीकवाद
- (३) बिम्बवाद—टी० एस० इलियट—काव्य मूल्य और साहित्य चिन्तन ।
- (४) अतियथार्थवाद ।
- (५) अस्तित्ववाद ।



छायावाद के स्वरूप-विश्लेषण, उदभव और विकास से सम्बन्धित शोध कार्य और समीक्षाएँ हिन्दी साहित्य में अब तक पर्याप्त सख्या में सामने आ चुकी हैं और अब तो इस कार्य प्रवृत्ति के पुनर्मूल्यांकन का कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त और डॉ० रामदरश मिश्र ने अपनी पुनर्मूल्यांकन सम्बन्धी कृतियों में जहाँ छायावादी कार्य की नये दृष्टिकोण से लेखन परखने की चेष्टा की है वहाँ उन समस्त असांगतियों को भी सामने ला दिया है जो इस काव्यान्दोलन के स्वरूप विश्लेषण एवं संश्लेषण के समय विभिन्न समीक्षकों ने प्रस्तुत की थी। यहाँ हम छायावाद के स्वरूप निर्धारण तथा उसकी मूल प्रवृत्तियों के परिष्कारनाथ उसके मूल्यांकन पुनर्मूल्यांकन से सम्बन्धित विभिन्न परिभाषाओं और व्याख्याओं की तात्त्विकता पर विचार करेंगे।

### 'छायावाद' शब्द का निर्माण तथा प्रयोग

छायावाद शब्द का निर्माण कर्ता श्री मुकुटधर पाण्डेय का कथन है कि इसे उन्होंने 'छायावादिता' शब्द के आधार पर १९२० ई० में गढ़ा था। उन्हीं के शब्दों में 'मिस्टिक कविता की बगला भाषा की एक आलोचना में एक जगह उसकी 'छायावादिता की ओर संकेत किया गया था। मैंने 'छायावादिता' से ही 'छायावाद' शब्द गढ़ा था। या बगला में मिस्टिसिज्म के अर्थ में छायावाद का प्रचलन कभी न था और न है।' आपन इस नई कार्य प्रवृत्ति के नामकरण के सन्दर्भ में श्री पद्मलाल पुत्रालाल बटगी से भी परामर्श किया था। आपने उस युग की नई कविताओं में पाई जाने वाली भक्ति विनय रहस्य अध्यात्म जिनामा आदि की प्रमुखता के कारण 'भक्तिवाद' नाम सुझाया था। आपकी यह मायता रही है कि 'मिस्टिक कविताओं में भक्ति की प्रधानता रहती है और मिस्टिक कवि भी सूफी या हिन्दी के निराकार वादा से तो की तरह भक्त कवि रहे हैं।' कि ही कारणों से पाण्डेय जी को यह नाम

१ पन्त का काव्य-डॉ० कु० प्रेमलता वाफना पृ २२ पर उद्धृत पाण्डेय जी का पत्र  
२ सरस्वती' जनवरी फरवरी १९७२ श्री पद्मलाल पुत्रालाल बटगी, कुछ देसिहा  
सिक् तथ्य, कुछ संस्मरण, पृ ५४



पसन्द नहीं आया किन्तु उन्हीं 'श्री शारदा' में 'दायावाद पर धारावाहिक रूप में निम्नित अपर धार समीक्षात्मक निबन्धा में दायावाद की परिदृष्टि में वापर्याय कहा है, 'आध्यात्मिकता और धर्म भावुकता जिसके अभिन्न अंग हैं।' उन्हीं के शब्दों में 'दायावाद' एक ऐसी मायामय मूर्त्ति यस्तु है कि शब्दों द्वारा उमरा ठीक ठाक बनाना करना असम्भव है क्योंकि सभी रचनाओं में एक अपने स्वाभाविक मूल्य को छोड़कर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं।'

उपरोक्त तथ्या से स्पष्ट है कि न तो इस वाक्य प्रवृत्ति का नामकरण मुविचा रित ढंग में हुआ है और न आरम्भ में निर्दिष्टित उमकी विशेषतायें ही उसकी मूल चेतना को स्पष्ट करने वाली रहीं हैं। दायावाद का नामकरण करते समय पाण्डेय जी के मन में भ्रम ही व्यक्त भाव न रहा हो किन्तु आगे चलकर यह शब्द और वाक्य प्रवृत्ति द्वितीयपुत्र समीक्षा के हास्य व्यंग्य और विरोध का सम्भीर रूप में विकार हुई है। यह नाम १०२१ ई० में प्रारम्भ होकर १९२७ ई० तक बराबर चलता रहा है।

### दायावाद व्यंग्य और विरोध

जून १०२१ ई० में मद्रास में टिप्पणी में दायावाद शीर्षक से एक मद्रास नामक निबन्ध प्रकाशित हुआ था जिसके लेखक मुन्शी कृष्ण चन्द्र किन्तु यह एक नाम का मूल लेखक मद्रासवासी क. त. व. १११ मद्रास स्थित बंगाली जी. व. १११ धार मुनिशिक्षित व्यक्तियों का मध्य होने वाले वार्ताकार का मूल विषय है—एक दायाचित्र जो पत्रों की एक कविता का आधार पर बनाया गया है। चित्र के नाम पर कविता के मद्रास का नाम कागज है जिसके नीचे दाया शब्द मद्रास धरित है। कोई इस विषय का चित्र की विषय दाया कहना है तो कोई अनन्त का अस्पष्टता को स्पष्ट करने का प्रयत्न। वार्ता के अन्तर्गत वार्ताकार एक मद्रास हरि विरोध बाव क. शब्दों में यह सा वाता की तीरबत्ता है विमलता का उपलक्षण है प्रतिभा का विभास है और अनन्त का विभास है। इस वार्ता में स्वयं कवि का नाम भी भाग नहीं है और वार्ता कविता का नाम पर एक कागज प्रस्तुत करने है। एक निबन्ध का कवि कागज पत्र जी ने इस गई वाक्य प्रस्तुति को जो प्रमु। विचारों में बना है व उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है—'दाया' का प्रकाश क. अस्पष्टता। भाव प्रकाश अस्पष्ट हो जाये कि व कल्पना का अन्तर्गत मद्रास का नाम ही प्रये। मरी यह सम्मति है कि मद्रास धरित म

बनते हैं और अक्षर अविनाश, हैं, अनेक हैं अनन्त हैं अतएव हमें भाषा को यह रूप देना चाहिये जिससे वह नीरव हो जाय। वह कणधुति न होकर हृदयगम्य हो, इन्द्रियगोचर न होकर आत्मा से ग्राह्य हो।<sup>१</sup> इसी समय के आस पास बहारी जी न पत जी से 'मौन निमन्त्रण' और 'शिशु' जैसी रचनाओं पुनी थी जिससे उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ था और वे पत जी की रचनाओं को मरस्वती में प्रमुख स्थान देने लगे थे इस तरह बहारी जी के मन में छायावाद के प्रति जो व्यभि भाव था वह समाप्त हो गया।

मई १९२७ का मरस्वती में जाजकल की कविता और कवि' शीपक से एक समीक्षात्मक निबंध प्रकाशित हुआ जिसके लेखक मुकवि किंकर थे। यह भी छद्मनाम था। इसके मूल लेखक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। 'आपने लिखा कि' छायावाद से लोगो का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है, किसी कविता के भाषा की छाया यदि कहीं अलग जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।<sup>२</sup> छायावादी अपनी ही मनस्तुष्टि के लिये कविता लिखते हैं।<sup>३</sup> छायावादी गूढाद्य विहारी हैं उनमें कविलभ्य गुण नहीं है।<sup>४</sup> छायावादी कवि तत्व होता है, कवि नहीं, उनमें आडम्बर रचना ज्यादा कवि बम में कुशलता प्राप्ति की चेष्टा कम है। शुद्ध निखना तक सीखने के पहने ही वे कवि बन जाते हैं और अनोखे अनोखे उपनामा की लागूल लगाकर अनाप शनाप लिखने लगते हैं।<sup>५</sup>

इसी वर्ष सुधा के दिसम्बर अंक में 'मायावादी' उपनाम से छायावादी पर एक व्यंग्यात्मक कविता प्रकाशित हुई जो इस समय तक की समग्र छायावाद विरोधी विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व करती है जिसका प्रवर्तन द्विवेदी युग के साहित्यकार एव आचार्य कर रहे थे। कविता इस प्रकार है—

छायावाद चलाया किमने है किसकी यह माया  
हिन्दी भाषा में यह गारा शब्द कहा में आया ?  
कविता जो न समझ में आई, छपकर छायावादी  
बुद्धू मियाँ 'यग्य परन के लिए हाय अब आदी  
मिस्टिसि'म' का नाम मारकर हो उसके प्रतिपक्षी  
छायावाद उसे बतलात हैं साहित्यिक पक्षी।  
कोई पूछ नहीं रहा है क्या है छायावादा

१ छायावाद डॉ० नामवर सिंह, पृ १०-११ से उद्धृत

२ सचयन साहित्यकार से प्रयाग पृ ८६

३ सचयन पृ ८६

४ वही, पृ ११

५ वही पृ १२

### [ ३ ] मूल्यनिष्ठ काव्य प्रवृत्ति

इस प्रकार छायावाद के सदस्य म 'व्यक्तिव अनुमति' का आशय उसके शाब्दिक अर्थ से नहीं लिया जा सकता। इस रूप में वह भ्रान्तियों को प्रथम देने वाला है। श्री सुमित्रानन्दन पंत ने तो यहाँ तक लिखा है कि समीक्षकों ने स्वानुभूति या व्यक्तिक अनुभूति का ठीक ठीक अर्थ ही नहीं समझा। आपके अनुसार महत् या उदात्त काव्यों में इस प्रचुर मात्रा में स्थल होते हैं (जैसे मृत्यु) जिनकी स्वानुभूति कवि को हो ही नहीं सकती फिर भी वह उनका वर्णन या विवरण इस प्रकार तन्मय होकर प्रस्तुत करता है जैसे कि वह अनुभूतियाँ उसकी निजी हो। वस्तुतः ऐसी स्थला पर कवि की रचनात्मक कल्पना त्रियाशील रहती है और वह सम्भाव्य अनुभूतियाँ का सजन करने में याग देती हैं। इन्हीं सब कारणों से आपन छायावादी काव्य को व्यक्तिनिष्ठ न मानकर मूल्यनिष्ठ या मूल्यरहित माना है' जो उसका मूल प्रवृत्ति और चेतना का अनुरूप एक उचित अभिधा है।

छायावाद का मूल्यनिष्ठ काव्य मानने से उसकी स्वच्छन्द चेतना का मूल धातो का सम्बन्ध भी निर्विवाद रूप से राष्ट्रीय चेतना से जुड़ जाता है।

### [ ४ ] आध्यात्मिकता और रहस्य भावना

आचार्य वाजपेयी जी ने छायावाद में जिस आध्यात्मिकता का स्वरूप परिलक्षित किया है उसकी मूल प्रेरणा धार्मिक न मानकर मानवीय और सांस्कृतिक निरूपित की है तथा उसे २०वीं शताब्दी की वैज्ञानिक एवं भौतिक प्रगति की प्रतिक्रिया कहा है। डा० रामदरश मिश्र का कथन है कि वस्तुतः वाजपेयी जी ने आध्यात्मिकता को पहचानने तथा उसकी मूल प्रेरणा को निर्देशित करने में भी भूल का है। आपका कथन है कि जहाँ छायावादी काव्य में राष्ट्रीय और सामाजिक चिन्ता प्रस्तावों और विम्बा के माध्यम में व्यक्त हुई है वहीं वाजपेयी जी ने आध्यात्मिक स्वर की तलाश की है।<sup>१</sup> यह राष्ट्रीय और सामाजिक चिन्ता भी वैज्ञानिक युग के जाने से निर्मित हो रही थी उसकी प्रतिक्रिया में नहीं।<sup>२</sup> छायावाद युगीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया नहीं प्रत्युत उनकी एक अनिवाय परिणति है अतएव इस सम्बन्ध में डा० मिश्र का उपयुक्त कथन सत्य है।

आपन छायावाद पर आरोपित अध्यात्मवाद, रहस्यवाद आदि के खण्डन के सदस्य म डा० नगेंद्र का अधालिखित मत उद्धृत किया है वास्तव में अतमुखा दृष्टि डालते हुये उसको चापवी अथवा अतीन्द्रिय रूप देने की यह प्रवृत्ति ही छायावाद की

१ छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ ५ २८ २९ ३० ३१।

२ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, पृ ११

३ वही, पृ १३

मूल वृत्ति है। उसकी सभी अन्य प्रवृत्तियों की इसी अंतमुखी वायवी वृत्ति के आधार पर याख्या की जा सकती है। आगे आपने लिखा है कि जाज क बुद्धिजीवी कवि के लिए वास्तना को सूक्ष्मतर करना तो साधारणतः सम्भव है परंतु आध्यात्मिक अनुभूति हाना उसके लिये महज सम्भव नहीं है और यह स्वीकार करने में किसी का भी आपत्ति नहीं हानी चाहिए कि गत युद्ध के बाद जिन कवियों के हृदय में छायावाद की कविता उदभूत हुई उन पर उस समय किसी प्रकार आध्यात्मिक अनुभूति का आरोप नहीं किया जा सकता।<sup>१</sup>

छायावादी काव्य के मूल स्रोतों के इस मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के बाद भी आपने यह स्वीकार किया है कि छायावादी कवियों में नैतिक और आध्यात्मिक प्रभावों के कारण एक विशेष प्रकार का परिष्कार आरम्भ से ही था। कुछ आध्यात्मिक क्षण तो प्रत्येक भावुक जीवन में आते ही हैं। अतएव छायावाद की रहस्योत्थिताएँ एक प्रकार से जिज्ञासायें हैं जो छायावाद के उत्तरार्द्ध में आध्यात्मिक दशन के द्वारा और भी पुष्ट हो गई हैं। परंतु वे धार्मिक साधना पर श्रित नहीं हैं। उनका आधार वही भावना वही दशन चिन्तन और आरम्भ में कही वही मन की छत्रना है।<sup>२</sup>

इस युग के कवियों पर नैतिक और आध्यात्मिक प्रभावों का कारण भी स्पष्ट है। भारतीय संस्कृति में मानवीय जीवन के सभी उदात्त मूल्य आध्यात्मवाद में ही निहित हैं। छायावादी कवि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतनाओं से संयुक्त रहते हैं जहाँ एक उठने वही वही तो आयासपूर्वक आध्यात्म दशन को प्रस्तुत करके अपनी रचनाओं में गरिमा खान की चेटा की है।<sup>३</sup> छायावादी काव्य में आध्यात्मिकता के समिधण या संप्रभाव में युगीन परिस्थितियाँ भी विशेष योग दिया है। उस समय दशन में रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानंद रामतीर्थ अरवि द महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ आदि ने राष्ट्रीयता तथा आध्यात्मिकता का समन्वित करके अपने दैनिक जीवन का एक अंग बना लिया था। अरवि द के शब्दों में राष्ट्रीयता की भावना एक धर्म है जो ईश्वर से प्राणभूत हुई है। वह मर नहीं सकती क्योंकि वह अजर अमर ईश्वर ही है।<sup>४</sup> इस राष्ट्रीयता के पीछे अद्वैत के आध्यात्म का स्वर था जो प्राणिमात्र का समाप्त और स्वतंत्र मानता है। डॉ० शंभुनाथ सिंह के शब्दों में सामाजिक विषय

१ आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ छायावाद

२ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन पृ १३ से उद्धृत

३ आँसू कामायनी के अंतिम तीन संग जुहू की कनी, शफातिका एक तारा नीरा विहार आदि रचनायें इस मद्भ में द्रष्टव्य हैं

४ नाश-आनंद दग्ग ए रिनीजन दैट वस्त फाम गाड नाश जानल दग्ग कननाट हाइ विक्काइ इट इज ए गड-अरविन्द घोष

मत्ताओं से छुटकारा पाने की तय छायावादी कवियों ने काव्य के क्षेत्र में प्रच्युत रूप से आत्म का सहारा लिया<sup>१</sup> और इस प्रकार उन्होंने अपने युग तथा व्यक्तिक जीवन के जभावा की पूर्ति की।

जहाँ तक छायावाद और रहस्यवाद का प्रश्न है वह छायावाद का एक अंग तो है किन्तु पयाय नहीं। इस सदर्भ में डा० नगार्ड का स्पष्ट बर्णन है कि छायावाद के अन्तर्गत और भी बहुत सी विचारधाराएँ काम कर रही हैं जिनका आध्यात्मिकता से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है।<sup>२</sup>

### [५] छायावाद और रहस्यवाद

इन दोनों प्रवृत्तियों में पायबन्ध प्रस्तुत करते हुए आचार्य वाजपयी जी ने ठीक ही लिखा है कि छायावाद व्यष्टि सोदय बाध की भावना है और रहस्यवाद समष्टि सोदय बाध की। रहस्यवाद में व्यष्टि अन्तर भूलकर अखण्ड सोदय तथा समसचेतन की गच्छि होता है।<sup>३</sup> छायावाद के मूल विषय है प्रकृति मानव जीवन प्रेम और सोदय किन्तु रहस्यवाद में परम मत्ता के प्रति प्रेम भावना निवृत्ति का जाती है। छायावाद में जहाँ प्रकृति स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत हो सकती है वहाँ रहस्यवाद में वह आध्यात्मिक सोदय से ही रजित रहती है। छायावादी काय में प्रतीक याचना जहाँ कवि के सूक्ष्म भावों के सप्रेषण में सहायक सिद्ध होता है वहाँ रहस्यवाद में वह उसकी एक अनिवाय अभियोजना शक्ती बनकर अवस्थित रहती है। छायावाद में कवि भावनाओं की कोई सांस्कृतिक दार्शनिक पृष्ठभूमि हा हा यह आवश्यक नहीं किन्तु रहस्यवाद में जहाँ किसी न किसी दर्शन का आधार आवश्यक हुआ करता है। इही सब कारणों से छायावाद का दृष्टान्तिक तथा मानवीय भूमिका का काम कहा गया है और रहस्यवाद का अंतःसत्तात्मक और परोक्ष दस्तु से सम्बन्धित भावनाओं का।<sup>४</sup> इस तरह अपने प्रगातात्मक अभियोजना शिप, नवीन सी य बोध, रागात्मक सबदन विस्मय की भावनाओं कल्पना बाहृत्य और मानवीय आवेदन मूर्या की एकरूपता के कारण रहस्यवाद छायावाद के साथ परिवर्धन में तो समाहित हो जाता है किन्तु अपने मूल और तात्विक अर्थों में वह छायावाद से पूरी तरह पथक है। उस छायावाद का पर्याय मानना प्रेम का जन्म दन है।

छायावादी परिवेश में पलनवित हृदय का यह रहस्यवाद प्राचीन हिन्दी रहस्यवाद से भी पूरी तरह पथक है। मध्ययुगीन सना का रहस्यवाद सत्ता का मिथ्या

१ छायावादी युग डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ ६०-६१

२ आधुनिक हिन्दी कविता का मुख्य प्रवृत्तियाँ पृ १५

३ आधुनिक काय रचना और विचार आचार्य नन्दुलार वाजपयी पृ ३९-४०

४ आधुनिक काय रचना और विचार आचार्य नन्दुलार वाजपयी पृ ३५

मानने वाला जीवन रस वचित, परिपूर्ण ममपणशील और आत्मा तथा ब्रह्म के मिलन की अतीन्द्रिय अनुभूतियाँ पर आधारित मोक्ष-कामी है किन्तु अस्तित्व चेतना से युक्त आधुनिक रहस्यवाद में पत जी के शब्दों में नये विश्व जीवन तथा विश्व चेतन्य की खोज और जिज्ञासा की अनुभूति के साथ भाव मुक्ति मानव मुक्ति विश्व मुक्ति तथा लोक मुक्ति की ही भावना प्रधान है<sup>१</sup>।

स्वच्छन्दतावादी जादोलन में रहस्यवाद की स्वाभाविक अवस्थिति पर प्रकाश डालते हुए एक अग्रज विद्वान समीक्षक ने लिखा है कि बौद्धिक जिज्ञासा और सौंदर्य प्रियता की मूल प्रवृत्तियाँ से युक्त स्वच्छन्दतावाद जब दर्शन का मसपण करता है तब वह रहस्यवाद और आत्मवाद का पक्षधर बन जाता है,<sup>२</sup> छायावादी कविता में भी जो सूक्ष्म रहस्य चेतना जाप्रात्मिक और मानवतावादी आदर्शवाद की विशेषतायें परिलक्षित होती हैं वे उनकी स्वच्छन्द जीवन दृष्टि के साथ दार्शनिक पट्टभूमियों के मसपणों का फल हैं।

### [६] द्विवेदीयुगीन प्रतिक्रिया-विद्रोह या विकास ?

आचार्य वाजपेयी जी ने छायावाद की द्विवेदीयुग की प्रतिक्रिया मानकर युगीन परिस्थितियों के सन्तुलन में उसके स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया का परामर्श से खण्डन किया है जबकि तथ्य वस्तु विपरीत है। छायावाद के प्रमुख आधार का स्पष्टीकरण करते हुए डा० नगेन्द्र ने उस स्वून के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है। स्वून शब्द की व्यापकता का स्पष्टीकरण करते हुए जापन लिखा है कि इसकी परिधि में सभी प्रकार के बाह्य रूप रंग रूपाँव जाति सनिहित हैं और इसके प्रति विद्रोह नतिक रूढ़ियाँ के प्रति मानसिक स्वातन्त्र्य का विद्रोह और वाच्य के सूक्ष्मता के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और तकनीक का विद्रोह है।<sup>३</sup> थापन जी की यह परिभाषा भी अपर्याप्त तथा एकांगी के साथ साथ अस्पष्ट भी प्रतीत हुई है क्योंकि इसमें सूक्ष्म के अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। आपक ही शब्द में यदि सूक्ष्म का अर्थ अभिव्यञ्जना के वचिन्य या चातुर्य से है तो वह सूक्ष्मता नहीं कही जा सकती। यदि सूक्ष्म चेतन्य या भाव तत्त्व से सम्बन्ध रखता है तो उस स्वून के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह न कहकर अधिक से अधिक स्वून का सूक्ष्म में रूपान्तर कहा जा सकता है।<sup>४</sup> किन्तु इस अर्थ को भी आप छायावाद के स्पष्टीकरण के सद्भम में परिपूर्ण नहीं मानते बल्कि

१ छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ० १८-१९।

२ रामाटिसिम हेन इट टचज पिलासिपी फवग मिरिटमिज्म एण्ड आइडिजिज्म — रोमांटिक रिवाइवल, पृ० १३

३ सुमित्रानन्दन पंत डा० नगेन्द्र, पृ० २

४ छायावाद पुनर्मूल्यांकन, पृ० २४।

कि आपके अनुसार छायावाद न तो स्थूल क प्रति विद्रोह करता है न उसका संस्कार या क्रांतिरहा प्रयुक्त वह नये मूल्य की प्रतिष्ठा करता है'। यहाँ यह तथ्य भास्मरणीय है कि यद्यपि छायावादी कवियों ने स्थूलता का परित्याग तो किया तथापि उनकी समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्यसत्ता आकाशचारी न होकर स्थूल या यथावच्छिन्न पर ही आधारित रही है जत इस युग में स्थूल और सूक्ष्म के बीच अत्यधिक सम्बन्ध भी रहा है।

इस सम्बन्ध में डा० रामविनास शर्मा तथा डा० रामदरश मिश्र के विचार भी उल्लेखनीय हैं। डा० शर्मा के अनुसार छायावाद स्थूल क प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा वह तो प्राचीनतमता रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी वधनों के प्रति विद्रोह था। डा० मिश्र भी स्वीकार करते हैं कि छायावादी कविना न नये जीवन का जाति-पावर तथा जीवन मूल्य की स्थापना की और जजर सामतवादी मूल्य को ध्वस्त किया। जापो कामायना में जन-प्राप्ति की व्यक्तिवादी चेतना की संज्ञा दी है और उनका पञ्चरूप हान वाले देव-पौर के विनाश की सामंती वधन का नाश ही माना है<sup>४</sup>। अग्रे स्पष्ट रही कि छायावादी कवियों का चेतना का एक अग्र-तत्कालीन सामंती और साम्राज्यवादी शक्तियों से सघर्ष करता रहा है किन्तु वह प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व के आरोप कल्पनाओं की समष्टि स्वानुभूत सुख-दुःख की अभिव्यक्ति और सूक्ष्म मौल्य-चेतना की सापेक्षता में तिष्ठत भ्रष्ट है। यदि हम कामायनी में जन-प्राप्ति की व्यक्तिवादी चेतना का प्रतीक मान लें तो उनके फलस्वरूप मनु द्वारा रचित नये संसार की तुलना हम छायावादी कवियों की समष्टिगत चेतना और नवीन मूल्य की प्रतिष्ठा से करनी होगी और निश्चित ही ऐसा करने पर नये प्रश्न पड़े जायेंगे। श्री मिश्र जान यह स्वीकार किया है कि वर्तमान समाज का आस्था-तनास्थाशील शकाशील अहनिष्ठ और निरन्तर आत्म-मथनशील मनु के जीवन की समस्याओं का सामाधान लोक के बीच नहीं होता लोक से दूर कलास पर होना है। 'कामायनी की यह सारी रहस्यवादी परिणति माहक है का यात्मक है किन्तु ज यावहारिक है भावुकता पर आधारित है<sup>५</sup>। यदि इस कथन को कुछ देर के लिए स्वीकार भी कर लिया जाय तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि समस्त छायावादी काव्य की यथच्छिन्न और समष्टि चेतना का यही प्राकृतिक है। जिस व्यक्तिवादी चेतना को रामदरश जी व्यक्तिगत स्वाधीनता और मुक्त चेतना का पर्याय मानते

- १ छायावाद पुनर्मूल्यांकन प २४
- २ संस्कृति और साहित्य पृष्ठ ३६
- ३-४ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन प० २१।
- ५ छायावाद का पुनर्मूल्यांकन, प० ३२।

हैं, यदि उसका रचनात्मक मनार मनु का जीवन है और उसकी परिणति भावुकता पर आधारित एक जयावहारिक है तब छायावाद की गरिमा का सारा चित्र हा धूमिन पड जाता है।

✓ इस तरह छायावाद को द्विवेदी युग की प्रतिश्रिया या विद्राह के स्थान पर उस युग में जीवन के हर क्षेत्र से सहज अंतस्फुग्नि होने वाली स्वच्छंद चेतना का फल मानना अधिक उचित—सगत प्रतीत होता है। यह दूसरी बात है कि उसके विकास में द्विवेदीयुगीन स्थूलता तथा सामंत साम्राज्यवादी बध्नना न अपन ढग से महयाग दिया है।

### समन्वित दृष्टिकोण

अभी तक हम छायावाद के स्वरूप विश्लेषण में आचार्य वाजपयी तथा डा० नगद्र जी की परिभाषाओं का ही मुख्य आधार बनाकर चले हैं। निस्संदेह इन दोनों आचार्यों ने छायावाद के सौष्ठव और मनोवज्ञानिक पक्षों के उदघाटन में अपनी प्रतिभा का श्रेष्ठ अंश समर्पित किया है किंतु जसा कि हमने देखा उनकी परिभाषाओं और विवचनार्थों अपन आप में परिपूर्ण नहीं हैं। उनमें कुछ तो अपरिभाषित पद हैं और कुछ छायावाद की मूल प्रकृति के विरुद्ध तथ्य। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परिभाषा का इन जटिलताओं से बचते हुए छायावाद की जो अधोलिखित तीन विशेषताएँ निरूपित की हैं वे इस युग की समग्रता को अपने में आत्मसात करने में बहुत दूर तक सन्तुष्ट हैं।—आपने लिखा है कि छायावाद नाम उन आधुनिक कविताओं के लिए बिना विचारे ही दे दिया गया था—

- (१) (क) जिनमें मानववादी दृष्टि की प्रधानता थी ,
  - (ख) जा वक्त वे विषय को कवि की व्यक्तिगत चिंतना और अनुभूति के रंग में रंगकर अभिव्यक्त करती थी ,
  - (ग) जिनमें मानवीय आचारों क्रियाओं चंष्टाओं और विश्वासों के बदले हुए मूल्यों को अंगीकार करने की प्रवृत्ति थी ,
  - (घ) जिनमें छंद अङ्कार, रम, ताल, तुक आदि सभी विषयों में गतानुगतिकता से बचने का प्रयास था और
  - (ङ) जिनमें शास्त्रीय रूढ़ियों के प्रति कोई आस्था नहीं लिखाई पन्ती थी।
- (२) छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था। यद्यपि उसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिह्न स्पष्ट हैं तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों के भीतर व्याकुलता न ही नवीन भाषा शैली में अपने का अभिव्यक्त किया और



(३) सभी उल्लेखनीय कवियाँ मथोड़ी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थीं। जिन कवियाँ १९ शताब्दी और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया उनका इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।'

### छायावाद प्रमुख छायावादी कवियों की दृष्टि में

छायावाद के तत्त्व विश्लेषण में छायावाद के प्रमुख कवियाँ ने अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। यह भी सच है कि जितनी गहराई तक इनकी तत्वाभिव्यक्ति दृष्टि गयी है उतनी दूरा तक इस युग के समीक्षकों की दृष्टि भी नहीं जा सकी है। अतएव बिना इनके विचारों के समझ यह परिच्छेद अधूरा ही माना जायगा।

### [८] प्रेम-सौंदर्यमयी स्वच्छन्द चेतना—

श्री जयशंकर प्रसाद ने छाया का सम्बन्ध मोती के भीतर छाया की तरह लता में मानकर और उस काल की तरलता का अंग के लावण्य की सजा देकर संस्कृत साहित्य में भाँ उसका अवस्थिति देखी है। यथा 'इस दुर्लभ छाया का संस्कृत का वाय उत्सव का नम अधिन महव था'। इस प्रकार प्रसाद जी छायावाद का सीधा सम्बन्ध संस्कृत की प्रेम-सौंदर्यमयी स्वच्छन्द चेतना से जोड़कर एक ओर उनके पतक-सांस्कृतिक-साहित्यिक सूत्रों का स्पष्ट करत हैं दूसरी ओर छायावाद का पश्चात्त्य स्वच्छन्दतावाद का अध्यानुकरण कहकर हमें वे भी जो नमहें भाँ कर देते हैं।

छायावाद में आप अभिव्यक्ति और अनुभूति के बीच पूर्ण तादात्म्य आवश्यक मानते हैं। ऐसा न होने पर उसमें अस्पष्टताएँ एक अभिव्यक्ति में विशृङ्खलता आ जाती हैं। अनुभूति पक्ष की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए आपने लिखा है कि 'वह बहति विकल काया न मुच्यते चेतनाम की विवशता वेदना का चेतन्य के साथ चिरव्यथन में बाँध देता है तब वह आत्मस्पर्श की अनुभूति सूक्ष्म आंतर भाव का व्यक्त करने में समर्थ होती है। ऐसा छायावाद किसी भाषा के लिए शाप नहीं हो सकता'। इसके कला पक्ष की विशेषताओं का उदघाटन करते हुए आपने उसमें ध्वन्यात्मकता, लाजनिक्ता सौंदर्यमयी प्रतीक विधान तथा उपचार वचनता की अवस्थिति आवश्यक मानी है'।

प्रसाद जी द्वारा निर्दिष्ट उपर्युक्त विशेषताओं में जो प्रमुख उल्लेखनीय बात है वह है—छायावादी स्वानुभूति की विवशिता का स्पष्टीकरण। आपने एक ओर जहाँ इसमें बहति विकल कायो कहकर इसकी सहज अतस्फुरण शक्ति का ओर अवेत किया है वही सबदना का चेतन्य (पत जा के शब्दों में बह चेतन्य) के साथ

अनुबन्धित कर उस 'आ मरपश की अनुभूति' की सजा दी है जो छायावादी सूत्र अंतर भावों की अभिव्यक्ति का प्रतिमा व भाव प्रस्तुत करने में समय सिद्ध होता है। कहना नहीं होगा कि छायावाद के पतन सम्बन्ध तथा उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति के पक्षों की स्वतन्त्री मूल्यता व साध किसी जगह ने विवेचना नहीं की।

### [९] भाव, भाषा और छन्द की मुक्ति

श्री सूर्यनाथ त्रिपाठी निरानाण छायावाद की विस्तृत विवेचना नहीं की किन्तु उसने एक प्रमुख और सक्तिशाली तत्व की ओर संकेत किया है कि वगभाषा मरवीन्द्रनाथ की अकेली शक्ति जिस कविया का जीवन तथा दृष्टजान देकर साहित्य व हृदय व द्र से निराली और फनी है। हिन्दी में छायावादी कहलान वाले कवियों में मरशा आण्णोण हुआ है।<sup>१</sup> आपने यह भी स्वीकार किया है कि भावों की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। यहाँ (छायावाद में) भाषा भाव और छन्द तीनों स्वतन्त्र हैं।<sup>१</sup> छायावाद के स्वरूप विशेषण के प्रवर्णन में पहली बार निराला जी ने काव्य की मुक्त चेतना के साथ मुक्त छन्द का समर्थन किया है जो इस काव्य प्रवृत्ति की महती विशेषता और उपार्ण है भी है।

### [१०] नवीन मानवीय मूल्यों की रचना

श्री मुमित्रानाथ पंत ने तो छायावाद पुनर्मूल्यारण शीघ्र से एक ग्रन्थ की शिखा है। इसके अतिरिक्त भी आपने अपनी कृतियों की लम्बा लम्बी भूमिकाओं में छायावाद के स्वरूप विशेषण पर विशेष बल दिया है। आपने पहली बार इस काव्य प्रवृत्ति के व्यापक सांस्कृतिक राष्ट्रीय परिवर्ण का उदघाटन करते हुए उस विश्व चेतना और नवीन मानवीय मूल्यों का प्रतिष्ठापक कहा है। छायावाद के प्रवर्णन परिमामात्रा आदि के अंतर मरक सम्बन्ध में प्रवर्णित सभी ग्रामय मायताओं का भी आपने निष्ठा धीर दृष्टता के साथ खण्डन कर मरक मृत्यावन की शिक्षा में भी नय संकेत किया है। इस परिच्छेद में जगद जगद आपने इन विचारों की चर्चा की गई है।

### [११] स्वानुभूत सुख-दुखों की काव्य सृष्टि

श्यामती महाशेरी वर्मा ने भी छायावाद की मूल प्रवृत्ति और उसकी विशेषताओं पर विस्तार से विचार किया है। आपने पहली बार इस नाम की उपयुक्तता का स्वीकार करते हुये लिखा है कि उसके (छायावाद) जन्म में प्रथम कविया के चर्चन मोमा तक पहुँच चुन ध की सृष्टि व वाह्यावर पर दृष्टता अधिक लिखा जा चुका

१ प्रवर्णन पंथ निराला, प १८

२ प्रवर्णन प्रतिमा निराला पृ २७०

वा कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझ तो जाज भी उपयुक्त ही लगता है।<sup>१</sup>

छायावाद के प्रचलित जनक नामों के मूल स्रोतों का स्पष्टीकरण करते हुए आपने लिखा है कि छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दशन के ग्रह का ऋणी है जो मूक्त और अमूक्त विश्व को मिलाकर पूणता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि न जीवन की गूढता (समष्टिगत चेतना) का भावने किया हृदय की भाव भूमि पर उसने प्रकृति में विखरी (सूक्ष्मगत) भी दय सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति प्राप्त की और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित कर ले जो प्रकृतिवाद हृदयवात् अध्यात्मवाद रहस्यवाद छाया वात् आदि अनेक नामों का भार सम्भाल सके।<sup>२</sup>

छायायुगीन पत्रायनवृत्ति का स्पष्टीकरण करते हुए आपने लिखा है कि यह युगीन जादिक प्रश्नों सामाजिक विषमताओं सांस्कृतिक दृष्टिकोणों आदि से सघन में पराजित हान का प्रतिफल न होकर परिभाषातीत मन की एक आवश्यक प्रेरणा है।<sup>३</sup>

## [१२] भारतीयता के सन्निकट

आपने यह भी स्वीकार किया है कि छायावाद के प्रतिनिधि कवि भारतीय संस्कृति, दशन तथा प्रचीन साहित्य से विशेष परिचित रहे हैं अतएव यह काव्य प्रवृत्ति भारतीय काव्य की मूल प्रेरणाओं के निकट है।<sup>४</sup> भारतीय प्रकृतिवाद को आपने दण्डन के सबवात् का काव्य में भावगत अनुवाद कहा है<sup>५</sup> और इस सद्भ में वदों और छायावादी काव्य से मध रात्रि, पिण्डन सूय प्रकृति और जीवन के चित्र से सम्बन्धित समान उद्धरण भी प्रस्तुत किये हैं और इस तरह नामों की मूल प्रवृत्तियों को एक कहते हुए छायावाद में प्रकृति चेतना का जीवा की सनातन सहगामिनी के रूप में निरूपित किया है।<sup>६</sup> आपको ही शक्यता में छायावाद में यह सबवाद अधिक सूक्ष्म रूप पा गया है जिसमें जड तत्व से चतन का अभिन्नता सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को ज म देती है और यष्टिगत चेतना से व्यापक चेतना की एकता भावात्मक दशन सहज

१ साहित्यकार की आस्था तथा अन्य विषय श्रीमती महादवी वर्मा प ६५

२ वही प ६६

३ वही पृ ७८

४ वही प ७५

५ वही प ७२

कर देती है।<sup>१</sup> निश्चित ही छायावाद म वर्णित प्रवृत्ति की जिन विशेषताओ का स्पष्टीकरण श्रीमती वर्मा न किया है उनकी आर भ्रम समाक्षको का ध्यान नहीं गया है।

### [१३] समझ कल्पना-बाहुल्य और दीप्त रंगो का फलाव

छायावाद तत्काल प्रवृत्ति के बीच में जीवन का उदमोथ होन के कारण आपके अनसार इसमें समझ कल्पना की सूक्ष्म रेखाओ का बाहुल्य और दीप्त रंगो का फलाव स्वाभाविक हा गया है। यही कारण है कि छायावादी कल्पनाएँ गहरी और विविधरूपी हैं।<sup>२</sup> छायावाद मे दुःख और विपाद के तत्वा का स्पष्टीकरण करते हुए आपने यह स्वीकार किया है कि यह कथना की छाया म सौंदर्य के माध्यम से व्यक्त होने वाला भावात्मक संवाद ही रहा है।<sup>३</sup> अपने इस कथन की भी आपने मानवैतनिक व्याख्या प्रस्तुत की है। आपने लिखा है कि गीत म गाया हुआ पराया दुःख भी अपना हो जाता है और अपना भी सबका, इसी म व्यक्तिगत द्वार से उत्पन्न व्यथा एक समष्टिगत कथन भाव म एकरस जान पड़ती है। छायायुग का वाच्य स्वानुभूतिमयी रचनाओ पर जाश्रित है। अतः व्यापक कथन भाव और व्यक्तिगत विपाद के बीच की रेखा घटा और भी अस्पष्ट हो जाती है।<sup>४</sup>

इस प्रकार श्रीमती वर्मा की इन विवेचनाओ ने छायावाद की मूल प्रवृत्ति और उसके सांस्कृतिक दार्शनिक मूल स्रोतो के स्पष्टीकरण म बहुत अधिक सहायता दी है।

### [१४] अनंत जीवन की गहरी संवेदना<sup>५</sup>

इस सन्दर्भ म इसी युग के एक प्रमुख कवि डा० रामकुमार वर्मा के विचार भी द्रष्टव्य हैं। आपन छायावाद का हृदय की एक अनुभूति निरूपित करते हुए लिखा है कि वह भौतिक समाज के श्रोत्र में प्रवेश कर अनंत जीवन के तत्व ग्रहण करता है और उस हमार वास्तविक जीवन स जोड़कर हृदय म जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशावाद प्रदान करता है।<sup>६</sup> आपन इस कथन द्वारा आपन छायावादी काव्य और जीवन का अभिन्न सम्बन्ध स्थापित कर दिया है।

इसी प्रसंग म छायावादांतर कवि-समीक्षक श्री अश्व जी न इस तथ्य के ठीक

१ वही पृ० ८१।

२-साहित्यकार की आस्था तथा अभ्य निबंध, पृ ८६-८७

३ वही पृ० ८०

४ वही पृ० ८८

५ साहित्य चिंतन डा० रामकुमार वर्मा प० १२४-५।

विपरीत बात कही है। आपने अनुमार महायुद्धोत्तर अव्यवस्था और पराजयवाद ने इस अनराल को जीर भी गहन कर दिया। फलतः सवदनशील कृत्तिकार म गहरा अतद्बद्ध प्रवृत्त हुआ। यह अतद्बद्ध उस साधारण जन स दूर ले गया इस दूरी क बोझ न अतमन को नयी तीव्रता दी। उमन नय कवि म एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक व्याकुलता उत्पन्न की। छायावादी काव्य मुझ्पा इसी व्याकुलता का अभिव्यक्ति करने के प्रयत्न का परिणाम था।<sup>१</sup> अन्य जी न साधारण जन स दूरी और अभूतपूर्व आध्यात्मिक व्याकुलता जस पदों का स्पष्टीकरण नहीं किया है। यदि दूरी का तात्पर्य कलात्मक सौष्टव स है तो निश्चित ही छायावाद का शिल्प कौशल और भाषा सामर्थ्य साधारण जन क स्तर से ऊपर उठा है और यदि इस दूरी का आशय छायावाद काव्य क जीवन रस से वंचित होने और जाकाणकारी कल्पना से सम्बंधित है तो निश्चित हा तथ्य इसक विपरीत हैं। वही प्रकार हम दय चुके हैं कि छायावादी म घातिका आध्यात्मिकता की व्याकुलता के स्वर हैं ही नहीं और तो आध्यात्मिकता आई भी है वह न तो साधारण जन की दूरी क बाण से आघात है और न कवियों के महा युद्धोत्तर अव्यवस्था और पराजयवाद से प्रभूत अतद्बद्धों म।

### [ १५ ] प्रथम महायुद्ध से लेकर द्वितीय महायुद्ध की कविता छायावाद

हिन्दी साहित्य म छायावादी क स्वरूप विश्लेषण क प्रयास जीर ना अनक विद्वान् समाक्षवा न किए हैं किन्तु उ हान प्रकारात्त स उपयुक्त विषयताआ और परिभाषाआ को ही अंगीकृत कर लिया है जत उनका विवचनाआ म कोई नयी उल्लेखनीय बात नहीं दिखाई देती।<sup>२</sup> डा० लक्ष्मीसागर बाण्येय न अवश्य छायावाद की पूर्व स्वीकृत विशेषताआ को गिनात हुए (यथा व्यक्तित्वात् गीततत्व ल्यात्म कता मासिकता, कवि और उसके राग विराग की प्रधानता प्रकृति पर कवि भावनाआ का आरोपण प्रकृति का धनन रूप अभिव्यजना म लाक्षणिकता यशता संगीतात्मकता आदि) कहा है कि प्रथम महायुद्ध स द्वितीय महायुद्ध तक की कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं—छायावाद।<sup>३</sup> आपका यह कथन यद्यपि अस्पष्ट और अति-यापक है तथापि इसमें छायावादी का ये प्रवृत्तियाँ की परि सीमाआ का बाध अवश्य हो जाता है। यदि आप प्रथम महायुद्ध और द्वितीय महायुद्ध क प्रारम्भ या अंत की बात स्पष्ट कर देते तो निश्चित ही आपको इस कथन स छायावाद की दोनों सीमाआ क निर्धारण म महत्वपूर्ण सहायता मिलता। फिर भी छायावाद की सीमाएँ हिन्दी साहित्य म विवादा का विषय नहीं हैं। सामान्यतः सभी विद्वानों ने चरना स लेकर कामायनी या उच्छ्वास स लेकर युगांत क बाध क समय का छायावादी की सना स विभूषित किया है। राजनीतिक भाषा म इसे हम

१ पुष्करणी जनेय प० ६

२ आधुनिक इतिहास डा० लक्ष्मीसागर बाण्येय, प० २५६

प्रथम महायुद्ध के अंत और द्वितीय के लगभग प्रारम्भ तक का समय कह सकते हैं। भारतीय स्वाधीनता संग्राम का पण्डभूमि में इसे गांधी जी के राजनीतिक नतत्व का शीर्ष बाल भी कहा गया है।

### [१६] एक सम्पूर्ण काव्य दृष्टि और काव्य सृष्टि

श्री सदस्य म डा० रवीन्द्रनाथ 'भ्रमर' तथा श्री नित्यानंद पटेल का छायावाद में सम्बन्धित पुनर्मुल्यांकन का काव्य और निष्पत्ति भी उल्लेखनीय हैं। डा० भ्रमर ने समकालीन दृष्टि से काव्य लिया है और छायावाद को एक सम्पूर्ण काव्य-दृष्टि माना है। वे इसमें कभी रूढ़िवाद, कभी स्वच्छलतावाद, कभी प्रतीकवाद, कभी इनसे परे और कभी इनके मिश्रित रूपों और प्रवृत्तियों को भी देखते हैं और इसी कारण इसे 'एक व्यापक और बहुमुखी काव्य प्रवृत्ति' कहते हैं।<sup>१</sup> 'तु आपकी इन पदावलिओं के द्वारा छायावाद का कोई मूल रूप हमारे सामने नहीं आता।

डा० भ्रमर ने निजी रुचि तथा पुनर्मुल्यांकन के दृष्टिकोण का परिचय देते हुए छायावाद के प्रारम्भ की सीमा को थोड़े पीछे कर लिया है। इस सदस्य में आप हिन्दी साहित्य कोश सम्मेलन अपना तक दत्त हुए लिखते हैं कि १९१३-१४ में इन्दु नामक मासिक पत्रिका में उस पद्धति की रचनायें प्रकाशित होने लगी थी जिन्हें छायावाद की नयी धारा के प्रवर्तन का श्रेय मिला है।<sup>२</sup> दूसरी जगह आप लिखते हैं कि छायावाद का अभ्युदय १९१६ ई० में आसपास माना जाता है निराला की 'जुही की कली' १९१६ ई० की रचना बनाई जाती है।<sup>३</sup> आप छायावाद में प्रारम्भ से ही शलीशिल्प की प्रीति और दीप्ति मानकर चले हैं। 'कामायनी' की प्रकाशन विधि को आपने १९३५ ई० माना है। आपकी दृष्टि से यही छायावाद की दूसरी सीमा है।<sup>४</sup> १९३६ से छायावाद का पतन प्रारम्भ हो गया था फिर भी आप १९४७ ई० तक छायावादी यामो शली शिल्प में रची जान वाली कविता-जा का सिनसिला जारी मानते हैं। १९३५-३६ के आठ-दस वर्षों का छायावादी कविता का आप उत्तर छायावाद का नाम से अभिहित करते हैं।<sup>५</sup> इस प्रसंग में यही टिप्पणी पर्याप्त होगी कि डा० भ्रमर द्वारा प्रस्तुत और सस्तुन तर्कों में से अधिकांश सही नहीं हैं।

### [१७] जीवन मीमांसा का काव्य

श्री नित्यानंद पटेल ने अपने पुस्तक 'जीवन मीमांसा' में उक्ततापूर्वक यह स्वीकार कर

१ छायावाद एक पुनर्मुल्यांकन डा० रवीन्द्र भ्रमर, पृ० २९।

२ वही पृ० ४८।

३ वही पृ० १९२।

४ वही पृ० ४७।

निया है कि 'विशेष रूप से डा० नगेन्द्र, श्री मानव और डा० नामवर सिंह द्वारा प्रस्तुत आन्दोलन की महायत्ना से ही हम विषय को यथार्थता विनय कर मने हैं।' समर्थ आन्दोलन की भूल का स्पष्टीकरण करते हुए आपन लिखा है कि 'तथाकथित छायावाद युग में प्रकृति सम्बन्धी जीवन मीमांसा सम्बन्धी आध्यात्मिक विरह मितन सम्बन्धी गांधीवाद से प्रभावित राष्ट्र सम्बन्धी, लौकिक प्रेम सम्बन्धी, दुष्ट बन्ना सम्बन्धी, मानवना सम्बन्धी बन्त से गीत निभ गये हैं परन्तु ये सब गीत छायावाद की परिधि में नहीं आते। आपन का मत है—सजीवना सम्बन्धी एव मानव हाव भाव से अनुप्राणित प्रकृति के चित्रण का मानव रूप से नाव बनना अनुरजित चित्रण छायावाद है।' प्रस्ताव की 'वामायणी को आप छायावादी महाकाव्य नहीं जीवन मीमांसा का महाकाव्य मानते हैं।' आप के अनुसार १९३६ के बाद भी छायावादी धारा कुछ वृत्ता नपुना के साथ अन्ध धाराओं के साथ गाय बह रही है यह धुमकी की बात है।<sup>१</sup> छायावाद के पतन की बात में उन्हें कोई तुक नहीं लिखा है और उनके अनुसार १९३७ के बाद की कविताओं में भाव और कला की दृष्टि से उनका अच्छा निष्कार हुआ है।<sup>२</sup> आपने मर नगपति मरे निशाल (दिनकर) मधुवन की छाती को देखो मूषा मितनी इसकी कलिया (धन्वन) तथा मपती के आगे घमर उठी मस्ती से मत्तमुग्ध प्यासी वसुधा की नामक गीत से कुछ उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि छायावादी प्रभाव मूढय कवियों के मन में मग्न करके बसा गया है—ऐसी अवस्था में उनके पतन की बात क्या बतुकी—सी नहीं जवती ?<sup>३</sup>

इसी पुरतक की भूमिका में डा० रामधारी सिंह दिनकर ने क्या आगे केवल प्रकृति काव्य है ? क्या 'अनुभूति' केवल प्रकृति का वर्णन करती है ? क्या अतजगत कीरी प्रकृतित कविता है ? आदि प्रश्न उठाकर प्रो० नित्यानन्द जी के विचारा का छण्डन कर देते हैं कि जो छायावाद को केवल प्रकृति काव्य मानते हैं वे ठीक ठीक सही राह पर नहीं हैं।<sup>४</sup>

१ छायावाद नया मूल्यांकन नित्यानन्द पटेल प० १२।

२ छायावाद नया मूल्यांकन, प० १७।

३ वही, प० १८।

४ वही, प० १३२।

५ वही, प० २०८।

६ वही, प० २०८।

७ वही प० २०८-१२।

८ वही प० ९।

इस प्रकार आजका छायावाद के नव या पुनर्मूल्यांकन के नाम से उसके विश्लेषण संश्लेषण के जो प्रयास हो रहे हैं उनमें वैज्ञानिक शाब्द की तुलना में निजी दृष्टिकोण और प्रभावशक्ति की ही अधिकता है। ऐसे तथ्य इस काव्य प्रवृत्ति के मूल्यांकन के माग में अवरोध और अंतर्विरोध ही उत्पन्न कर रहे हैं।

### सश्लिष्ट काव्य प्रवृत्ति

✓ समग्र छायावाद एक ऐसी सश्लिष्ट काव्य प्रवृत्ति है जिसमें आत्मनिष्ठता के साथ साथ प्रकृति और मानवीय चेतना का उज्ज्वल सौंदर्य निरूपण, अखिल मानव भावों का सत्य स्वरूपा का विश्लेषण युगीन सांस्कृतिक दार्शनिक राष्ट्रीय मंचेत्तना के प्रकाश में नव मानवता से सम्बन्धित नव मूल्यों की शोध सजना और स्वच्छन्द जीवन तथा रचनात्मक कल्पना दृष्टि संपरिपूर्ण एवं परम्परा की लीक से हटकर काय करना तत्त्वा के नूतन और प्रौढिक प्रतिमानों का प्रयोग मिलता है। इसमें सत्य शिव और सुन्दर पक्षा में समन्वित एक समग्र यत्तित्व और मानवीय जीवन का कलात्मक पुनर्जन है छाया नहीं।

✓ निराला जी की 'तुलसीदास' तथा पत जी की युगवाणी निश्चय ही ये दो ऐसी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो एक युग के अंत तथा दूसरे युग के प्रारम्भ प्रकथ की सूचना देती हैं। 'युगान्त पत जी की सौंदर्य-दृष्टि और प्रकृति चेतना का युगांत है छायावाद का नहीं।

✓ छायावाद के पतन या पराभव के मूल में चाहे जा कारण रहें पर उमका यह अर्थ नहीं है। 1930 ई० के बाद छायावादी काव्य लिखा ही नहीं गया। देवी जी की 'दीपशिखा' (४२), निराला जी की 'अणिमा' (४३) के मीत तथा अचना-आराधना (५०-५३) का छायावादी शिल्प और स्वयं पत जी के स्वयं काव्य का छायावादी स्थाविधान इस बात का प्रमाण है कि यह प्रवृत्ति प्रगतिशील, प्रयोग तथा नयी कविता की युगीन प्रवृत्तियों के तार स्वरो में दबकर और युग चेतना के विरुद्ध छायावादी कवियों के प्रौढ सस्कारों के रूप में जीवित रही है। एक दीपशिखा के अपवाद को छोड़कर 1930 की परवर्ती छायावादी कृतियों में वह तेजस्वि रूप और बल नहीं दिखाई देना जो आमू 'कामायनी' 'पल्लव' गुजन', 'गातिका अनामिका', 'नीरजा' साध्यगीत' आदि कृतियों में दिखाई देता है। दीपशिखा के अपवाद का कारण देवी जी का एकनिष्ठ विरह-साधना है जो प्रगति या प्रयोग धर्मों चेतना से पूरी तरह अप्रभावित है।

### पतन के कारणों का विश्लेषण

✓ छायावाद के पतन के कारणों का विश्लेषण करने वालों में छायावादी कवि ही प्रमुख हैं। श्रीमती महान्देवी वर्मा ने उनके आत्म पक्ष की कमियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया और पत जी ने उसकी कला-चेतना की



भोर। देवी जी का कथन है कि "छायावाद के कवि को एक नये सौन्दर्य लोचन म ही वह भावात्मक दृष्टिकोण अपना जीवन म नही, इसी से वह अपूर्ण है।"

कुछ अन्य विचारका ने छायावाद की कमियाँ और ह्रास व बारणो पर प्रकाश डाला है। डा० इन्द्रनाथ मन्गन का कथन है कि छायावाद का पथ 'यक्ति के विद्रोह से और इति पलायन से हुई, विद्रोह में उसका प्रगतिवादी पक्ष व्यक्त हुआ और पलायन में प्रतिक्रियावादी।' (निबन्ध और निबन्ध पृ० २६६) इसमें सन्देह नहीं कि छायावाद में पलायन, कल्पनाशीलता आत्म केन्द्रियता आदि की प्रवृत्तियाँ रही हैं किन्तु य जीवन सघन से पलायन नहीं है और न इस भूमिका पर छायावाद की क्षति हुयी है। छायावाद का चरम शोष कामायनी है इसका वाद यह युग लगभग समाप्त हो गया किन्तु कामायनी जीवन सघन का काव्य है पलायन का नहीं उसमें जिस नूतन मानवता का प्रदर्शन किया गया है वह इच्छा क्रिया और ज्ञान की समरसता पर आधारित है।

जिनकर जी छायावाद का 'यक्तिगत सुख दुःख का रोदन' कहते हैं और जन कल्याण की दृष्टि से उसके यक्तिवाद को निरर्थक मानते हैं। डा० सूरती छायावाद में अनुभूति की सच्चाई का अभाव अभिव्यक्ति में अस्पष्टता साधारणीकरण के लिए आवश्यक प्रेयणीयता का अभाव, यथाथ से दूरी, निराशा और जभाव की पीडा कवि मन की कुठाग्रस्त स्थिति आदि अनेक अभावों को देखते हैं और इन्हीं ही उसके ह्रास के प्रमुख कारण निरूपित करते हैं। वे उसमें सौन्दर्य और कला के बभब की अति रेकता तथा भीतरी प्राणशक्ति का अभाव भी निरूपित करते हैं।

निश्चित ही ये तत्त्व आशिक रूप से छायावाद के पतन में सहायक सिद्ध हुए हैं किन्तु युगीन परिस्थितियाँ और प्रगतिशील वातावरण ही ऐसा प्रमुख उपकरण है जिसके कारण छायावादी कवि ही उस स्थिति में उन्मुख हो गये। प्रसाद जी का देहावसान हो गया और श्रीमती महादेवी वर्मा ने 'दीपशिखा' के बाव कवितायें लिखना ही लगभग बन्द कर दिया पत जी ने युग का साथ दिया और निराला जी तो प्रारम्भ से ही अधिक बहिमुखी और वस्तुवादी रहे हैं अतः युग की आवश्यकताओं के अनुरूप आप भी प्रगतिशीलता की ओर बढ़ गये और इस तरह छायावाद का समापन हो गया।

## २ | रहस्यवाद

### रहस्यवाद के मूल स्रोत

प्रातः काल सुनहना प्रकाश बिखराने वाला जोर दोपहर को प्रचण्ड दीप्ति से चमकन वाला ये सूर्य क्या है ? य चांद तारे, ग्रह नक्षत्र सब क्या हैं ? इन्हें किसने रचा ? क्यों रचा ? इनकी निरन्तर परिवर्तना का क्या उद्देश्य है ? नर नारी जीवन मरण निर्माण विनाश, क्या, किमलिए ? इन्द्रधनुष की सुगमा बरकाशो का बच्चाघात, बादलो की भयावनी गडगडाहट और प्रलम्ब-रिणी वष्टि कोकिल की श्रुति प्रिय ध्वनि और पपीहे की अविरल पुकारें—क्या ? किसके लिए ? प्रकृति के इन राग रजित रूपो और भया वह दृश्या के रहस्यो न आदिभ अवस्था मे ही मानव मन म मुग्धता और क्षुब्धता, श्रद्धा और भय की भावनायें भर दी थी रहस्यवाद के प्राथमिक सूत्र मानव की इसी आन्ध्र जिज्ञासा भावना म दिखाइ देते हैं ।

ऋग्वेद (१०/१२६/६७) के दो सूक्ता म इस सदम मे लिखा है कि— कौन ठीक ठीक जानता है ? कौन यह सब सच बता सकता है कि इस सृष्टि का उदभव कहाँ स हुआ कये हुआ ? सृष्टि का निर्माण स्वतः ही हुआ या किसी ने किया ? यह सब कुछ वही अतिरिम्बासी ही जानता है ? या वह भी जानता है या नहीं किसे पता ?

वामायनी के मनु भी प्राकृतिक रहस्या क प्रति इसी प्रकार की मुग्धता और जिज्ञासा प्रगट करते हैं—

महानील इस परम व्योम मे  
 वनरिक्त म ज्योतिर्मनि ।  
 ग्रह-नक्षत्र और विद्युत्कण  
 कितका करत-से सधान ।  
 क्षिप जाते हैं और निबलत  
 आवरण म धिच हुए

तूण बोरुध लहलहे हो रह  
 विसके रस स सिच हूए ।  
 ह अनत ! रमणीय बौन तुम  
 यह में कम कह सकता ?  
 हे बिराट ! ह विषवदव ! तुम  
 कुद हो ऐसा होना मान । (आशा राग)

### (१) रहस्यवाद एक अनुभूत्यात्मक सत्ता—

ऋषि मुनिया दार्शनिक और योगियों ने उस अनत शक्ति का स्वरूप जानने की चेष्टा की पर व उसकी अनुभूति तो कर सके अभिव्यक्ति नहीं, इसीलिए रहस्यवाद को अनुभूत्यात्मक सत्ता कहा गया और यह माना गया कि उसे वही समझ सकता है जो तमय होकर उमी म लीन हो जाय या अद्वत हो जाये। अद्वतवाद की जब य रहस्यात्मक भावनामें अत प्ररित होकर अपने सुतीत्र भावावेग क साथ सागी तिक रूप धारण करती हैं तत्र रहस्य गीता की सष्टि हाती है। रहस्यवाद की इही विशेषताओ को ध्यान में रखकर जाकाय रामचन्द्र शुबल न निखा है—

‘चित्तन क्षत्र म जो अद्वतवा है यही भावा के भक्ष म रहस्यवाद है।

यहाँ चिन्तन क क्षत्र स जाशय दार्शनिक जगत स है। दार्शनिक ग्रन्थो म भी उस अद्वतवादी परमसत्ता को बिराट रहा गया गया है उसका ठीक ठीक स्वरूप निधारण नहीं किया जा सका। सभी लोग उस अज्ञय अगम्य ज्ञयव अमीम अनादि, अनत नेति नेति कहकर चुप हा गय हैं। हिन्दी के सवश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि कवीर दास भी उस रहस्यात्मक दीपित को ‘कहिबैं कू शोभा नहीं, देवरा ही परमाण कह उठत हैं। रहस्यानुभूति का जाय प्रेम की अवय कहानी कहकर उस भूगे क गुड से उपमित करते हैं।

डा० नगेन्द्र रहस्यवाद क मनोवज्ञानिक पक्ष का उदघाटन करत हुए कहत हैं कि बहिरंग जीवन से सिमट कर जब कवि की चतना ने अन्तरंग म प्रवेश किया तो कुछ बौद्धिक जिनासाए—जीवन और मरण सम्बन्धी प्रकृति और पुरुष सम्बन्धी आत्मा और विश्वात्मा सम्बन्धी—का य म आ जाना सम्भव ही था और वे आई, उसक चित्तन स्वरूप रहस्यवादी कविता उदभूत हुई। इस परिभाषा कथन स रहस्यवादी काव्य का रचना प्रक्रिया पर सो प्रकाश पड जाता है किंतु उसका स्वरूप विश्लेषण सम्यकरूपेण नहीं हो पाता।

### (२) अज्ञात और अव्यक्त सत्ता के प्रति आत्मनिवेदन

बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी निम्नलिखित परिभाषा में रहस्यवाद क मूल स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है—‘अज्ञात और अव्यक्त सत्ता के प्रति जिसम

भाव प्रकट किए जाते हैं, वही कविता रहस्यवाद की कहा जा सकती है। दूसरे शब्दों में व्यक्त जगत में पराक्ष की अनुभूति का अभिव्यजन रहस्यवाद है। कला की दृष्टि से यह एक शैली विशिष्ट है जिसमें इस त्रिविध चराचर के मूल में विद्यमान कारण भूत रहस्यमयी चेतन सत्ता पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके प्रति अनुरागजनित आत्मसमर्पण की भावना का अभिव्यजन किया जाता है। कला की दृष्टि से रहस्यवाद को एक शैली विशिष्ट नहीं माना जा सकता। वस्तुतः उसकी स्वतन्त्रता की एक सांस्कृतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि है, वह काव्य का बाह्य उपकरण नहीं, प्रत्युत अंतःकरण की एक आध्यात्मिक चेतना के रूप में वह काव्य में अभिव्यक्त होती है। इससे अधिक सुलझी हुई और तात्त्विक परिभाषा गंगाप्रसाद पाण्डेय की है।

### (३) हृदय की दिव्य अनुभूति

पाण्डेय जी के अनुसार 'ईश्वर तथा विश्व का सब, इस विश्व की क्रियाशीलता का रहस्य उसकी उत्पत्ति उसका विनाश, आदिकाल से मनुष्य को मुग्ध तथा क्षुब्ध किया है। इस क्षुब्धता में अशांति का आवेग है। अतः शांतिप्रिय नर समाज इस चिर रहस्य गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न कर रहा है, हमारी ससीम चेतना असीम चेतना की निरंतर खोज करती रहती है। इसी खोज की मधुर अभिव्यक्ति काय में रहस्यवाद का रूप धारण करती है। सारांशतः रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेग में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव अस्तित्व में उस असीम एवं स्वर्गिय 'महा अस्तित्व' के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।'

इस परिभाषा के आरम्भ में पाण्डेय जी ने मानव की सहज जिज्ञासा, विस्मय मुग्धता और क्षुब्धता का आशय किया है जो रहस्यवाद की प्रथम सीढ़ी है किन्तु केवल जिज्ञासा रहस्यवाद नहीं है उसमें असीम के साथ ससीम के मिलने की उत्कंठा भी सुनीर काटि की हो, इसका सफल उन्होंने उपयुक्त परिभाषा के अंत में किया है। मध्य में उन्होंने एक विशेष वस्तु की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। सभी जिज्ञासामुलक क्षुब्ध और मुग्ध व्यक्ति रहस्यवादी नहीं होते, केवल वे ही इस सीमा के अंतर्गत जाते हैं जो शांतिप्रिय हैं और चिर रहस्यमयी जीवन मरण, विनाश निर्माण आदि से सम्बन्धित गुत्थियों के सुलझाने में मनोयोगपूर्वक दत्तचित्त हैं। जो व्यक्ति इस नाय में लय नहीं हैं और असीम ससीम के एकाकार से विमुख हैं वह रहस्यवादी नहीं है। पाण्डेय जी ने रहस्यवाद के इन मूल तत्त्वों की उपयुक्त परिभाषा में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है किन्तु वे भी उसके सम्पूर्ण स्वरूप का स्पष्टीकरण नहीं कर सकते हैं, उनकी उक्त परिभाषा में अति ध्यायिता का दाप है।

### (४) अज्ञेय के एकीकरण की गहरी वास्तविकता

डा. गुलाबराय के अनुसार 'प्रकृति में मानवी भावा का आरोपण ~~का~~

क एकीकरण की प्रवृत्ति छायावाद की एक विशेषता है और उसके मूल अमृत स तुलना करने वान अन्कार-विधान म जैसे विखरी अलकें ज्यो तक जाल लहरो के लिए इच्छाआ सी असमान तथा मानवीकरण प्रधान लाक्षणिक प्रयोग। म परिलक्षित होती है। जब यह प्रवृत्ति कुछ अधिक वास्तविकता धारण कर अनुभूतिमय निजी सम्बन्ध की आर अग्रसर होती है तभी छायावाद रहस्यवाद म परिणत हा जाता है।

वस्तुतः गुलाबराय ने इसम छायावाद की ही विशेषताओ का प्रस्तुत करने की चप्टा की है। छायावाद का भी वे कवन कनात्मक पक्ष प्रस्तुत करते हैं। उसके अन्तरग पक्ष म निहित सांस्कृतिक गरिभा को उपेक्षित करके उसकी मानवीकरण तथा लाक्षणिक प्रवृत्ति का उल्लेख करके वे कहत हैं कि जब य प्रवृत्तियाँ अधिक वास्तविक होंगी और अनुभूत्यात्मक ढंग से अग्रसर हुईं ता रहस्यवादी काव्य की सृष्टि हो जायगी जित तथ्य इसके विपरीत है। छायावाद का रहस्यवाद की प्रथम सीडी नहीं कहा जा सकता उसका मनामय मसार पथक है यह दूसरी बात है कि रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ-जिज्ञासा वृत्तहनादि भी उमम विद्यमान रहती हैं कि तु रहस्य एक साधना की वस्तु है कल्पना की नहीं छायावाद काव्य के मूल म कल्पना का सजनात्मक रूप निहित है जबकि कव्जार के काव्य म उनी साधना प्रमुख रही है। कल्पना क बल पर जिस कल्पनाच्छादित रहस्यवाद की सृष्टि होगी वह साधक कवि की अनुभूत्यात्मक रहस्य भावनाओ स जातचित नही हा सकता इसलिए कबीर के रहस्य गीतो में छायावादी तत्त्वा का जभाव हात हुए भी विशुद्ध रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ अभिव्यजित हैं जिन्हें कोई भी अस्वाकार नहीं कर सकता।

### (५) ब्रह्म के प्रति प्रणय निवेदन

छायावाद और रहस्यवाद के इस सूक्ष्म अंतर का विश्वम्भर मानव न समझन की चेष्टा की है और लिखा है कि प्रकृति को चेतना प्रदान करना छायावाद है और ब्रह्म के प्रति प्रणय निवेदन करना रहस्यवाद है। किन्तु इसम उनका छायावाद विषयक दृष्टिकोण अव्याप्ति दाप स ग्रस्त है। प्रकृति का चेतना प्रदान करने क अतिरिक्त छायावाद और भी बहुत कुछ है जिसका संकेत करना मानव जा भूल गये हैं।

### (६) समष्टि सौंदर्य बोध

वाजपयी जा के अनुसार छायावाद व्यष्टि सौन्दर्य तथा रहस्यवाद समष्टि सौंदर्य-बोध की रचना है। मानव जीवन की विविध इकाइयो के भीतर आध्यात्मिक सत्य का झलक पष्टि सौन्दर्य-बोध है। जब यही सौंदर्य-बोध अधिक उदात्त होकर व्यष्टि सौंदर्य की सत्ता का अपन म आत्मसात कर लेता है तो वहा भावभूमि समष्टि

बोध बन जाती है अतः आध्यात्मिक गौ-दय-बोध छायावादी काव्य का स्वरूप है, इसी की उत्पत्ति भूमिका पर रहस्यवाद का अन्त होता है। छायावाद प्रथम और रहस्यवाद द्वितीय सोपान है। आध्यात्मिक तत्त्व गौ-ना मे है किन्तु छायावाद म ईश्वर की मृष्टि का आधार लेकर उमके सुन्दर पक्ष का चयन करत हैं तथा रहस्यवा म सुन्दर अमुन्दर की बात को सुनाकर एव ममरस भूमिका का उदवाघन किया जाता है। छायावादी काव्य मानवीय जीवन क सौम्य का व्यक्त करता है, किन्तु रहस्यवाद ईश्वर म एकाकार हान की आकृतिता का लेकर चरता है इसीलिए छायावाद म मानवीय सवेदनाआ की अधिगता है, किन्तु रहस्यवाद म आत्मा-परमात्मा का निर्देश अधिग रहता है। छायावा म वस्तुओ की स्वन-त्र सत्ता रहती है जबकि व ही नौकिक वस्तुयें रहस्यवा म प्रतीक का रूप धारण करके अभिव्यजित होती हैं।

वाजपेयी के इस लम्बे उद्धरण से हमारे कई कार्य एक साथ संपन्न हो जाते हैं। ऊपर जो प्रतिपद्य विद्वान् छायावा म की शली विशेष कहते हैं, उमका निराकरण हो जाता है और छायावाद तथा रहस्यवाद के मूलभूत अंतर तथा साम्य का भी दिग्गहन हो जाता है। उपयुक्त अर्थ म वाजपेयी जा न भी छायावा म को प्रथम और रहस्यवाद को द्वितीय सोपान कहा है किन्तु उसके पूर्व व छायावाद को स्पष्ट सोन्दय बोध और रहस्यवाद को समष्टि गौ-दय कह चुके हैं। द्यष्टि गौ-दय-बोध या मानवीय जीवन की उत्पत्ति भूमिका पर ही समष्टि गौ-दय-बोध अथवा रहस्यवा म की मृष्टि होता है यह तथ्य किसी भी रहस्यवा म कवि को कृति म देखा जा सकता है, स्वयं वाजपेयी जी न भी इस स्वीकार किया है। अतएव महीं वाजपेयी जी का अर्थ छायावाद और रहस्यवा म को क्रमशः प्रथम और द्वितीय सोपान कहने म उसके ऐतिहासिक काल क्रम से गनी रहा है और न ऐसा कभी सम्भव भी है।

### (७) अनुराग जनित आत्म विसर्जन

श्रीमती महादेवी का रहस्यवाद मध्यकालीन भक्त कवि की चेतना से कम किन्तु इस सगी की पक्तिवादी प्रवृत्ति से अधिक प्रभावित है फिर भी उनकी रहस्य चेतना साधनात्मक दार्शनिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर विकसित हुई है उहाने युग चेतना के अनुरूप भारतीय रहस्यवादी भावना का अग्रिम विकास किया है। इस दृष्टि से 'रहस्यवाद' पर उनके वक्तव्य विशेष महत्वपूर्ण हैं।

देवी जी के अनुसार जब प्रकृति का अनेकरूपता परिवर्तनशील विभिन्नता म, कवि ने एक ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर किसी असीम चेतन म और दूसरा उसके ससीम हृदय म समाया हुआ था तब प्रकृति का एक एक अंश एक अलौकिक पक्ति-व लेकर जाग उठा। परन्तु इस सम्बन्ध म मानव हृदय की सारी प्यास न बुझ सगी क्योंकि मानवीय सम्बन्ध म जब तक अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव नहीं धूल जाता तब तक वे सरम नहीं हो पाते और जब तक ये मधुरता

सोमातीत नहा हो जाती तब तक हृदय का जभाव दूर नहीं हाता। इसी से इस अनेकरूपना क कारण पर एव मधुरतम यत्तित्व का आरोपण कर उसक निवट जात्मनिवेदन कर देना इस का य का दूसरा सोपान बना जिस रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद नाम दिया गया।' देवी जी की इस परिभाषा को उद्धृत करते हुए डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है कि देवी जी ने 'परिभाषा के नाम पर एक ऐसी कहानी छड दी जो कवन रहस्यवादिओ की ही समझ म आ सकती है। मैं रहस्यवादी नहीं हू फिर भी महात्मा जी की सहजता तथा स्वाभाविकता को समझ रहा हू। मैं ही क्या उस कोई भी साहित्यिक क्षत्र म थोडा सा दखल रखने वाला व्यक्ति समझ सकता है। उमम जटिलता न तो भाषा-विषयक है न विचारो की जस्पष्टता सम्बन्धी ही है। यदि कोई जटिलता है तो मिश्रित वाक्य विन्यास की। मिश्रित वाक्य विन्यास कोई दाप नहीं माना गया है आशय स्पष्ट होना चाहिए। देवी जी की उपयुक्त परिभाषा म उनकी सहज का वात्मक जीर आलंकारिक भाषा को दखा जा सकता है किन्तु वह तो उनकी भाषा मात्र की विशेषता है क्या गद्य क्या पद्य सबत्र उहाने एक ही प्रकार की मिश्रित इकाई से सम्पन्न काव्यात्मक भाषा का प्रयोग किया है कोई उनकी मौखिक विशेषता ही न समझे तो इसम देवी जी का क्या योग? गुप्त जी की समझ म यह भी नहीं आया कि देवा जी क इस चक्र यूह का प्रथम सोपान कहीं स प्रारम्भ होता है। इस सम्बन्ध म मुझे स्तना ही कहना है कि वह उनक आरम्भिक शब्द से ही प्रारम्भ हुना है और अलौकिक यत्तित्व लेकर जाग उठा इस पनावलि के साथ समाप्त हो जाता है। इस प्रथम सोपान से देवीजी का आशय छायावादी काव्य चेतना से ही है जिमम कवि ने प्रकृति की अनेकरूपता परिवर्तनशील विभिन्नता के साथ तादात्म्य किया और उसका मानवीकरण करके हमारे सामने प्रस्तुत किया। प्रकृति की इस सचेतनता क मूल म उसकी अपरिमित जिज्ञासाय कुतहल की भावनायें रही है जो इस प्राकृतिक शक्ति की असीम चेतना और कवि की ससीम चेतना को अनुबोधित करके अभिव्यजित हुई है। इसी के बाद रहस्यवाद का द्वितीय सोपान प्रारम्भ हुआ जिसकी विशेषताओं क विषय म कोई भ्रांति नहीं है। रहस्यवाद की प्रथम और द्वितीय सोपान की विशेषताओं का सूक्ष्म निराकरण वाजपेयी जी ने किया है जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

### (८) अलौकिक शक्ति से शांत और निश्चल सम्बन्ध

डा० रामकुमार एक साथ बहुत कुछ हैं। वे कवि हैं नाटककार है शाधकर्ता और समीक्षक हैं। उह रहस्यवादी कवि कहा जाता है और रहस्यवाद के ऊपर आपका गम्भीर अध्ययन भी है। आपके अनुसार रहस्यवाद जीवात्मा का उस जन निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसम वह दिव्य और अलौकिक शक्ति स अपना शांत

और निश्चल सम्बन्ध जाड़ना चाहती है और वह सम्बन्ध यहाँ तक बढ जाता है कि दोना म कोई अन्तर नहीं रह जाता। इस परिभाषा में आई हुई कुछ पदावलीयों में, अतर्निहित प्रवृत्ति, दिव्य और जलौकिक शक्ति तथा उससे सम्बन्ध जोड़ने की आवश्यकता आदि भी कतिपय हिन्दी के डाक्टरों की समझ में नहीं आई हैं कि तु तथ्य तो स्पष्ट है उनमें भाति नहीं है। हाँ, जहाँ तक जीवात्मा का परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने की आकुलता का प्रश्न है, इस पर प्रकाश नहीं डाला गया है, इसलिये वर्मा जी की यह परिभाषा अव्याप्ति दोष से ग्रस्त है।

उपरोक्त प्राधिकारिक समीक्षकों तथा कवियों के अतिरिक्त हिन्दी में हर दूसरे लेखक ने रहस्यवाद की अपनी निजी परिभाषा प्रस्तुत की है। किन्तु यदि उन पर विचार किया जाय तो वे उपरोक्त परिभाषाओं का ही यत्किंचित परिवर्तित रूप हैं। पुनरुक्ति के कारण हम उन्हें प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं।

अंग्रेजी में रहस्यवाद को (Mysticism) कहा जाता है। यह शब्द (My) मूल धातु से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है चुन रहना। मिस्टिक या मिस्टिकल का प० मथुरा प्रसाद दीक्षित ने अपने समाविष कोष में जो अर्थ दिया है, वह इस प्रकार है—गूढ, गुह्य, गुप्त, गोप्य और रहस्य। रहस्यवाद या मिस्टिसिज्म पर गम्भीर अन्वेषण और विवचन का काम करने वाले स्पेन्सर तथा अडरहिल के मत हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

### (९) आनन्दमयी भावातिरेकता की स्थिति

स्पेन्सर के अनुसार 'रहस्यवाद हृदयमूलक धर्म है और जब यह किसी (अनन्त अज्ञात) शक्ति से संपर्कित हो जाता है तब आनन्दमयी भावातिरेकता की स्थिति का जन्म होना स्वाभाविक है। यहाँ तक कि उसके साथ भावात्मक नृत्य और गीत भी उन्मत्त हो जाते हैं।

Mysticism is a religion of the heart and when the heart is touched it is natural that there should be divine ecstasies, accompanied even by rapturous dancing and singing

—Joyous Mysticism Spencer

### (१०) भगवत्सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला

अडरहिल ने रहस्यवाद को मानवीय व्यक्तित्व का विलयन कहा है। उसके अनुसार वस्तुतः रहस्यवाद तभी उत्पन्न होता है जब साधक या कवि अपने व्यक्तित्व को किसी महत् शक्ति में विलीन कर देता है। व्यक्तित्व विलयन के इस यापार में एक नया प्रत्युत्पन्न श्रद्धा की अतीव आवश्यकता होती है। अडरहिल ने यह बात स्वीकार



करते हुए कहा है कि रहस्यवाद भगवत्सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला है। रहस्यवादी वह व्यक्ति है जिसने विभी न किसी सीमा तक इस एकता को प्राप्त कर लिया है अथवा जो उसमें श्रद्धा विश्वास करता है और जिसने इस एकता सिद्धि को अपना चरम लक्ष्य बना लिया है। (प्रिन्सिपल मिस्टिसिज्म)।

थिआलाजिया जमनिया ने इस सत्य को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

'He who would know before he believeth cometh never to true knowledge -Theologia Germania

अर्थात् वह जो श्रद्धा विश्वास के पूर्व ही विभी वस्तु को बुद्धि के द्वारा समझने की चेष्टा करता है सत्य के वास्तविक रूप को नहीं जान सकता। भारतवर्ष में भी रहस्यानुभूति को समझाने के लिए श्रद्धा को आवश्यक उपकरण समझा गया है।

### (११) विवेकजय मूकता

जमनी के एक अग्र महान् दार्शनिक रहस्यवादी ने अपने ग्रन्थ में ईश्वरानुभूति की अनिवचनीयता की विशद चर्चा के उपरान्त मॅट आगस्टाइन का अधोलिखित उद्धरण अपने मत की पुष्टि में प्रस्तुत किया है—

'ईश्वर के सम्बन्ध में किसी व्यक्ति का सर्वोत्तम कथन यही हो सकता है कि वह अपने अन्त विवेक और बुद्धिमत्ता के बल पर उसके सम्बन्ध में मौन धारण कर ले।' (लाइट लाइफ एण्ड डेथ पृ. १-२।) इस विवेकजय मूकता का यही आशय है कि ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा जायगा वह कम ही रहेगा। नेति—नेति का भी यही अर्थ है।

### (१२) अतर्ज्ञान का आश्रय

जमीष्ठ लक्ष्य तक साधक को पहुँचाने का एक ही साधन होता है और वह अतर्ज्ञान ही है। अतर्ज्ञान का अर्थ है आत्मा द्वारा परमात्मा की प्रत्यक्षानुभूति। इस विषय में डॉ० रानाड ने लिखा है कि 'अतर्ज्ञान बुद्धि भावना अथवा इच्छा शक्ति का विरोध न करके इन सबको भेदकर इनके पीछे स्थित रहता है रहस्यवादी साधना में बुद्धि इच्छा शक्ति और भावना सभी आवश्यक हैं वस इन्हें अतर्ज्ञान का आश्रय मिलना चाहिए। रहस्यवाद में अतर्ज्ञान की प्रमुखता के कारण ही उसे अनुभूत्यात्मक यापार कहा गया है जिसे बुद्धि के द्वारा न तो व्यक्त किया जा सकता है, न उसका विवेचन विश्लेषण और कदाचित् इसलिए विश्व के सभी महान् रहस्यवादी कवि रहस्य सत्ता के विश्लेषण के समय अपनी असमर्थता स्वीकार करके उसे 'गू गू का गुड़' कह उठते हैं। कबीर ने यही किया। रवींद्र ने भी यही किया। प्रसाद जी ने भी अपनी असमर्थता स्वीकार कर ली।

जी० एम० वाट ने (The Intuition of God) में भी यही बात कही है।

अतर्पन का स्वरूप विश्लेषण करत हुये उन्होंने साधक की कठिनाइयाँ की ओर भी संकेत किया है। उही के शब्दों में रहस्यवादी अपनी साधना में ऐसी राहों से गुजरता है, जहाँ से कोई न गुजरता हो। उसे वह चीज प्राप्त होती है जो केवल परम्परा पालन से नहीं मिल सकती, वह है—तीव्र और प्रत्यक्ष अतदृष्टि के एक क्षण में ईश्वर की अनुरागमयी अनुभूति।' (पृ० २१)।

### (आ) रहस्यवाद की विविध अवस्थायें

रहस्यवाद में कवि और परमोच्च सत्ता के बीच वही सम्बन्ध होता है जो आराध्यक और आराध्य, उपासक और उपास्य साधक और साध्य जयवा ज्ञाता और ज्ञेय के बीच होता है अतएव सत्ता ने अपनी साधना द्वारा माध्य को प्राप्त करने के लिए जितनी अवस्थाओं का वर्णन किया है, उतनी ही अवस्थायें रहस्यवाद की भी हो सकती हैं। संक्षेप में उन्हें हम इस क्रम से प्रस्तुत कर सकते हैं।

#### (१) परमात्मा के प्रति आश्चर्य कुतूहल और जिज्ञासा की भावनायें

यह कवि या साधक की प्रथम अवस्था है जब वह ईश्वर की लीला से विस्मय विमुग्ध होकर स्वतः किसी अज्ञात और महान सत्ता का आभास पान लगता है। परम सत्ता के प्रति रहस्यभरी यह जिज्ञासा की भावना प्रायः हर रहस्यवादी कवि की रचनाओं में मिल जाती है। रहस्य और विस्मय की भावनायें छायावादी का यकी भी प्रमुख विशेषतायें हैं। किन्तु केवल यही अवस्था रहस्यवाद का चरमोत्कृष्ट रूप नहीं है, यह तो उसका प्रथम सोपान है। उदाहरणार्थ, पतंजली की 'मीन निमतर्ण' शीपक प्रयोग रचना में केवल जिज्ञासा कुतूहल की भावनायें ही व्यक्त हुई हैं, एकाकारता या तन्मयता की अवस्था का चित्रण नहीं है।

विश्व के पलकों पर सुकुमार

विचरते हैं जब स्वप्न अज्ञान।

न जाने नभसों से कौन

सदेशा मुझे भेजता मीन।

वदिक ऋषि तथा प्रसाद की जिज्ञासाओं का स्वरूप हम इस निबन्ध के आदि में देख चुके हैं। रहस्यवादी का यकी में यह प्रथम अवस्था आवश्यक रूप से हो यह तथ्य अनिवाय नहीं है। उदाहरणार्थ, गुरु के उपदेश से कबीर ईश्वर की ओर जाकृष्ट हो जाते हैं अतएव उनके पदों में यह प्रथमावस्था विरल या प्रायः नही के बराबर मिलती है—

जानी जानी रे राजा राम की कहानी

अंतर जाति राम परकासा गुरु मुख विरल जानी—कबीर।

(२) सवत्र परमात्मा की झाकी देखना तथा आत्मा परमात्मा के अद्व त सम्ब ध के प्रति दृढ आस्था

अध्ययन चिंतन मनन (आत्म नान) जथवा गुह उपदेश के द्वारा जब साधक को आत्मा परमात्मा के बीच अभेद सम्ब ध का ज्ञान हो जाता है और जब वह अपन इष्ट को सवत्र, प्रकृति व कण रण म देखन लगता है तब रहस्यवाद की द्वितीय अवस्था प्रारम्भ होनी है। अद्व तावस्था का नान और परम सत्ता का तत्विक रूप से दशन—य दा तथ्य इस अवस्था म विशेष आवश्यक होत हैं। भगवत गीता म परम सत्ता को ही इस सष्टि की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है—

यञ्चामि सवभूताना बीज तदहमजु न ।

नतस्ति बिना यत्स्या मया भूत चराचरम ।

गाना १०/३९

अर्थात् हू अजु न, समस्त प्राणियो की उत्पत्ति का कारण मैं ही हूँ। जो कुछ जड चतन है वह मरे बिना नहीं है। अथ यह है कि जड जगम—सवत्र ईश्वर की सत्ता विद्यमान है सब इश्वर क अण हैं और कवि या साधक जब इस तथ्य को जान जाता है तब उसक अत करण म उस परम सत्ता के प्रति रागात्मकता प्रगाढ हाती जाती है। कबीर का निम्न दोहा इस प्रसंग म दखा जा सकता है—

लाली मरे लाल की जित देखूँ तिन लाल ।

लाली देखन में गई, में भी हो गई लाल ॥

एत जी ने रहस्यवाद की इस द्वितीय अवस्था को अपन एक प्रगीत म इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

एक ही छबि क असक्य उडगन

एक ही सव म स्पदन ।

एक छबि के विभाव म लीन,

एक विधि के आधीन ॥

एक ही ता असीम उरलास

विषव म पाता विविधाभास ॥ (परिवतन)

(३) दशन लालसा, परमात्मा के प्रति गहरा आकषण, प्रेम और विरह का अनुभव

ईश्वर की सावत्रिक झाकी देखन व अनंतर कवि या साधक के अत करण म जो विशेष अनुभूति जागत होती है वह उसक दशन की उत्कृष्ट लालसा है। इस अवस्था विषय म भक्त साधक या ज्ञाता क अत करण म परमाच्च सत्ता व प्रति गहरा आकषण उदभूत हाता है और वह उसक प्रेम विरह की विविध अनुभूतिया करन

लगता है। कबीर अपने पदों में इस अवस्था में 'बबर मिलेंगे आई' की रट लगाकर परम तत्व के दर्शन की प्रायना करते हैं—

बिरहिन अभी पाय सिरि, पानी घूसी घाड़ ।  
एक सबद कहि पीव का, बबर मिलेंगे आई ॥

नित्य दर्शन की यह विपासा गम्भीर वियोग व्रणन में समाप्त होती है। कबीर के पदों में इस स्थिति की अत्यन्त मार्मिक अनुभूतियाँ मिलती हैं—

आँखदियाँ झाई पढी, पय निहारि निहारि ।  
जीभदिया छाला पडया, राम, पुकारि-पुकारि ॥  
आई न सकौ तुज्ज प, सकूँ न तुज्ज बुलाइ ।  
जियग मा ही सेहुभे, बिरह तपाइ-तपाइ ॥

महादेवा के निम्नांकित गीत में उनकी प्रथम मिलनावस्था की अनुभूति स्मृति और वर्तमान काल की वियाग व्यथा का स्वरूप देखा जा सकता है—

इन ललचाई पलकी पर,  
पहरा था श्रीडा का  
साम्राज्य मुझे दे डाला,  
उस चिनवन ने पीडा का ।

गई वह अधरा की मुम्बान, मुझे मधुमय पीडा में बोर ।  
गए तबसे कितन युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण ।

[ ४ ] परमात्मा के साथ आत्मा के अनेक सम्बन्धों की स्थापना

यह चतुर्थ अवस्था है। इस मोपान पर आकर कवि या साधक विविध प्रकार से परमात्मा के साथ अपने सम्बन्धों की चर्चा करके उसका सान्निध्य पाने के लिए विह्वल हो उठता है। कबीर दास जी ने इस सन्दर्भ में विशेष मार्मिक पद लिखे हैं—

हरि मोर पाव मैं हरि की बहुरिया, या  
हरि माग पीव भाई हरि मोर पीव  
हरि बिनु रहि न सकै मोर जीव ॥

पति-पत्नी अथवा गम्प-य जीवन के रूप में ही आत्मा परमात्मा के पारस्परिक मधुर सम्बन्धों का प्रगटीकरण संभव है और इसी रूप में हिन्दी में इसका प्रकृत स्वरूप मिलता है। पत्नी के हृदयादगारों की जितनी अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति पति से हो सकती है, उतनी अर्थ विसी से नहीं हो सकती, अर्थ सम्बन्धों में नीतिमान, मर्यादा, सामाजिक, धार्मिक बन्धन, स्पष्ट अभिव्यक्ति पर नियन्त्रण करते हैं। अतएव

जितने भी हिन्दी के रहस्यवादी कवि हुए हैं उन्होंने दाम्पत्यरूप में ही अपनी विह्वलता, मिलनोत्फुल्ल व्यक्त की है। सूफ़ी कवियों ने भी यही भाग अपनाया किन्तु वहाँ पर फारसी के प्रभाव के कारण ईश्वर को प्रियतमा तथा आत्मा को प्रियतम या साधक माना गया है। जायसी आदि ने अपने रहस्यवाद में पदमावती को परमात्मा मानकर ही रत्नसेन रूपी आत्मा से उसकी प्राप्ति के लिए यत्न करवाये हैं। हिन्दी में आत्मा प्रियतमा तथा परमात्मा प्रियतम के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ईश्वर के प्रति मार्मिक विरहानुभूति से सम्बन्धित कबीर का एक पद हम नद्धत कर रहे हैं

बालम बाबो हमरे मेरे तुम बिन दुखिया देह रे ।

सब कोई कहे तुम्हारी नारी मोको यह सदेह रे ।

एक भेव हू मेज न मोवे तब लग कस नेह रे ।

अत्र न भावे नीर न आव गह वन धरे न धीर रे । —कबीर ।

गोस्वामी तुलसी जी ने अपने रहस्यात्मक पदा में स्वामी और सेवक के वाक्यों तथा कर्त्तव्यों की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है

ब्रह्म तू हीं, जीव, तू ठाकुर हीं चैरो ।

सात मात गुरु सखा, सब विधि हितु मेरो ।

तू ब्रह्म है मैं उसका शुद्ध अज्ञजीव हू तू ठाकुर है और मैं अनुचर हू । तू सात, मात, गुरु सखा सब कुछ होकर मेरा हित चितक है । इस तरह विविध प्रकार से उन्होंने ईश्वर से अपने सम्बन्ध को स्थापित किया है ।

सत कवि रदास ने भी यही काय किया है । वे अपने एक पद में कहते हैं—

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती,

जाकी जोति अर दिन राती ।

प्रभु जी, तुम मोती हम धागा

जसे सोनहि मिलत मुहागा ।

आधुनिक युग में निराना जी ने भी तुम और मैं शीर्षक कविता में इसी अद्भुत वादी सम्बन्ध को विविध प्रकार से सम्बन्धों द्वारा व्यक्त किया है

तुम तुम हिमालय शृंग

और मैं बचल गति सुर सरिता

तुम विमल हृदय उच्छ्वास

और मैं कात कामिनी कविता

तुम प्रेम जीर मैं शान्ति ।

महादेवी जी ने भा बीन भा हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भा हूँ नामक प्रगीत में यही बात अभिव्यक्त की है । इस प्रकार परमात्मा के साथ आत्मा के विविध

स्वरूपों का निर्धारण करना रहस्यवाद की सामान्य विशेषता ही है। इस अवस्था विशेष में ललितवादी भावना की अविक्ल अभिव्यक्ति होती है।

### आत्म समर्पण और पूणत तादात्म्य भावना

यह रहस्यवाद की अंतिम अवस्था है जहाँ साधक या कवि पूणत आत्म समर्पित होकर अपने व्यक्तित्व का विलयन परमात्मा में कर देता है। रहस्यवाद का यही चरम रूप है। साध्य साधक का महामिलन, अज्ञ और अज्ञी की एकाकारता या व्यष्टि का समष्टि में पयवमान ही रहस्यवाद का अंतिम लक्ष्य होता है जो इसी अवस्था विशेष में सहज सिद्ध होता है। इस सदम में कबीर ने कतिपय पद द्रष्टव्य हैं

कबीर कूता राम का, मुत्तिया मेढ़ा नाउ ।

गल राम की जेवडी, जित खीचै तित जाउ ॥

कबीर की पूणत आत्मसमर्पण की भावना अच्छी तरह व्यक्त हुई है।

बहुत दिनत थै मैं प्रीतम पाय

भाग बडे घर बैठे आये ।

मगलचार मौही मन राछा

राम रसाइण रसना चाखी ।

—

कहैं कबीर मैं कछू न कीन्हा

सखी सुहाग राम मोहि दीन्हा ॥

—कबीर

इस पद में मिलन के अवसर की आन दातिरक्ता का चित्रण किया गया है। कबीर ने कुछ नहीं किया राम ने हा अनुग्रहपूर्वक अपना कर उन्हें अचन सीभाग्य प्रदान किया है।

मीराबाई की पदावली में भी रहस्यवाद की इस अवस्था के जगणित मार्मिक चित्र मिल जाते हैं। वे पूणत ईश्वर की अनन्य आराधिका हैं जो कुछ वह देगा, वही लेंगी, जो पहनाएगा पहनेंगी, और यदि वह बेचना भी चाहेगा तो मीरा चुप चाप, प्रियतम के आदेशानुसार बिक भी जायेंगी। समर्पण की ऐसी अनत भावना और एकांत निष्ठा की ऐसी सपन अभिव्यक्ति अथ रहस्यवादी कवियों में नहीं मिलती। वस्तुतः मीरा का नारी हृदय और वियोगजय उनकी वेदनायें सहज निश्छल रूप में उनके गीतों में अभिव्यक्त हो गई हैं। निम्नांकित गीत में उनकी प्रियतम के प्रति अगाधनिष्ठा और प्रेमजय अनन्यता का दिव्यरूप देखा जा सकता है

मर तो गिरिधर गापाल दूसरा न कोई ।

दूसरा न कोई, साधो सकल लोक जोई ।

अप तो बात फँस गई जान सब कोई ।

मीरा प्रभु लगन लागी, होनी होय सो कोई ।

जो कुछ होना हो, होता रह मीरा की प्रीति ता एकमात्र गिरिधर से है, वही उनके जीवन अवलम्बन है। समाज का उहे किंचित भी भय नहीं है, कोई कुछ भी कहता रहे पर वे अपने पथ पर अडिग है और वस्तुतः कौटुम्बिक भर्त्सना का पात्र बनकर भी उठाने बन म निकल जाना श्रेयस्कर समझा, किन्तु अपनी इस विराट प्रीति को वे किंचित भी कम न कर सकी ।

आधुनिक युग में महादेवी के रहस्यप्रगीतो में भी आत्म समर्पण और एकाकारता के अच्छे चित्र मिलते हैं किन्तु देवी जी मिलन चाहते हुए भी अपने यत्नित्व का विलयन नहीं चाहती, इसलिए विरह ही उनका एकमात्र आराध्य बन गया है

हो गई आराध्य मय मैं

विरह की आराधना ले ।

उनकी एकाकारता का चरम रूप निम्नांकित गीताश में देखा जा सकता है

जाकुनता ही जाज हो गई तमय राधा

विरह बना आराध्य द्वत क्या कैसी वाधा ।

डा० रामकुमार वर्मा के रहस्यगीतो में भी यत्न-व्रत समर्पण की भावनायें और एकाकारता का आनंद अभिप्रेक्ष्य हुआ है किन्तु वे मूलतः रहस्यवादी कवि न होकर प्रेम और शृंगार के कवि हैं। रहस्य उनकी एक मनोवृत्ति रही है और अधिकतर उन्होंने रहस्यवाद का प्रथम दो तीन अवस्थाओं को ही चित्रित किया है। वस्तुतः जो रहस्य की मूल साधना समर्पण और एकाकारता होती है, उस सोपान पर वे पहुँच नहीं सके हैं ।

ऊपर रहस्यवाद की जिन अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है वे प्रथम इसी रूप में साधक या कवि के अंतःकरण में जागृत होती है यह वस्तु नहीं है यह उनका एक उदभूत होने का सामान्य क्रम है। कवि अपनी प्रतिभा के बल पर जारम्भिक अवस्थाओं का चित्रण न करके भी अपनी साधना के श्रेष्ठ सोपानों पर आ सकता है।

## (५) रहस्यवाद के विभिन्न सोपान

यहाँ हम दार्शनिक और साधनात्मक रहस्यवाद के भी विभिन्न सोपानों की चर्चा कर देना आवश्यक समझते हैं। ऊपर जिन अवस्थाओं का वृत्तांत है, वे अवस्थायें रहस्यगीता में पाई जाती हैं। साधकों में ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधारण प्राण विश्व प्राण और महाप्राण—ये तीन सोपान माने हैं। प्रथमावस्था में साधक स्वप्राण की साधना में तल्लीन रहता है द्वितीय अवस्था में साधक की आत्मचेतना

समस्त जगत से अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करती है और अंतिम अवस्था में साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। इन्हें हम दूसरी पदावली में जागरण, आत्मा का व्यापकत्व तथा समर्पण और एकाकार की स्थितियाँ भी कह सकते हैं।

सूफ़ी रहस्यवाद में शरीरगत, तरीकत, हकीकत और मारफन—साधना के इन चार भागों के आधार पर रहस्यानुभूति की विविध अवस्थाओं को—चार मोपानों में विभक्त कर दिया गया है। इन्हें हम जिनासात्मक अवस्था, विश्वासपूर्ण अवस्था, विरहानुभूति की तथा आत्मा-परमात्मा के मिलने की अवस्था कह सकते हैं। इनमें और उपयुक्त विवेचन हिन्दी रहस्यवाद की अवस्थाओं में केवल नाम का अंतर है मूल वस्तु प्रायः एक ही है। पश्चिमी रहस्यवाद में अवश्य अवस्थाओं का संकेत किया गया है। यद्यपि इनमें भी पूणत साम्य है किन्तु वहाँ पूणतादात्म्य के पूर्व एक गहन अंधकार की अवस्था मानी गई है, जिससे गुजरकर और परीक्षित होकर ही साधक साक्षात्कार और आत्म विसर्जन कर पाता है।

### (ई) रहस्यवाद के भेदोपभेद

पाश्चात्य और भारतीय प्रायः सभी विद्वानों ने रहस्यवाद के प्रमुख निम्नांकित भेद किए हैं —

- (१) पान और दाशनिकता प्रधान रहस्यवाद
- (२) दाम्पत्य मूलक या प्रेमपरक रहस्यवाद।
- (३) सौन्दर्य मूलक रहस्यवाद।
- (४) भक्ति और उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद तथा
- (५) प्राकृतिक रहस्यवाद।

बाबू गुलाबराय जी ने साधनात्मक रहस्यवाद को भी रहस्यवाद का एक भेद कहा है किन्तु उन्होंने सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद को पथक महत्व न देकर उसे दाम्पत्य मूलक रहस्यवाद के साथ संयुक्त कर दिया है और इस प्रकार उनके भी भेदोपभेदों की संख्या ५ ही है। हमने यहाँ पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर रहस्यवाद के भेदोपभेदों को प्रस्तुत किया है।

### [१] दार्शनिक रहस्यवाद

स्वर्जन के अनुसार रहस्य भावना दार्शनिक तब कही जायगी जब कवि अपनी पारणार्थ्ये इस ढंग से सामने रखे कि वह बुद्धि और भावना को समान रूप से प्रभावित करे। ऐसे लेखक प्रयुक्त बुद्धिवादी होते हैं और उनका मूल सम्बन्ध मत्स्य से रहता है।

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी।

फूटा कुम्भ जल जलही समाना, यह तत्त कथोप्यानी।



कबीर के इस दोहे में दार्शनिक रहस्यवाद के ही दर्शन होते हैं। निराला की 'तुम और मैं' रचना भी दार्शनिक रहस्यवाद का अच्छा उदाहरण है।

दार्शनिक रहस्यवाद में जिज्ञासा आश्चर्य, कुतूहल की भावनाएँ प्रमुख रहती हैं, इनमें तक कम दार्शनिक चेतना जीव अन्तिम सत्य को जानने की चेष्टा अधिक रहती है।

### [ २ ] प्रेमपरक रहस्यवाद

रहस्यवाद का मधुरतम रूप प्रेमपरक रहस्यवाद में ही व्यक्त होता है। पति पत्नी के प्रेम की गुह्यता प्रियतमा की प्रिय के बियोग में विरह कातर विदग्ध भावनाएँ, निवेदन, दय समर्पण एकाकार आदि की विविध मन स्थितियाँ इसी में निर्व्याज रूप से अभिव्यक्त हो पाती हैं। प्रेमपरक रहस्यवाद में दिव्य या अलौकिक प्रेम को ही जीवन की रहस्यात्मकता का सुलभाव समझा जाता है कबीर, जयसी मीरा महादेवी आदि की रचनाओं में रहस्यवाद के प्रेमपरक रूप का निमल और पुनीत रूप अभिव्यक्त हुआ है कबीर ने तो अपने नयनों की कोठरी में पुतली का पलंग बिछाकर और पलकों की चिक डालकर अपने प्रियतम को बिठाकर रिझाया है।

नयन की करि कोठरी, पुतली पलंग बिछाय ।

पलकन की चिक डारि क पिय को लीन्ह बिठाय ॥

### [ ३ ] सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद

सौन्दर्य की आध्यात्मिकता का भावात्मक प्रकाशन कहा जाता है। अपने प्रियतम के अविनश्वर सौन्दर्य की यापक काकी प्रस्तुत करके उसके प्रति आकृष्ट होना या सौन्दर्य को दिव्य रूप और रहस्यात्मक रूप में प्रस्तुत करके सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद की सृष्टि की जाती है। यहाँ प्रियतम का दिव्य सौन्दर्य ही साधक की चेतना को उद्दीप्त करके उसे अपरिमित आह्लाद प्रदान करता है। प्रसाद जी के 'तुम कनक किरण के अन्तराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों नामक प्रगीत में सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद की ही अभिव्यक्ति हुई है। इस रचना में उन्होंने उपादान लक्षणा के द्वारा लाज भरे सौन्दर्य को प्रस्तुत किया। वे सौन्दर्य की स्थूलता को न देखकर उसकी अतीन्द्रिय या वायवीय दिव्यता का वर्णन करते हैं और उसके अन्तराल में निवास करने वाला अहर्निश सौन्दर्य चेतना की रहस्यात्मकता को वे कुतूहल और विस्मय की दृष्टि से देखते हैं।

### [ ४ ] भक्ति और उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद

रहस्यवादी चेतना का चरम परिपाक भक्ति और उपासना में ही होता है। भक्ति और उपासना की भावना के कारण ही रहस्यवादी काव्य की सृष्टि भी हुई, अनन्य प्रेम और अपूर्व आस्तिकता, श्रद्धा और भक्ति की भावनाएँ इस प्रकार के

रहस्यवाद में अपने उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्ति होती है। नवधा भक्ति और उपासना की विभिन्न पद्धतियों का समावेश भी भक्ति और उपासना सम्बन्धी रहस्यवाद में होता है।

सूर, तुलसी और मीरा के पदों में भक्ति और उपासना-परक रहस्यवाद की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हुई है। आधुनिक काल में भक्ति और उपासना की भावना की जगह आस्तिकता शेष है, इसलिए प्रेमपरक रहस्यवाद के दशन तो महादेवी जी के गीता में मिल जाते हैं किन्तु उनके गीत भक्ति उपासना के अन्तर्गत समाहित नहीं किए जा सकते। वैसे स्फुट रूप से प्रसाद, निराला और महादेवी के गीत भी इस प्रकार की विशेषताओं से भरपूर हैं पर वे अपवाद ही कह जायेंगे।

### (५) प्राकृतिक रहस्यवाद

ईश्वर की सौन्दर्य छवि समस्त सृष्टि में देखने, परमात्मा के प्रति अपने विविध प्रकार के सम्बन्धों की नियोजना तथा समयता और एकीकरण की अभिव्यक्ति के मूल में प्राकृतिक जगत के प्रतीकों का ही सहारा कवि को लेना पड़ता है और वही वही प्रकृति के माध्यम से ही वे उस परमसत्ता की ज्ञानी प्रस्तुत करने लगते हैं, ऐसे स्थलों पर प्राकृतिक रहस्यवाद की सृष्टि हो जाती है। इनमें से प्राकृतिक प्रतीक योजना का बाहुल्य तो सभी रहस्य कवियों में मिलता है किन्तु विशुद्ध रूप से प्राकृतिक रहस्यवाद की सृष्टि आधुनिक युग की देन है। यह प्रकृति छायावाद का ही अग्रिम चरण है। छायावाद प्रकृति का सचेतन रूप में देखता है रहस्यवादी-छायावादियों ने उस सचेतन सत्ता की परमसत्ता के रूप में निरूपित किया है। प्रसाद, निराला, पत और महादेवा के अनेक प्रगीत इस श्रेणी में आ जाते हैं। प्रसाद का 'हे सागर सगम अरुण नील', 'बामायनी' के 'आशा' संग में—'महानील इस परम व्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्मानि' बाला अश निराला की 'जुही की बली महादेवी की, रूपसि तेरा घन कश पाश' या 'रूपसि' तेरा नतन सुन्दर, आलोक तिमिर सित असित चार आदि प्रगीत इस प्रसंग में उदाहरणस्वरूप देख जा सकते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद के केवल दो ही भेदों की चर्चा की है—

(१) भावात्मक रहस्यवाद और

(२) साधनात्मक रहस्यवाद।

वस्तुतः रहस्यवाद के जिन भेदोपभेदों की चर्चा ऊपर की गयी है वे भावात्मक रहस्यवाद की ही शाखाएँ हैं। साधनात्मक रहस्यवाद में योग और कमलाण्ड की साधना प्रमुख होती है। गारुड कबीर के कतिपय पद महायाना बौद्धों, शाक्तों और तान्त्रिकों का रहस्यवाद इसी प्रकार का था। श्री रामजलाल बघीतिया ने हिन्दी साहित्य और विभिन्नवाद शीर्षक की अपनी रचना में साधनात्मक रहस्यवाद का उदाहरण

इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

अबधू जागत नीद न बीज ।

काल न खाइ, कल्प नहीं ध्यापै, देही जुरा न धोज ।

उलटी गग समुद्रहि सौखे ससिहर सूर गरास ।

नवगिह मारि रोगिया बठे जल मे ध्वव प्रकास ।

डाल गह्या प मूल न मूथ मूल मह्या फल पावा ।

बोवई उलटि शरप की लागी, धरणि माहारस खावा ।

बठि गुफा म सब जग देन्या बाहरि बछू न सूय ।

उलट धनिक पारधी मारयो यहू अचरज कोइ वृक्ष ।

साधनात्मक रहस्यवाद में योग सम्बन्धी गुह्य बातों की भरमार होने के कारण बुद्धिजय उत्तरवासियों के अनिरेक और कम काण्डों के आधिक्य के कारण नीरसता अस्पष्टता गुह्यता गहनता, अश्लीलता तथा बौद्धिकता आ गयी है। इसी कारण बहुत समय तक तो बौद्धा, तान्त्रिकों शाक्तों का यह काव्य साहित्य का अंग ही नहीं माना जाता रहा है किन्तु उसमें भी, (भले ही सामित मात्रा में सही) रसास्वादन की क्षमता है, और अनेक लोग पढ़कर आज भी उसमें तन्मयता का अनुभव करते हैं, अतएव अब वह भी साहित्य की श्रेणी में परिगणित किया जाने लगा है।

डा० गणपतिचन्द्र गुप्त ने रहस्यवाद के उपयुक्त सभी भेदों को औपचारिक अप्राकृतिक और अनावश्यक कहा है और उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय देते हुए रहस्यवाद का निम्न दो रूपों में विभक्त किया है -

(क) यथार्थ रहस्यवाद और

(ख) काल्पनिक रहस्यवाद ।

प्राचीन सत कवि—कबीर दादू को उन्होंने यथार्थ रहस्यवादी कहा है और आधुनिक कवि—प्रसाद पत निराला आदि को काल्पनिक रहस्यवादी । उनके इस आक्षेप से मतलब क्या महादेवी से है, स्पष्ट नहीं होता । उनके अनुसार सच्चे रहस्यवादी जीवन के अंत तक रहस्यवादी रहते हैं किन्तु काल्पनिक रहस्यवादिता का रंग समय के साथ फीका पड़ जाता है जैसे पत और निराला के साथ हुआ ।

गुप्त जी का यह विभाजन बहुत दूर तक समोचीन है किन्तु विषय की स्पष्टता के लिए हमें इनका विस्तृत विभाजन करना ही पड़ेगा । उपयुक्त भेद रहस्यवाद के विभिन्न अंग न होकर भेद विभेद ही हैं । यह दूसरी बात है कि कभी कभी एक भेद की कतिपय विशेषताएँ दूसरे में भी समिश्रित लिखाई दे जाती हैं ।

(उ) रहस्यवाद उद्भव और विकास

[क] वैदिक साहित्य में

परमोच्च सत्ता विषयक जिज्ञासा भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से मिलती

है। ऋग्वेद में प्राकृति रहस्य के प्रति बौद्धिक जिनामार्ग अत्यधिक मात्रा में मिलती हैं। इसका एक उद्धरण हम आरम्भ में उद्धृत भी कर चुके हैं। यहाँ पर हम जयववेद का एक उदाहरण बौद्धिक जिज्ञासा का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए दे रहे हैं—

क्व प्रेष्यत नीप्यत ऊर्ध्वो जग्नि क्व प्रेष्यत पवत मातृग्निवा  
यत्र प्रेष्यतीर भियन्त्यावत स्वर्म्म न बूहि कतम स्विदेव स ।

अथववद १०-७-४

जब यह सूय किसकी अभिलाषा में प्रकाशमान है, यह पवन कहा पहुँचने की इच्छा से कहाँ प्रवहमान है य सब कहा के लिए जा रहे हैं वह आश्रम बताओ, वह कौन सा पदार्थ है ?

इस प्रकार बौद्धिक वाग्मय में रहस्यवाद की प्रथमावस्था जिज्ञासा, कुतूहल, विस्मय आदि भावनाओं की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

### (ख) उपनिषदों में

उपनिषदों में इस मूल सत्ता के आवेपण का गभीर दार्शनिक प्रयत्न है। सबसे पहले उनमें आत्मा को अजर, अमर, चिरंतन और सावदेशिक तथा सावकालिक माना गया। एतरेय उपनिषदों में यह कथन इस सद्म में उल्लेखनीय है—

पहले यह जगत एक मात्र आत्मा ही था। उसके सिवा और कोई क्रियाशील वस्तु नहीं थी उसने यह साचा कि मैं 'तुम्हारे की रचना करूँ।' इस प्रकार इस जगत का नाना यापारा और वस्तुओं के मूल में आत्मा की सत्ता को मानकर उसकी अखण्डता और सावदेशिकता प्रतिपादित की गयी। भौतिक शरीर के नष्ट हो जाने पर भी उसे अमर माना गया। वह यदि अज्ञान से रहित अनादि, अनन्त और शाश्वत रही गयी और इसका ज्ञान केवल अज्ञान के द्वारा ही सम्भव माना गया। मुण्डकोपनिषद् में इस अज्ञान के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है—

'सत्यं लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येणनित्यम् ।

अज्ञान शरीरे जातिमयोहि शुभ्रो य पश्यति यतय क्षीणदोषा । (३-१-५)

अर्थात् सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान, ब्रह्मचर्य से इस अज्ञान या आत्मदशन की उपलब्धि होती है। तब साधक अपने शरीर के भीतर ही शुभ्र ज्योति के दशन करता है।

आत्मदशन की इस साधना को बहुत जटिल और कठिन बताया गया है। ऋषियोंने इस दुरस्य धारा, अर्थात् धुरे की धारा के समान पना कहा है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए याग का भी सहयोग लिया जाता है। कपोठनिषद और मुण्डकोपनिषद में इस विषय में कहा गया है कि इन्द्रिया, मन, हृदय या कल्पना से परमब्रह्म का ज्ञान सहज नहीं है उस प्राण को उध्व करके और ब्रह्म का अनवरत

ध्यान करके ही पाया जा सकता है। रहस्यवादी में योग का यह प्रयोग ही नहीं कर सिद्धो नाथो एवं सन कवियों ने किया है। योगिक त्रियाओ जीर साधनाओ का आत्म ज्ञान की प्राप्ति में सहयोग आवश्यक बताकर सिद्धो, नाथो ने इस परम सत्ता का गुह्य बना दिया और उस प्राप्त करने के लिए गुह्य साधनाओ का प्रयोग भी करने लग। यह साधना अंतराभिमुखी थी जिसमें लौकिक विधि विधानों का कोई स्थान नहीं था। इसलिए भी इसे गुह्य कहा जाने लगा था। इसके ठीक विपरीत परमब्रह्म की प्राप्ति के लिए समाज में एक अन्य साधारण उपासना पद्धति भी प्रचलित थी जिसमें सामाजिक विधि विधानों का याग तथा इसमें लोक धर्म की प्रतिष्ठा के साथ ब्रह्म की उपासना और प्राप्ति पर बल दिया जाता था। भक्त कवियों ने इसी दूसरे सहजोपासना वाली पद्धति का अवलम्बन लिया और ब्रह्म के अज्ञान दशन करने का प्रयास किया। इस भक्ति पद्धति में अनन्यता का भाव सर्वाधिक अपेक्षित था। यह पूणत प्रेम और श्रद्धा पर आश्रित थी।

### (ग) मध्य काल में

गुह्य साधना तंत्र और याग के अतिचार से कुछ ही दिनों में भ्रष्ट हो गयी। उसका आवरण ओढ़कर ढोगियों ने ऐसे संप्रदायों की स्थापना की जिसमें बाह्य आचार विधानों को एकत्र उपक्षिप्त कर भरवी चक्र तारा, कृत्या आदि का तांत्रिक उपासना पर बल देकर उच्छ्वलता और अनतिक्रमता का नग्न प्रदर्शन किया गया। दक्षिण में देवदासी की प्रथा भी इसी तांत्रिक साधना की उपज थी। धीरे धीरे एक ब्रह्म टूट-टूट कर अनेक देवी देवताओं में बिसर गया और तांत्रिक इन देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए नर-बलि, पशुबलि भी देने लग। इस समय का उद्देश्य यह था कि य नर या बच्चे प्रभु से प्रेम कर आज्ञा उसी की साधना में रत रहे किन्तु इस कमकाण्ड का भयकर दुष्परिणाम भारत को भोगना पड़ा।

इस प्रकार वैदिक कालीन शाश्वत ब्रह्म सत्ता की जिज्ञासा वेदांतों (उपनिषद् बाल) में आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। तत्पश्चात् आगमों में उस मानवीय भावनाओं का सान्निध्य मिला और अंत में योगियों, तांत्रिकों के हथों में पूनर्ती फलती हुई वह अतंत भरवीचक्र देवदासी आदि की साधना में परिणत होकर नष्टभ्रष्ट हो गयी।

### (घ) भक्ति युग में

भक्ति काल युग में सूर तुलसा, मीरा जादि की उपासना साकार ब्रह्म की उपासना है। कबीर जादि मंत्र कवि निराकार ब्रह्म का लक्ष्य चले हैं। सूफी कवियों ने साकार ब्रह्म का ही अपनी साधना का लक्ष्य बनाया है। इन सभी के मूल प्रेरणा स्रोत उपनिषद् और आगम पुराण रहे हैं। अतएव रहस्य भावना का तांत्रिकों के

समान विकृत रूप इनमें नहीं मिलता। सूफ़ी कवि फारसी रहस्यवाद से प्रभावित रहे हैं।

विषय की स्पष्टता के लिए यहाँ हम इस युग के प्रमुख रहस्यवादी कवियों के रहस्य-विषयक दृष्टिकोण तथा उनकी प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

ऐतिहासिक क्रम विकास की दृष्टि से कबीर का नाम सर्वप्रथम आता है। यह हिन्दी के प्रथम और अनन्यतम रहस्यवादी कवि है। कबीर 'राम की बहुरिया' हैं और उनके राम घट घट के बासी हैं। सम्पूर्ण जगत उनकी आभा से प्रदत्त है। उन्हीं के वियोग में सब तड़पते रहते हैं। एवलिन अडरहिल न बन हडरड पोयम्म आप कबीर' की भूमिका में भाव विदग्ध होकर लिखा है कि 'कबीर उन इन गिने सर्वों त्रुष्ट रहस्यवादियों की काटि में हैं जिनमें सत आगस्टाइन स्वयम्भूत तथा सूफ़ी कवि जलानुद्दीन रमी प्रमुख हैं। उन्होंने वह प्राप्त किया जिसे हम ईश्वर के प्रति एक सम्प्रेषणात्मक दृष्टिकोण कह सकते हैं। उन्होंने दिव्य तत्त्व के 'यत्तिगन और 'यत्ति निरपेक्ष, अत्यन्तमी और सीमातीत गत्यात्मक एवं स्वयात्मक पक्षी तथा दर्शन के निरपेक्ष ब्रह्म और भक्ति के परम विश्वमनीय सखा के पारस्परिक चिर विरोध का अंत कर दिया। उन्होंने बाह्य अमगत दीख पड़ने वाली इन धारणाओं को एक के पश्चात् एक लेकर यह सामंजस्य पैदा नहीं किया बरन आध्यात्मिक चेतना की ऐसी ऊँचाइयों पर पहुँच कर किया—जना कि स्वयम्भूत न कहा है—वे सब धूल मिटाकर एकाकार हो जाती हैं और जहाँ वे पूर्ण के पूरक तत्त्व से दीर्घ पड़ते हैं।

उपयुक्त उद्धरण के द्वारा कबीर की रहस्य भावना पूरी तरह से स्पष्ट हो जाती है साथ ही उनका महत्त्व भी विज्ञापित हो जाता है।

मीरा की रहस्यभावना सत कविया की रहस्यभावना से बहुत साम्य रखती है। सत कवि रैदाम उनके गुरु ही रहे हैं। किन्तु मीरा सगुण कृष्ण रूप की उपासिका हैं। सत कवियों ने निगुण ब्रह्म को अपनी उपासना का लक्ष्य बनाया है यद्यपि कबीर के पदों में सगुण निगुण दोनों का समन्वय है। सूफ़ी उपर सेज पिया की आदि कवियों में मीरा ने भी निगुण ब्रह्म का संकेत दिया है।

तुलसी और सूर ने सावंत्रिक रूप से रहस्यभावना नहीं मिनती यह भक्त-कवि अधिक हैं। भक्तों के अत्यन्त लक्षण इनके काव्य में मिनते हैं। विद्वन्मता, अक्षरण शरणाता, दैव अनुनय विनय और उदार की वातक प्राथम्यो इन कवियों के पदा में सर्वाधिक हैं। 'केशव कहिन जाये का कहिए' यदि तुलसी के पदों में रहस्य भावना का भी परिष्कार मिला है पर उन्होंने दाम्पत्य परिणय वाली रहस्य पद्धति का अवनम्बन नहीं किया। सूर ने भी कृष्ण की लीलाओं का ही सर्वाधिक वर्णन किया है। ही यद्यत्त, यथा रास प्रवर्णन, राधा का कृष्ण के हृदय में अपनी छाया देखकर

मान करना, कृष्ण का यशोदा माँ का मुह खालकर अपना विराट रूप दिखाना, उनका बहुनायत्व आदि से सम्पन्न अतः पदाम रहस्यवाद का गम्भीर रूप दिखाई देता है।

जायसी आदि प्रेममार्गीय सूफी कवियों का रहस्यवाद सत कवियों से पद्यवता लिए हुए है। उनका रहस्यवाद डा० भटनागर व अनुभार भागवत के प्रेम मूलक रहस्यवाद जसा है। जहाँ जीव जीव ईश्वर विषयक शोध का अंत हो जाता है ठीक वही स इनका रहस्यवाद प्रारम्भ होता है और फिर वह जीव जीव ईश्वर का सम्बन्ध मस्तिष्क की वस्तु न रहकर हृदय की वस्तु हो जाता है। उम समय जीव ईश्वर के सम्बन्ध में एक मधुर भावना की सृष्टि होती है। इस भावना में परस्पर का आकर्षण और तीव्र मिलनाकाशा है। इस आकर्षण का स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण के रूपक द्वारा उपस्थित किया जाता है। इस पर फारसी रहस्यवाद का अधिक प्रभाव पडा है।

### (ऊ) फारसी रहस्यवाद

फारस में इस्लाम का प्रभुत्व हो जाने पर भी वहाँ के धार्मिक कट्टर पक्षिया न इस्लामी धर्म को ग्रहण नहीं किया था। मुहम्मद साहब आत्मा और परमात्मा में वही सम्बन्ध मानते हैं जो वदा और मालिक का हाता है। यह सम्बन्ध पगम्बर क द्वारा स्थापित किया जाता है। इस्लाम में पगम्बर की भाषा का उल्लेख बुद्ध माना गया है। इसलिए उसमें रहस्य जती भावना उपासना को अधिक स्थान न मिल सका किन्तु फारस में परम्परा स चली आती हुई प्राचीन गुह्य साधना का प्रभाव इस्लाम से पहले विद्यमान था अतः इन गुह्य साधनावादी सतों ने अपनी साधना का क्रमबद्ध रखा। सूफी सता न इस्लाम की कट्टरता का विरोध करके इसी गुह्य साधना, सुरा-प्रेमो माद तथा उससे उत्पन्न चमत्कार का आत्मभूत कर मधुर भाव से खुला की उपासना प्रारम्भ की। फारस में इस मधुर भावना व प्रवृत्तक वायजोद बुस्तानी को माना जाता है जा इस्लाम क खलीफा अली क अनुयायी थे। कतिपय विज्ञान इस फारसी मधुरोपासना पर ईसाई रहस्यवादी सता का प्रभाव मानते हैं जा शाही रहस्यसाधना से प्रभावित थे।

वसे तो खोजने पर इस्लाम धर्म रहस्यवादी भक्ति-पद्धति क सूत्र हजरत मुहम्मद के तापसी साधना, रात्रि जागरण, अत प्रायनाजा आदि की महत्ता तथा उपयोगिता में भी मिल जाते हैं आरम्भिक सूफी इस्लाम से एक होकर भी चले है किन्तु हिजरी की दूसरी शताब्दी में सत रबिया (बसरा की एक महिला) को रहस्यवादी प्रेमोपासना की प्रचारक कहा गया है। तीसरी शताब्दी में इस्लाम के ईश्वरवाद के विरोध में सर्वेश्वरवाद का उदय हुआ इन सूफी सता ने अह ब्रह्मासि की तरह अनहलक' (मैं ही खुदा हूँ) का नारा लगाकर विश्व के कण-कण में उसकी अलौकिक सत्ता के दर्शन किये। आगे चलकर सीरिया में अनु सुलेमान अल दारानी ने

ज्ञान और आनन्द के माध्यम से रहस्यानुभूति के सिद्धांत की पूर्ण प्रतिष्ठा की। अतः तक इस उपासना पद्धति में ईश्वर के प्रति भक्ति-भावना का प्रदर्शन, उससे मिलने की रहस्यात्मक अभिव्यक्ति—लौकिक प्रणय और सुरापान की शब्दावली में होती थी। इरान के अन याज़िद (८७४ ई०) ने सर्वेश्वरवाद को सिद्धांततः स्वीकार कर फन का सिद्धांत प्रतिपादित किया। तीसरी सदी हिजरी में सूफी सम्प्रदाय निर्मित गया था। इन्होंने कुरान की अपने ढंग से व्याख्या विवेचना करके खुदा को भी सूर्यमान लिया था। मौतामा रूम, हाफिज, उमर खय्याम, गजाली, रूमी, नितामी सार्द जामी आदि यहाँ के रहस्यवादी कवियों में अग्रगण्य हैं। फारसी रहस्यवादी कवि पर जब इस्लाम का अत्याचार बढ़ा तो ये भारत की ओर बढ़ने लगे। भारत में दार्शनिक चिन्तन-मनन तथा विचारधाराओं से ये कविगण पहले ही प्रभावित हो चुके थे क्योंकि खलीफा हारू रशीद के समय यहाँ के अनेक दार्शनिक ग्रन्थें फारस गये थे। इन सूफी सत कवियों को बौद्ध की वरणा, जहिंसा और प्रेम-भावना, भागवत धर्म की माध्यमोपासना आदि में बहुत आकृष्ट किया था। भारत के शांत वातावरण रहकर सूफियों ने अपनी साधना जारी रखी। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती, मरमद आन इम परम्परा को आगे बढ़ाया और हिन्दी में जायसी, कृतवन, कासिक शर्मन, उस्मान आदि ने अपनी प्रेममार्गी रहस्य साधना से समनवृत्त अनेक कृति प्रदान की हैं।

### ईसाई रहस्यवाद

यूरोप में रहस्यवाद के प्रारम्भिक बीज हम यूनान के कवियों और दार्शनिकों में मिलते हैं। पाइथोगोरस दार्शनिक होता हुआ भी रहस्यवादी था। आरम्भिक रहस्यवादी क्रमकाण्डों को दिया करते थे। प्लेटो ने आरफिरो के वाह्य और क्रमकाण्ड रहस्य साधना का मजाक उड़ाया है और कतिपय अच्छी वस्तुओं को उनसे ग्रहण भी किया है। प्लेटो को भी रहस्यवादी कहा जाता है। उसके सिद्योसिअम में रहस्य अनुभूतियों का प्रतीकात्मक रूप प्रस्तुत है। उसके शिष्य प्लोटिनस की गणना विश्व महान रहस्यवादियों में की जाती है। जब यूरोप के रहस्यवातियों पर उसका व्यापक प्रभाव पड़ा है।

ईसाई धर्म के प्रवक्तक ईसापसीह का सम्पन्न जीवन ही रहस्यवादी भूमिका पर प्रस्तुत है। स्वयं बाइबिल रहस्यवाद की एक उच्चतम कृति मानी गई है। इस 'एपिस्तल नामक अंग में ईश्वर के प्रत्यक्ष साक्षात्कार की आधुनिक अनुभूति का वर्णन है। ईसाई धर्म के अन्तर्गत रहस्यवादी सन साधक आरम्भ से दिखाई देते हैं। इस प्रकार सुप्रसिद्ध दार्शनिक और रहस्यवादी प्लाटिनस तथा न यक्लेटोवादियों के विचारों की गहरी छाप पड़ी है। डायोनाइसन, जान स्कोटस प्रिंसिपला, केरुजा



बर्नाड, माह्स्टर, एनहाट, हालर, मृगा, टरगा इत्यादि निबन्धनज्ञान, साहित्यप्रज्ञा, बाएम्, दान, चन्द्रमूक व सेंट्राल सासवे प्रांगित, मठम गुणी मानिनाज आदि की परिगणना प्रमुख ईसाई रहस्यवाद्यांशों में की जाती है।

पश्चिमी रहस्यवाद का शास्त्र पर प्रकाश डालते हुए आचार्य माताराम धनुर्वेदा ने कहा है कि १०-१०० पू० यहुदी धर्मो ने तबप्रथम रहस्यवाद का तत्व चलाया। ११वीं-१२वीं शताब्दी के मुद्द भिषगा और ईश्वर और मनुष्य के बीच आत्मान प्रज्ञान के प्रयागात्मक लक्षण की बात चलाई। असागी के सत पारिस ने प्रमा ईसा और उत सतार के लिए प्रम मदिरता का अनुभव किया जा ईश्वर सम्भक्त आत्मानों का पवित्र सृष्टि के रूप में दिखाई पड़ता है और जहाँ सब भाई रहते हैं।

यूरोप में छठवां शताब्दी से लेकर १२वां शताब्दी तक साधनारम्भ रहस्यवाद का प्रभाव था जिसमें धूनाना दासनिष्ठा के विचारों का पूरा-पूरी द्वाप थी। सन्त असीसा ने मधुर भाव का उपासना का प्रचार किया। इसका मूल कारण कृतिपय विद्वान् अरबी प्रभाव मानते हैं क्योंकि उस समय राम पर अरबों का प्रभुत्व था। अरबों के साथ ही यहाँ सूफा रहस्यवाद का धारणा भी पड़ना हुआ। सूफियों की तरह ईसाई रहस्यवादियों ने भी साधुय भाव का उपासना पद्धति पर बल दिया। इतके अरबनाम्ब, यीटस बड सयथ मनी वाठानिग आदि कवियों ने इसी साधु पर चलकर अपने रहस्यवाध्या की सृष्टि की। इन पर १८वां शताब्दी के सन्त प्रगरी तथा बर्नाड की उस तुरीयावस्था (Trance) का प्रभाव पड़ा गया है जिसमें साधक ब्रह्म की अनुभूतियाँ को विविध प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत करता था। आगे चलकर अग्रजी कवियों पर फ्रांस के प्रतीकवादी आ दालन का भी प्रभाव पड़ा। यीटस वाठलपर आदि के प्रतीकवात्मक ईसाई रहस्यवाद से कुछ अशा में खोदने में भी प्रेरणा ग्रहण की है और रवीन्द्र के माध्यम से पारश्चात्य ईसाई रहस्यवाद का प्रभाव हिंदी के आधुनिक रहस्यवादी काव्य पर पड़ा है।

### आधुनिक रहस्यवाद

आधुनिक रहस्यवाद के विषय में आचार्य शुक्ल का कहना है कि उसका उत्पत्ति सेमेटिक भाषना से हुई है अतएव वह हिदेशी वस्तु है। यहाँ भी शुक्ल जी को काव्य में रहस्यवाद से चिड है। रहस्यवादो विचार धारा का वे काव्य में कोई स्थान नहीं देते। इसलिए रहस्यवादी कवियों का वे सहृदयतापूर्वक मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं। आधुनिक रहस्यवाद को विदेशी वस्तु कहकर वे उसको उपेक्षा करते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में प्रसाद जी का कथन है कि 'रहस्यवाद (अनहलवाद) समष्टि धर्म भावना के विरुद्ध है एवं ईसा मसूर और सरमद आय अद्र त भावना से प्रभावित थे'। आधुनिक रहस्यवाद के विषय में भी उनका अभिमत उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि

“वर्तमान हिन्दी में इस अद्वैत रहस्यवाद की सौन्दर्यमयी यजना होने लगी है। वह साहित्य में रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। वर्तमान रहस्यवाद की धारा भारत की निजी सम्पत्ति है इसमें सन्देह नहीं है।”

इस सदर्भ में आधुनिक युग की प्रमुख रहस्यवादी कवयित्री श्रीमती महादवी वर्मा का विचार भी उल्लेखनीय है। उन्होंने लिखा है कि ‘आज गीत में हम जिसे नये रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं उसने पराविद्या की अपाधिबता ली, वेदांत के अद्वैत की छाया ग्रहण की लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के साकतिक दाम्पत्य भाव सूत्र में बाधनर एक निराले स्नह सम्बन्ध की मृष्टि कर डाली जो मनुष्य के हृदय को आलम्बन दे सके, उस पार्थिव प्रेम से ऊपर उठा सके तथा मस्तिष्क को हृदयमय और हृदय को मस्तिष्कमय बना दिया।

प्रसाद और महादवी जी के उपयुक्त बक्तव्यों से यह स्पष्ट है कि आधुनिक रहस्यवाद विद्वानों के वस्तु तथी प्रत्युत भारतीय रहस्यवाद की ही परम्परा का अग्रिम विकास है। भले ही उनकी मूल वस्तुएँ भारतीय ही किन्तु छायावादी सभी कवि अपने प्रारम्भिक काल में रवीन्द्र की रहस्य-चेतना में प्रभावित रहे हैं अतः प्रत्यक्षरूप से रवीन्द्र के माध्यम से उन पर पश्चात्य रहस्यवाद का भी ‘यूनाधिक’ प्रभाव पड़ा है इस अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर आधुनिक रहस्यवाद ठीक वही रहस्यवाद नहीं है जो कबीर या मीरा का है, प्रत्युत वह २०वीं शताब्दी की व्यक्तिक चेतना से प्रभावित है। युगीन चेतना का अनुसार स्वरूप निर्धारण का कारण आधुनिक तथा प्राचीन रहस्यवाद में पर्याप्त अंतर आ गया है जिसे संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है।

### प्राचीन और आधुनिक रहस्यवाद

हम यह चुके हैं कि भारतवर्ष में उपनिषद् वेदवैद, सहजिया, सूफी आदि सम्प्रदायों और दार्शनिक विचारधाराओं के माध्यम से रहस्यवाद का एक अक्षुण्ण परम्परा रहा है किन्तु मध्यकाल में जाकर वह मारा का पश्चान्त लुप्त प्राय हो गई। आधुनिक युग में कवि इन परम्पराओं से सविन रहते हैं। साथ ही इन पर वगैरह का माध्यम से पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी कवियों के रहस्य दर्शन का भी प्रभाव पड़ा है जिससे उनकी रहस्यात्मक वृत्ति को अधिक समृद्ध और युगानुबूल होने का अवसर मिला है। आधुनिक रहस्यवाद में आध्यात्मिक विकास की भावना का जो विकास हुआ है उसके मूल में कबीर रवीन्द्रनाथ और पश्चात्य ईसाई रहस्यवाद का प्रभाव परिलक्षित है। रवीन्द्रनाथ न कबीर की पश्चात्य रहस्यवादी कवियों में विशेषकर, शैली प्राप्ति की प्रतीकवाद और वाइविल से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की है। इस पश्चिमी प्रभाव के आगमन से भारतीय रहस्यवाद की अग्रिम परम्परा में २०वीं शताब्दी में विशेष भिन्नता आ गई है। हिन्दी के नये रहस्यवादी कवि मध्ययुगीन कबीर जायसी,

आदि की तरह मत मतांतर को प्रस्तुत नहीं करत। वे ब्लेक, फोली और बड सवथ की तरह अनाम्प्राणियन जोर मुक्त है।

प्राचीन रहस्यवादी नवि असीम सत्ता का अनुभव एक लक्ष्य एक व्यक्ति या आत्मावृत्ति की चरम स्थिति के रूप में करते हैं किन्तु जाधुनिक युग की प्रमुख रहस्य कवयित्री महादेवी एक नए रहस्यवाद को बौद्धिक धारणा की वस्तु कहता है और दूसरी ओर वे एक सब-यापक सत्ता के प्रति मधुरतम व्यक्तित्ववाद के आरोपण की बात करती हैं। नवीन रहस्यवाद के विवेचन का उनका यह एक बौद्धिक प्रयास है। इस युग में रहस्यवाद को अनुभूत्यात्मक मानकर भा-उस बौद्धिक मानन पर जोर दिया गया।

प्राचीन रहस्यवादी किसी न किसी एक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे हैं जिनमें मृष्टि सिद्धांत और तत्त्व दर्शन की निश्चित मायतायें रही हैं। राजपयी जी के शब्दों में कबीर से साधना के उपादानों में नैतिक तथा व्यावहारिक पक्षा का समन्वय सम्पूर्ण जीवन दर्शन का समाहार कर देता है जो यक्ति की वस्तु न रहकर समाज की वस्तु हो जाता है। महादेवी जी की रहस्य-वस्तु ध्यैतिक सवेदानात्मक सीमित है। उपास्य के प्रति आन्तरिक उत्सव जह का अवसान स्वात्मयी वृत्तियों का तिराधान आदि की जगह महादेवी में 'स्व' का सुरक्षा सतथ आत्मनिवेदन और उपालम्भ की व्यञ्जना है जो उह प्रचीन रहस्यवादियों से भिन्न कर देती है। दूसरे के भाव की जगह दार्शनिक विचारधारा का महत्त्व देती है। इसी बौद्धिकता तथा उबीयता ने उनके रहस्य को नवीनता दी है।

बुद्ध की वरुणा भा महादेवी की वरुणा और वेदना से भिन्न रही है। बुद्ध की उपलब्ध प्रतिमाओं में महान सिद्ध के लक्षण दिखाई देते हैं। उनमें चिन्ता तथा अवसाद की रेखायें नहीं मिलती किन्तु राजपयी जी के अनुसार महादेवी के चित्र भीता में एक विरक्त और चिन्तित मुद्रा मिलती है।

प्राचीन रहस्यवादी नवि जलकारिक और राजप्रीय नहीं रह किन्तु दबीजी की रचनाओं में २०वीं शताब्दी की नारी सुलभ जनकृति बहुत दूर तक मिलती है। नवीन रहस्यवाद का यह कलात्मक सभार जहा उमरों एक प्रमुख विशेषता है जहा यही वस्तु उस भाव की भाव निष्ठा और गाम्भीर्य को भी बहुत कुछ कम कर देती है।

प्राचीन रहस्यवादी नविद्या में जहा जह का पूण विसर्जन और आराध्य कर्तृत्व पूण आत्म-समर्पण है वहा महादेवी जो अपने यत्तित्व की रक्षा के साथ प्रेम की परिपूर्णता को सिद्ध करना चाहती है जगत में मिलन चाहता हुई भी मिलना स्वीकार नहीं करती। यह उनकी विलक्षण आकांक्षा है। वे विरह के लिए विरह की उपासिका हैं। प्रश्न ही सक्ता है कि उनका विरह साध्य है या साधन। सामाजिक विरह का लक्ष्य परम सत्ता के मधुर रस का अनुपान है किन्तु दबीजी मिलन में यक्ति

सत्ता खोन व बदल चिर विरह म उस तथा उसक साथ अपना प्रेमानुभूति को जमर बनान की साधिका हैं । सम्भवत विरहाग्रह इसलिए है कि यक्ति सत्ता दिव्य प्रेमानुभूति का अनिवाय साधन है, दु ख इसलिय बरेण्य है कि वह विरहमयी प्रेमानुभूति का स्वाभाविक लक्षण है । किन्तु महादेवी जी विरह को अपने प्रिय के इतने पास ले गई हैं कि दोनो की प्रयक सत्ता ही मिट गई है-

वह रहे आराध्य चिन्मय  
मण्मयी अनुरागिनी में  
इस प्रकार विरह ही उनका साध्य हा गया है ।



## (अ) प्रवक्तक का प्रश्न

हिंदी साहित्य में हालावाद के प्रवक्तक का श्रेय श्री हरिवंशराय 'वक्त्र' को दिया जाता है किन्तु वक्त्र इस श्रेय को स्वीकार नहीं करते। वेचन प्रवक्तक ही नहीं थे जपन जाकर उसका अनुकर्ता भी नहीं मानते। इस सन्दर्भ में मैंने उनसे एक भेंट बार्ना में प्रश्न किया था जिसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि मैंने अपने प्रारम्भिक कथा में तम पाषाण चार हाला प्याला शब्द का उपयोग कर लिया था लाग मुझ हातावादी समझने लग। शब्द का प्रयोग करना गुनाह नहीं है किन्तु उनका मूल मन्तव्य समझे बिना मतलब जय गंगा लेना अवश्य गुनाह है। उन्होंने कहा कि मैंने हाता प्याला को साधारण अर्थ में ग्रहण नहीं किया वस्तुतः वे प्रतीक हैं और एक व्यापक तथा उत्कृष्ट भूमिका से सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार कालिदास के काव्य में एक जगह वसत आम्नमजरियो के द्वारा तपण करता है और तुलसीदास की दाहावली में चातक पानी से तदवत मैंने हाता से ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति की भावनाओं का अध्ययन देकर तपण काय किया है

मर अधरो पर हा अतिम  
वस्तु न तुलसीदल, हाला,  
मेरी जिह्वा पर हो अतिम,  
वस्तु न गगाजम हाला !

और चिता पर जाय उडला  
पाक न घत का, पर प्याला  
घट बघे भगूर सता म,  
मध्य न जल हो, पर हाला।

प्राणप्रिये, यदि श्राद्ध करां तुम  
मरा तो एसा करना—  
पीन वालो को दुलबाकर  
खुलवा देना मधुशाला।

(मधुशाला पदांक, ८२, ८३)

## हाला भौतिक या पारलौकिक

श्राद्ध या तपण का काय हाला स किया गया, यह तो अधिमाय है, पर क्या यह हाना आनन्द और भक्तिपूर्ण जीवन की साधनामय भूमिका है? या भौतिक हाला है? बच्चन जी ने 'मधुशाला' के सम्बोधन में इस विषय पर प्रकाश डाला है। उन्होंने लिखा है "आज मदिरा लाया हूँ—मदिरा जिस पीकर भविष्यत के भय भाग जाते हैं और भूतकाल के दारुण दुःख दूर हो जाते हैं जिसे पान कर मान अपमानों का ध्यान नहीं रह जाना और गौरव का गव लुप्त हो जाता है जिसे डाल कर मानव अपने जीवन की व्यथा, पीडा और कठिनता को कुछ नहीं समझना और जिसे चक्कर मनुष्य श्रम, सकट, सताप सभी को भूल जाता है। आह ! जीवन की मदिरा जो हम विवश होकर पीनी पड़ी है, कितनी बड़वी है ! कितनी ! यह मदिरा उस मदिरा के नशे को उतार देगी, जीवन की दुःखदायिनी चेतना को विस्मृति के गत में गिराएगी तथा प्रबल देव, दुर्दम काल, निमग्न कम और निदय नियति के क्रूर कठोर, कूटिल आघातों से रक्षा करेगी। उनके इस कथन में यह स्पष्ट होता है कि उनकी हाला साधारण नहीं असाधारण है। वह तामती नहीं सात्विरी है। किंतु क्या हम बच्चन जी के इस कथन को प्राप्त वाक्य मान लें? उहान तो यह भा कहा था कि मैंने दस पाच बार हाला प्याला लिख दिया तो लाग उमत्त होकर मुझे हाला वादी कहने लगे पर उनकी 'मधुशाला' 'मधुबाला' और 'मधुक्लेश' को खोलकर देख लीजिए शायद ही ऐसा एकाध बंध मिले जिसमें य शब्द न हो? हमारा प्रयोजन शब्दों की 'यूनता' अधिकता स नहीं है शब्द प्रयोगों को भी मैं कोई महत्व नहीं देता। नवीन, प्रसाद और महादेवी ने भी अनेक स्थानों पर हाना प्याला शब्दों का प्रयोग किया है किंतु उह कोई हालावादी नहीं कहता है। अग्नेजी म वडसवथ ने अपने को कभी स्वच्छन्तावादी शब्द से अभिहित नहीं किया है तो फिर भी वह स्वच्छन्दतावाद का एक प्रमुख कवि और चिंतक है। पत की 'पलनव' की भूमिका 'हिंदी में छायावादी काव्य की 'मेनीफेस्टो' वही जाती है किंतु उमम भा 'छायावाद' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है। मतलब यह कि शब्द नहीं अथवा महत्व है। उपयुक्त उद्धरण के आगे ही उनकी एक पंक्ति है— (कि मदिरा) क्षीण, क्षुद्र क्षण मगुर दुर्बल मानव के पास जग जीवन की समस्त आघ्रि व्याधिया के क्रूर कठोर आघातों से रक्षा करेगी। इस वाक्य में हाला के भक्ति-रूपिणा रस की गंध नहीं है वह लौकिक हाला ही है। मानव जीवन तो उस महत शक्ति की प्राप्त करने का एक सशक्त साधन है, बिना उसके साधना ही संभव नहीं फिर उस क्षीण, क्षुद्र, दुबल कहना उसके लौकिक पक्ष को ही उभारना है, बच्चन जी की व्याख्या के अनुसार तो हालावाद की सारी प्राचीरें हिलनी हुईं नजर आती हैं। यदि वह रहस्यवाद का एक अभिन्न अंग है, तो फिर उस वदनाम करने का जो काम किया गया है, वह

निदय है, और यदि हाला को रहस्यवात्मक आवरण देकर बच्चन जी अपन कटु निराशा, और सघनपुण जीवन की अपसन्नताओं को छिपाना चाह रहे हैं तो यह उनके कवि का दुःख है। यहाँ यह भी प्रश्न विचारणीय है कि क्या हालावाद की कोई प्राचीन परम्परा है, यदि है तो उसका स्वरूप क्या रहा है लौकिक या पारलौकिक? दूसरा प्रश्न यह है कि हिन्दी साहित्य में केवल बच्चन जी ही उनकी ओर क्या आकृष्ट हुए? उसका ग्रहण समर्थन और पलनवन करने के मूल में उनके जीवन तथा समाज की मन स्थितियाँ का याग रहा है और जब बच्चन जी उसे आध्यात्मिक और साधनात्मक रहस्यवाद की उदात्त भूमिका पर ग्रहण करते हैं हाता प्याला में आत्म निष्ठ हैं तब चार पाँच वर्ष के अल्प काल में ही वे मधुगीता को छोड़कर लौकिक वियोग गीतों की सजना के लिए क्यों उमुख हुए। रहस्यवादी कवियों के काव्य में इस प्रकार अचानक ही दिशांतरण नहीं होता। कबीर, मीरा रबीन्द्र, या महादेवी का नाम इस सम्बन्ध में स्मरण किया जा सकता है। मधुबलश के पश्चात् बच्चन जी मधुधारा को छोड़कर लौकिक जीवन की भाव विदग्ध धारा में सतरण करते हैं। 'निशा निमग्नण एकांत संगीत सतरगनी आदि के पश्चात् वे बगाल के अकाल पर गन्धेश शोक प्रगीत लिखते हैं गांधी जी के अहिंसा दशन से प्रभावित होकर खादी के फूलों का निर्माण करते हैं और स्वतन्त्रोत्तर काल में समसामयिक जीवन की उथल पुथल से सम्बन्धित तथ्यों को भी प्रगीतों में डाल रहे हैं। लोक लयों को गहीत करके ग्राम्य गीत भी लिख रहे हैं। उनका यह दिशांतरण या विधाम इस तथ्य का द्योतक है कि हालावाद उनके जीवन में रहस्यवात्मक भूमिका की निष्ठा बनाकर नहीं आया था वह क्षणिक भावामाद था जो तूफान की भाँति आया और चला गया। यह सत्य है कि हालावाद के प्रवर्तन के द्वारा बच्चन जी को जहाँ अपरिमित ख्याति और यश मिला, वहीं उन्हें कटु समीक्षाओं का गरल पान भी करना पड़ा जिसके सबेते अपने गीतों में एकाधिक स्थान पर स्वयं बच्चन जी ने दिए हैं। वह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा।—शीघ्रक पक्ति उपयुक्त तथ्य की ही निदर्शक है। यदि बच्चन जी ने लोक भय के कारण मधुधारा को छोड़ा तो भी उनके व्यक्तित्व का दुर्बलता ही ज्ञापित होती है यदि वस्तुतः उन्होंने हाला प्याला मधुशाला और मधुबाला को रहस्य की उदात्त भूमिका पर ग्रहण किया था तो उन्हें केवल लोगों के प्रवाद से छोड़ देना यह नव्य आत्मनिष्ठा के अभाव की ही सूचना देता है उन्हें हककर इतजार करना या आज नहीं तो थोड़ा समय पश्चात् निश्चित ही उनके रहस्यवाद का समझने वाले पदा होने? पर बच्चन जी यह प्रतीक्षा नहीं कर सके। ये सारे तथ्य इस बात के ज्ञापक हैं कि उन्होंने हालावाद को रहस्यवाद की भक्तिपूण निष्ठा से नहीं अपनाया, उसके मूल में दार्शनिक, जट्टनवादी विचारधारा की जगह उनके जीवन की विभिन्न मन स्थितियाँ ही अधिक उबर रही हैं। फिर इस पार प्रिये तुम ही मधु है उस

पार न जाने क्या होगा ? जैसे विशुद्ध लौकिक गीतो में रहस्यवाद की छाया खोजना तथ्य को सुठलाना होगा । अपनी 'मधुशाला', 'मधुवाला' तथा 'मधुवनश कृतियो मे जगह जगह वचन जो ने हाला प्याला के जीवन और विश्व व्यापी रूपक प्रस्तुत किए हैं । इनके द्वारा आत्मा परमात्मा की अभि यजना हा जाती है, किंतु रहस्यकाय के लिए रूपक याजनायें कलात्मक उपकरण मात्र हैं, प्रमुख वस्तु हृदय की जीवन प्रापिनी रागात्मक निष्ठा होती है जिसका जभाव वचन जा क गीतो मे दिखाई देता है ।

वचन जो अभिनव स्वच्छन्तावादी कवि हैं । स्वच्छन्तावादी कवि रचनाओं में अपनी आत्माभिव्यक्ति को ही प्रमुखता देता है । ऐसी रचनाओं में भावनाओं की सुनीव्रता, कल्पना का प्रकथ और प्रमावाविति के गुण सबसे पहले देखे जाते हैं, विचार या जीवन दर्शन का पक्ष बहुत पीछे आता है । जहाँ तक सुतीव्र भावनाओं की सवध और अवितिपूर्ण निश्चल अभिव्यजना का प्रश्न है हिन्दी में वचन जी की ममता बहुत कम कवि कर सकते हैं किन्तु जहाँ तक उनके जीवन दर्शन का प्रश्न है डॉ० नगद के शब्दों में उनके समान किसी भी महत्वपूर्ण और प्रतिभा सम्पन्न कवि न खोजले विचार प्रगट नहीं किए । अर्थात् उनकी हाता सम्बन्धिनी जा विचारधारा है वह व्यावहारिक रूप से जीवन में वरण्य नहीं है । वह जीवन सघष से पलायन निराशा अनास्था आदि का प्रतीक है । यह व्यक्ति-केन्द्रित निवर्तितुखी जीवन दर्शन है ।

### (आ) उमर खंयाम जीवन, दर्शन और काव्य

वचन जी के हालावाद की मूल विशेषताओं के निदर्शन के पूर्व हम उनके कवि गुरु उमर खयाम के काव्य की विशेषतायें जान लेना आवश्यक है । उमर खंयाम फारस देश के कवि हैं । उनका पूरा नाम गयासुद्दीन अबुनफ्तह उमर था । ये इब्रा हाम के पुत्र थे । खंयाम के शब्दाथ क विषय में मतभेद है । इसका शाब्दिक अर्थ है खेमा बनाने वाले पर कतिपय लोगो का कथन है कि खयाम उनका उपनाम था । वचन जी का इस सम्बन्ध में कथन है कि हो सकता है उमर खयाम ने पारिवारिक पेशे के ही नाम पर अपना उपनाम रख लिया हो । उमर खंयाम की जो कवितायें उपलब्ध होती हैं वे सब रुबाइया ही हैं । खयाम का उपनाम इस विचार से ग्रहण किया जा सकता है कि कवि शब्दों का खेमा खडा करता है रुबाई के चार ढंभों पर भावों अथवा विचारों का तबू तानता है ।

उमर खयाम की जन्म तिथि के विषय में भी मतभेद है । अधिकांश विद्वान उनका जन्म ग्यारहवीं सदी के मध्य में मानते हैं । उनका देहावसान बारहवीं सदी के



तीसरे दशक में मागा गया है। इस प्रकार उनकी आयु ७०-८० वर्ष की रही। उमर ख्याम अपने समय में सुप्रसिद्ध गणितज्ञ ज्योतिषी और मौलिक चिंतक रहे हैं। वे स्वातंत्र्य सुखाय कविताएँ भी लिखते थे। उनकी कविताओं की प्राचीनतम पाण्डुलिपि उनकी मृत्यु के ७५ वर्ष बाद तैयार की गई प्राप्त होती है। इस सफलन में लगभग २५० रूबाइयाँ हैं। उमर ख्याम ने अपनी रूबाइयों में धार्मिक और साम्प्रदायिक सकीणता तथा घटकरता का विरोध किया था, साथ ही उन्होंने उनमें इस्लामियों की सनक, बहम, पाखण्ड और आडम्बरो की भी अच्छी चुटकी ली थी।<sup>१</sup> कलत समाज तथा साहित्यका बीच से उनकी उपेक्षा की गई और उनका कवि रूप को लागू लगातार ७-८ शताब्दियों तक भूल ही रहे। १९वीं शताब्दी में अग्रजों ने पूरब की कला कृतियों और पाण्डुलिपियाँ से यूरोप के अजायबघरों को भर दिया। वहीं पर इस शताब्दी के मध्य में प्रोफेसर कोवल तथा उनका मित्र फिटज्जरल्ड के द्वारा उमर ख्याम की रूबाइयाँ का प्रकाश में लाकर उनका उद्धार किया गया। फिटज्जरल्ड के द्वारा अनुवाद की गई उमर ख्याम की ७५ रूबाइयाँ का प्रथम सफलन १८५९ ई० में प्रकाशित हुआ। यह संस्करण केवल २५० प्रतियों का निकला था किन्तु फिर भी यह संस्करण न बिक सका और प्रकाशक ने इसकी प्रतियाँ रही में डाल दी। वहीं से दाब्रेन कवियों की दृष्टि इस पर गई। उन्होंने इसकी बहुत प्रशंसा की। किंचित समय में ही यह कृति लोक-प्रिय हो गई। १८६८ में दूसरा १८७२ में तीसरा और १८७६ में इसका चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हुआ। इन विभिन्न संस्करणों में फिटज्जरल्ड ने अनेक संशोधन परिभाषाएँ और रूबाइयों की सख्या में वृद्धि भी की है पर विद्वानों ने उनके प्रथम संस्करण का ही सर्वश्रेष्ठ माना। अब तक तो उमर ख्याम की रूबाइयों का अगणित संस्करण निकल चुका है और संसार की प्रायः हर भाषा में उसके अनुवाद भी हो गए हैं। उमर ख्याम सोसाइटी भी बनी है और उनके व्यक्तित्व, कृतित्व से सम्बंधित प्रथित मात्रा में शोध-काय भी किया गया है।

### [१] प्रकृतिवादी जीवन दृष्टि

✓ उमर ख्याम ने अपनी रूबाइयों में प्रकृतिवादी जीवन दृष्टि को व्यक्त किया है। मनुष्य के जन्म के पूर्व न कुछ था और न मृत्यु के पश्चात् कुछ रहेगा। जो कुछ है वह यही मात्राव जीवन है। यही हमारा भाग्य है। इसमें भी कोई वस्तु स्थायी नहीं है। पल पल में सभी कुछ परिवर्तन होता जा रहा है प्रेम सुख सुन्दरता सभी अल्पस्थायी उपादान हैं। जीवन में जब तपस्वि नहीं मिलती, तब तपणा क्यों? आशा आकांक्षा श्रम, सघन वास्तना चिंता प्रेम, त्याग, सेवा आदि सभी निरर्थक हैं।

## [२] दुखवादी जीवन दर्शन

अत खयाम जगत से पलायन करने, जीवन से उदासीन होने और चेतना को विस्मृति में डवाने की बात करत हैं। इसीलिये ख्वाशयत सुखवादिया की फिलासफी न होकर दुखवादियो की फिलासफी है। उमर खयाम ने प्रकृतिवादी जीवन दृष्टि से ही मद्य की मादकता, नारी की कोमलता और अनन्त मानव वासनाओं का चित्रण किया है। जीवन को वे क्षणभंगुर मानते हैं और मदिरा पान करके जीवन की भूख का मिटान का आदेश देते हैं—

"उठो मेरे शिगुओ नादान  
बुझा लो पी पी मदिरा भूख  
नहीं तो तन प्याली की शीघ्र  
जायगी जीवन मदिरा सूख।'

या— 'नहीं है क्या तुम्हको मालूम  
खडी जीवन—तरणी क्षण चार  
बहुत सम्भव है जा उस पार  
न फिर यह वा पाय इम पार।

अनुवादक वचन जी

## [३] सुरा सुन्दरी का गुण गान

उमर खयाम जीवन की पार लौकिकता का पुजारी नहीं था, उसके लिए यही जीवन सब कुछ था अतएव उसकी ख्वाशया लौकिक प्रेम के धरातल पर ही लिखी गई है उनम सुरा सुन्दरी दोनों का मणि काचन योग है—

घनी सिर पर तख्तर की डाल,  
हरी पावा के नीचे पास।  
बगल में मधु मदिरा का पात्र,  
सामने राटी के दो भास।  
सरस कविता की पुस्तक हाथ  
और सबक ऊपर तुम, प्राण।  
गा रही छेड़ सुरीली तान।  
मुझे अब मर न-दन उद्यान।

व प्यारी मदिरा का पान करके नश में चूर चूर होना चाहत हैं जिससे भविष्य के भय दूर भाग जाय और अतीत का दारण दुख नष्ट हो जाय। उह कल पर भी किंचित आसक्ति नहीं है।

### [४] उन्मुक्त भोगवाद

जीवन के वर्तमान का स्वच्छन्द भोग करना के लिए व लालायित है। स्वयं, धर्म, कम सभी रास्ता-आ का अ न अधकारमय और निराशा से परिपूर्ण है। विद्वान जो बातें करते हैं व धर्मपूर्ण और अविश्वसनीय है क्योंकि जीवन में वेवल एक ही बात सत्य और निश्चित है कि जो सुमन आज सूख गया है, वह फिर कभी हरा भरा नहीं हो सकता। इसीलिये व प्याले पर प्यालंग ढाल करके इतनी मदिरा पान कर लेना चाहते हैं जिससे जन्म मरण ही नहीं अन्यायपूर्ण बातों का भी विस्मरण हो जाय। तब शक्ति को उतारने ककशा, बढ़ा, बध्या समझ कर त्याग दिया है और सरस मधुर और सुकुमार सुर वाता से अपना नाता जोडा है। अपन ही पान विपान क विषय में उनका कथन द्रष्टव्य है—

पशुओं का मीघा सिद्धांत  
गणित विद्या सीखी दे ध्यान  
छपाया ज्योतिष में मस्तिष्क  
बढ़ाया गड जीवा का पान ।

जगत की ज्वाला से मैं तप्त  
जलाशय पान-विवक अनेक  
मगर सब छिछले, उथले क्षीण  
मिना बम प्याला गहरा एक । ४१ ।

### [५] जीवन जगत के कोलाहल से पलायन

इसके पश्चात् व अगूरी मदिरा की अभित प्रशंसा करते हैं। वह बड़ी ही कीमियागर, चतुर और सुज्ञान है जो मलिन जीवन शीश को शीघ्र ही कचन सा द्युतिमान बना देती है व जगत के कोलाहल से पलायन करते हैं उह पथ के बाद विवाद करने वाले न तो विद्वानों से काम है और न जीवन के निरपक बगडों को ही वे याद रखना चाहते हैं व अपनी सुर वाला से कहते हैं—

चला जग कोलाहल से दूर  
वरें हम तुम एकांत निवास ।  
उठायें हम भी उन पर घूल  
हमारा जो करने उपहास । ४५ ।  
बठकर प्रेयसि मरी गौद  
करो माणिक मदिरा का पान ।

कम जार नियति का वे मानवाय जीवन की शतरज का खिलाडी कहते हैं,

जो संसार की बिसात खोलकर जीर खानो मे नि शक्त मनुष्यो को बठाकर दिनरात श्रीहा कर रहे हैं ।

अत मे, उमर खयाम ने भी अपने तपण की प्रिया मदिरा के द्वारा ही सम्पन्न कराने की बात कही है—

प्रिये मदिरा से देना सीर  
अधर मेरे होते मृत म्लान  
महँ तव मदिरा से ही प्राण  
कराना मेरे शव को न्नान ।

अगूरी पत्तो से ढक देह  
उन्ही पत्तो की शया डास  
लिटा देना मुयका चूपचाप  
फिसी मधुमय उपवन के पास । ६७

### इस्लाम धर्म और सूफी-दर्शन

उमर खयाम सूफी कवि हैं । फारसी सूफी कवियों में इनके अतिरिक्त मौलाना रूम और हाफिज का नाम विशेष उल्लेखनीय है । फारस इस्लाम धर्म का अनुयायी देश है । इस्लाम में शराब का पान निषिद्ध है किन्तु सूफी कवियों ने इस्लाम धर्म की अतिशय कट्टरता के विरुद्ध एक नवीन प्रेमपरक उपासना पद्धति निर्मित की जिसमें परमात्मा के प्रेम में पूर्णतः निमग्न रहने की साधना प्रमुख है । यह प्रेम साधना अपनी परिपूर्णता और तल्लीनता में मदिरा की मादकता के तुल्य है । सूफियों के इस दिव्य प्रेम में सुरा सुदरी के समान प्रेम का गहरा रग है । इस प्रियता के द्वारा उन्होंने वस्तुतः इस्लाम धर्म के कठमुल्लेपन का तीव्र विरोध किया है उसके बाह्याङ्गम्वरो, रूढ़ियों और जहाना की भ्रमना की है । उन्होंने मदिरा की मादकता का प्रेम की चरम साधना का रूप दिया है जिस स्तर पर पहुँचकर उन्हें 'इहनाम' हाता है । 'इहनाम का तदाकार पूर्ण स्थिति में रह और सुदा' का विभेद मिट जाना है और जीव और परमात्मा एकाकार हो जाते हैं । यही एकाकारता उनकी साधना का एकमेव लक्ष्य है । सूफियों की यह एकाकारता भारतीय अद्वैतवादी दर्शन के बहुत पास है । प्रेम रूपी मदिरा की मादकता का ही य सच्चा भक्ति उपासना ब्रह्म है और इसकी अनुभूति यहाँ कर सकता है जिनमें उसकी प्रशंसा की हो । इसलिए एक सूफी कवि लिखा है—

'मजा शराब का कस कूँ तुझमे जाटि'

हाय कम्पन्न तूने पी हा नही ।

फारस के इस सूफी कवियों पर इस्लाम के कट्टर धर्मवल्लिखियों के अक्षय

व्यथाकार किए हैं। जिनके कारण अधिकांश तो देश छोड़कर भाग गये, अधिकांश सूनी पर चला गए। जिनकी सूली पर चढ़ाया गया, उनमें मसूर का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इस लम्बे चक्र ने उल्टा प्रभाव छोड़ा और सूफी काव्य में मदिरा, प्याल साकी मीना (बोतल) मधुशाला आदि क प्रतीकों की सर्वातिशयता होता गई। इन्होंने इन लौकिक प्रतीकों के माध्यम से जीवन के कोलाहल और अकार्यों को भू-ईश्वर प्रेम की मादकता में मस्त होकर अपनी अनौकिक स्वतंत्रता और तन्मयता का जाह्यान किया। ये प्रेम पत्र के अन्तर्गत पुजारी थे। इनका विश्वास था कि परमात्मा हृदय की निमग्नता साक्षिकता और उसकी उपासना के द्वारा प्राप्त होता है। रोजा नमाज़ादि बाह्यवाचक के द्वारा नहीं। इसी प्रकार इस्लाम में यह माना गया कि युवा और बड़े में एकात्मकता नहीं है। पर सूफ़ी इस तत्कार परिणित के लिए व्यग्र थे और प्रेम की मादकता के द्वारा उन्होंने यह काव्य सुलभ माना। प्रसिद्ध प्रेम की एकाग्रता और मदिरा की मादकता अपने चरम रूप में एक ही स्तर की सूत्र थी जहाँ इहवक शक्ति अपने जीवन की नाना व्याधियों को भूतक निद्वन्द्व हो जाता था। इसीलिए सूफी कवियों ने प्रतिप्रियात्मक पद्धति से शराब के अपने काव्य में प्रतीकार रूप में ग्रहण किया। शराब का नशा उम्र समय सौगुन हो जाता है जबकि वह साकी के हाथ प्रसन्न भी जाय अतएव सुरा के साथ सुदरी का भी प्रयोग उन्होंने प्रमुखता के साथ किया। शणभगुर प्याला प्याली के उन्होंने मानवीय जीवन माना और सुरा सुदरी की प्रेमपूर्ण उपासना। इस्तरह लौकिक प्रतीकों तथा उपकरणों को लेकर उन्होंने उनके द्वारा पारलौकिक व्यञ्जनाओं को प्रस्तुत किया है। यह रूपात्मकता या अर्थोक्ति सूफी काव्य की एक प्रमुख शक्ति है जिस जायसी कुतबन जालि हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन सूफी कवियों में भी प्रचुरता के साथ देखा जा सकता है।

श्रीराम मस्ती मादकपूर्ण तन्मयता और रश्कल मनोवृत्ति के गीता की गान में फारसी कवियों में उमर खय्याम ने सर्वाधिक स्पष्टता प्राप्त की है। उनकी रबायियों में प्रकृति ज्ञानी जीवन शक्ति का इतना मनोरम और मादकतापूर्ण अभिनव और जावणपूर्ण ढंग में प्रकाशन हुआ है जिसकी सम्यक् साहित्य में नहीं मिलती। उसीलिए उनकी रबायियों का सार भर के लोग न समझ सके। फिर उन्हें विश्व यापी अक्षय ख्याति मिली है। वे पुराने हाफ़र भी चिर नवीन हैं। पश्चिमी जगत में जब किसी प्रकाशक को अपना धर्म पुरा करना पड़ा है तब वह उमर खय्याम की रबायियों का नया संस्करण छाप देता है और इनमें उमर का धर्म पुरा हो जाता है।

### (इ) हालावाद् के उदभव काल की विविध परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य में सूफी काव्य का परम्परा रही है किन्तु बीसवीं शदी में

उमर खयाम का प्रभाव फारसी से सीधे न आकर अंग्रेजी के फिटज्जेरल्ड के अनुवाद के माध्यम से आया है। गद्यप्रथम १०-२७-२८ ई० में सरस्वती में उमर खयाम की कुछ रवाय्या का अनुवाद प्रकाशित हुआ। उन पर टीका टिप्पणी हुई। हिंदी पाठकों के संरक्षण हृदय को उन रवाय्या का मादकता ने भर दिया और वे थोड़े ही समय में लोकप्रिय हो गयीं। उमर खयाम की रवाय्या के द्वारा 'यजित आध्यात्मिक प्रेम को तो हिंदी पाठक और कवि नहीं समझ सके पर उनकी प्रवृत्तिवादी दृष्टि और अंततः वासनाओं की पूर्ति करने वाली सुरा मुंदरी की मादकता उन्हें भी इष्ट प्रतीत हुई अतएव वे उन रवाय्या को आदर्श मानकर काय रचना करने लगे। विषय वस्तु की समानता तो मिल गई पर उमर खयाम का कवि-प्रतिभा और प्रेमपूर्ण जीवन व्यापक साधना व कहीं से लात, अतएव वे उसकी गहराई में प्रविष्ट नहीं होकर केवल उसके प्रतीकों, रूपों, उपकरणों का ही अनुकरण कर सके। उमर खयाम ने जो गहराई अपनी कूजा 'गामा' में प्रस्तुत की वह हिंदी कवियों में केवल मिट्टी का प्याला प्याली के बंधन तक ही सामित रह गई। जा बात उमर खयाम के अंतःकरण से निकली थी, जो मस्ती और अलौकिक सुमार उसकी आत्मा का जज्बेय घन था जो स्वच्छ, दृढ और जीवन-दशान उसकी अनुभूतियों का सुरभित पुंज था, वह हिंदी कवियों में अधांचित न होकर सप्रयाम और अनुकरण का प्रतिफल है, यही कारण है कि जो हातावाद उमर खयाम के रमिक कण्ठ से निकला वह प्रमा, साधक, चिंतक, पाठक और विविध समाजों को मग्न करता हुआ विश्व व्यापी हो गया, वह असाधारण होत हुए था साधारणीकृत हो गया पर हिंदी का हातावाद अपने चार पाँच वर्षों के अल्पवय में ही अपनी लौकिकता के समार में डूबकर नष्ट हो गया। यह स्पष्ट है कि उसकी प्रसिद्धि यश और कीर्ति का भाग हिंदी समाज में एक-ध्वज-मुग-व्या-है-मिर भी उसके भातर निहित मानवीय दुःखताओं छिछरी शक्ति मस्ती और वासना, निराशा, कुंठा, आदि से परिपूर्ण उदगारों ने उसे बहुत समय तक जीने नहीं दिया और उसके अनुकर्त्ताओं ने भी इस जातन दर्शन से ऊपर उठकर और मानव जातन के वास्तविक दर्शन को पहिचान कर इसे उपक्षिप्त कर दिया।

हिंदी के हातावादी कवियों में हरिवंशराय 'बच्चन पश्चत' और हृदय नारायण पाण्डेय हृदयश का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इनमें भा बच्चन सर्वोपरि हैं। उमर खयाम का रवाय्या के हिंदी अनुवाद के पश्चत मौलिक रूप से आपन मधुशाला (१९३३) मधुमाता (१९३६) और मधुकवच (१९३८) नाम से तीन कृतियों की सजना की। उनके हृदय की मस्ती से जल और धन गगन और पवन सिंधु और वसुंधरा, स्वयं और नरक जट और चेतन निशा और दिवस वन और उपवन सर और सरिता, मिलन और विरह प्रणय और मधय जाशा और निराशा, जन्म और जीवन, काल और परम-सभा वस्तुयें जिनका अस्तित्व इस विश्व में है—हाला,

‘प्याला मधुशालागम आभासित’ हो उठी।<sup>१</sup> उनकी इस विषय-म्यापीमरती से जन मानस झोम उठा और अन्ध कवि उनके समक्ष निस्व हो गये। हालावादा का अर्थ वचन और वचन का अर्थ हालावादा हो गया। यद्यपि अपनी ‘मधुशाला’ के ‘सम्बोधन’ में उन्होंने मन्त्रिा की भक्ति रूप में ही प्रस्तुत किया है—‘मरी मन्त्रिा तरे चरणो म फिर भा चढ गई। मैं ता-जुष्ट हू। भक्त की मन्त्रिा—विनम्र भक्त की मदिरा—भगवाा के अधरो पर नहीं चरणो म ही चढ़नी उचित है। पर उधर दखती हू। यह क्या? तेरी आँखा म यह मनवालापन कसा? उमसता कसी? मस्ती कसी? तेरे अधर हिन रहे हैं। तू मुम्हारा क्यों रहा है? क्या तू कुछ कह रहा है? क्या यही कि—

पीवर मन्त्रिा मस्त हुआ तो

प्यार किया क्या मदिरा से ?

क्या तू मरी मदिरा पान कराने की अभिलाषा से ही प्रमत्त हो उठा? धय तू और धय मैं? <sup>२</sup> किन्तु वचन जा की यह भक्ति रूपिणी मदिरा उनके आध्यात्मिक जीवन की साधनामय पुकार न हाकर देश तान की विविध परिस्थितियों और उनके जीवन की मधुपपूण वतनाओं से उन्भून है। अनएव हानावादा के स्वरूप को समझन के लिए हम तत्कालीन परिस्थितियाँ भी देखनी हामी।

<sup>१</sup> हालावादा का उन्भव विकास और पराभव छायावादात्तर युग में हुआ है। हम यह चुके हैं कि १९२० ई० के पश्चात छायावादा का उदय म विघटन के तत्त्व प्रकट होने लगे थे और काव्य धारा स्पष्ट रूप से दो धाराओं में विभक्त होने लगी थी। एक छायावादी और दूसरी यथायथा <sup>२</sup>। यथावादी का यथारा भी दो भागों में विभक्त थी। प्रथम वह जा छायावादा की शिथिलता, दबलता और क्षयी भावनाओं को ग्रहण कर अग्रसर हो रही थी आर <sup>३</sup> द्वितीय वह जो समाज को शोषित शोषक रूपों में विभक्त करके शोषित का पक्ष ग्रहण कर उनके प्रति अपना सहानुभूति प्रकट कर रही थी और शोषकों को मानव जीवन की <sup>४</sup> कहकर उनकी निन्दा और उपेक्षा कर रही थी। यह काव्य धारा १९३५-३६ ई० में प्रेमचन्द जी के नतत्व में सम्पन्न हुई। सखाऊ के प्रगतिशील सखकों की सभा के पश्चात प्रगतिवाद के रूप में परिणत हो गयी। प्रथम प्रकार की यथायथादी वस्तु और शली के अनुकर्त्ता जा म वचन अचल और नरेन्द्र शर्मा प्रमुख हैं। इ हे हि नी साहित्य की लघुचयी कहा जाता है। ये जीमिनव स्वच्छ <sup>५</sup> दतावादी कवि हैं जिन्होंने मधुचर्या की मादक भावनाओं और भोगवाद को सर्वाधिक प्रथय दिया। इनमें से वचन जी पर उमर खयाम की निराशावादी विचार धारा का

प्रभाव पडा, पतायन, कोलाहल से दूर, एका तता, मादकता आदि को उहोने छाया वात् की नमिक काव्यधारा से ग्रहण किया और हातावाद का, प्रवतन किया। अचल और नरेन्द्रशर्मा प्रकृतवादी शरी को ग्रहण करके जीवन की नग्न दासना स्थूल सौन्दर्य, अहमयता और भाग को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए अपनी परिणति मे प्रगतिवादी हो गये। वच्चन जी भी प्रगतिवादी हुए पर उनका यह प्रगतिवाद बहुत देरी से आया।

राजनीतिक दृष्टि से १९३० से १९३५ ई० तक का समय निराशा और असफलता का काल है। गोरमेज काफ़े में असफल हो गई थी और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले श्रातिकारियों का निदयतापूर्वक दमन किया जा रहा था। स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकेगी, इसकी आशा निकट भविष्य में घमिल पड गई थी और जनता समझने लगी थी कि अब कांग्रेस समाप्त प्राय हो गई कि नु नेतागण असफल होकर भी निराश नहीं हुए थे, वे स्वतन्त्रता का स्वप्न देखते रहे और सधप में सजग रहे। फल यह हुआ कि १९३७ के आम चुनाव में कांग्रेस को भारी बहुमत प्राप्त हुआ और उह शासन की बागडार सम्भालने का भी अवसर मिला किंतु हर जगह हस्तक्षेप के कारण उहे अपना परिपद भंग भी करनी पडा। ऐसे निराशा और अवसाद के समय पर माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, प्रसाद, निराला, पत, प्रेमचन्द आदि कवि और कथाकारों ने जीवन में आशा और आस्था भरी वाणी ही व्यक्त की। उहाने अपनी कृतियों के द्वारा राष्ट्रीय जागृति के संदेश दिए। प्रसाद की लहर के प्रगीत, कामायनी का दार्शनिक संदेश और चन्द्रगुप्त ध्रुवस्वामिनी आदि नाटक नवीन आशा और जागृति को ही वाणी का उद्घोष करत है। निराला की वह ताड़ता पत्थर', 'मिथुन', 'राम की शक्ति पूजा' पत के युगांत' के प्रगीत आदि भटकते हुए समाज के मानस में दृढता, अपराजेयता, आत्मनिष्ठा, प्राति सधप आशा, सफलता राष्ट्रीय जागृति आदि भावनाओं को ही उदभूत करते है। प्रेमचन्द के महा उपन्यास 'गोदान का नायक होरी जीवन में बिना किसी समझौते को किए, सधप रत रहकर ही अपने प्राणान्त कर देता है। स्वयं छायावाद जब 'वीणा श्रिय', 'असू', 'पल्लव और 'परिमल' की कल्पना और सौन्दर्यमयी भूमिका छोड़कर मानव जीवन का मांगनिक गुंजन करने लगा था और दार्शनिक 'ज्योत्सना' के रूप में चरमोत्पत्ति पर अवस्थित था तथा कामायनी' के घवन आनंद शिखरों पर समरस जीवन की चेतना जागृत हो रही थी, तब वच्चन के कठ से निराशा पतायन, दुःख, भाग, विनासादि से परिपूर्ण मधुचर्या के गीत फसे निकले, एक आश्चर्य का विषय है। तत्कालीन समाज में निराशा उदासी, असफलता का साम्राज्य था, यह सत्य है ऐसे ही समय में उमर खयाम की मौज, मस्ती से युक्त श्वाह्यो ने जनता को मादकता के सागर में निमग्न किया और उस मधुदेश में जनता अपने जीवन के कोलाहल को भूलने का प्रयास



करने लगी, यह तथ्य भी ईपन रूप से सत्य माना जा सकता है किन्तु दशक दुष्ट और निराशा के समय प्रलायन भाग अनास्था जीर मदिरा की वार्ते बराबर एक पलायनवादी तत्त्व है जिसके अकुरण और पलनवन का उत्तरदायित्व तत्कालीन परिस्थितियों से अधिक रचयिताओं के व्यक्तित्व जीवन में निहित है। अपने जीवन के सघन और असफलताओं से ध्वस्त निराश पीढ़ी में इन्होंने पराजित भागवाद और झूठी मस्ती को जन्म दिया। एक दुष्ट निराश व्यक्ति का दुष्टी निराश से प्रेम और सहानुभूति जल्दी हो जाती है। तनएव उमर खयाम की विचारधारा, यश, कीर्ति और विभूति ने इनका पथ प्रशस्त किया। पहल यह मदिरावाद बच्चनादि की हृदय षय अनुभूतियों से प्रभावित होकर निकला किन्तु यान्त्रिक म जब उससे हयाति, मिली, तो हालावाद पर कवितायें लिखने का काम एक शीघ्र और अनिवायता में बदल गया यही कारण है कि बच्चन जी की प्रथम कृति मधुशाला में जा सरसता मुकुमारता और मस्ती है वह उनकी किसी भी परवर्ती मधु कृति में नहीं मिलती।' मधुशाला' की एक लाख से अधिक प्रतियाँ भी बिक चुकी हैं यह तथ्य भी उसकी लोकप्रियता का सूचक है। मधुशाला, और मधुवनश में विचारधारा अधिक जाग्रह के साथ व्यक्त की गई है और मिट्टी का तन मस्ती का मन क्षण भर जीवन मरा परिचय आदि रचनाओं में जीवात्मा परमारमा जीवन गत के सम्बन्ध की दार्शनिक विचार धाराओं को भी प्रग करने की चेष्टा की गई है।

बच्चन की मौज मस्ती में किसी प्रकार की कमा नहा है। यदि निष्पक्ष रूप से देखा जाय तो कही कही तो उमर खयाम भी इस क्षेत्र में उसे पीछे छूट जान हैं किन्तु उनकी यह भोगजय मस्ती का 'यावहारिक' रूप से जीवन में कितनी उपादयता है? इस प्रश्न पर जब सुधी विद्वानों ने विचार किया तो उनके वासनाजय उद्गाता का तीव्रतम रूप में विरोध किया जाने लगा। समाज ने उन पर अगुलिया उठाई। प्रतिश्रियावश कछ समय तो बच्चन जान समाज की चिन्ता न करके और तेजी से व्यंग्य उपहासों में भरे हुए मधुगीनी की सृष्टि की पर आघात पर आघात सहन करते करते उनका कवि हृदय भी विचलित हो गया आर धक्कर उहोने अपने हाथों से मधु कलश, दूर फेंक दिया। फिर रीते हुए इस कलश में हाला उह भरने की शक्ति नहीं हुई। कदाचित वे अपने जीवन दशन के खोलपन को समझकर उससे ऊपर उठ चुक थे या अलग होकर अपनी प्रथम परनी के देहावसान से उत्पन्न विद्योगजय हलाहल का पान करने लगे। आशय है जब कवि का अपने जीवन के रिक्त पात्र को मदिरा की मादकता से भरकर समरसता प्राप्त करनी थी, तब वह निशा निमलन 'एकान्त सगात जीर सतरगिनी के विरह गीतों में आकुल अतर' लेकर गाता लगाता रहा। बच्चन जी के काव्य विकास का यह एक विरोधाभास है।

जिस समय उ होने मधुगाता की सृष्टि प्रारम्भ की, उस समय उनके जीवन

का महा समय काल था। परिवार के भरण भोषण का प्रश्न उनके सम्मुख था। १९२७ ई० में सुथी श्यामा के साथ उनका परिणय हो गया था। १९२६ ई० में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० उत्तीर्ण किया। १९३० ई० में उन्होंने गांधी जी के सत्याग्रह आंदोलन से प्रभावित होकर उसमें सक्रिय भाग लिया। १९३२ ई० में आजीविका के लिए उन्हें दैनिक 'पायोनिप्र' में जिला कचहरीया के सवाद दाताओं का काम करना पड़ा। इस समय बच्चन जो दोपहर की चित्तविलाती धूप में एक कचहरी में दूसरी कचहरी जाते सवाद नोट करते और अपने जीवन के सघष से उत्पन्न निराशा दुःख और यकान की गुनगुनावर एक नाट्यनिक मस्ती से भरा करते। १९३४ ई० में वे अभ्युत्थ के सपादकीय विभाग में सम्मिलित हुए और ३४ में वे वही मंत्रालय विद्यालय में हिंदी के शिक्षक हो गये। ३६-३४ ई० में ही उन्होंने उमर खयाम की रुबाइयों का अनुवाद करने के पश्चात् अपनी 'मधुशाला' की रचना की थी। उनके जीवन की उपयुक्त परिस्थितियों को देखकर हालावाद के प्रेरणा स्रोतों को सहज ही समझा जा सकता है कि वह तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक आदि परिस्थितियों की उपज है बच्चन जी के तत्कालीन जीवन ने उसका मधुमिचन किया है। १९३७ ई० में उनकी धर्म पत्नी का देहावसान हुआ जिसका मर्मतिक प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा और वे सहसा ही मधुमीतो को छोड़कर दूसरी ओर मुड़ गये इस समय उनकी आयु तीस वर्ष की थी। १९३८ में उन्होंने एम० ए० किया और १९३६ में बी० टी०। इसी वर्ष में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी विभाग में अध्यापक हुए गये। १९४२ ई० में आपका श्रीमती तजा से द्वितीय विवाह हुआ। १९५६ ई० में आपने वमिन्ज विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट ली और दिसम्बर १९५५ में आप प्राचीन विदेश मंत्रालय में विदेशाधिकारी के रूप में कार्य करने लगे। वतंत हम उनके समग्र काव्य विकास का उनके जीवन की उपयुक्त विभिन्न घटनाओं से पथक करके गही देख सकते हैं। प्रगीत काव्य का कवि के यत्ति व से अलग करके देखा भी नहीं जा सकता।

### हालावाद का स्वल्प

बच्चन जी का उपयुक्त कृतिया स्फुट प्रयाता के मवलन है। मधुशाला में परिशिष्ट की ४ अल्पदियों की गिलातर कुल १३९ अल्पदिया हैं। अल्पदी का रूप विधाम एकसा है और प्रत्येक वध की अंतिम पक्ति में मधुशाला शब्द की पुनरुक्ति हाती है। जो समस्त पद में मादकता और सरसता का संचार करती है। प्रत्येक वध अपन में स्वतंत्र और पूण है। पूर्वापर रूप से उनमें कोई सम्बन्ध नहीं है। पिटजैरल्ड ने उमर खयाम की ६७४ रुबाइया में से जिन ७५ रुबाइया का अंश में अनुवाद करके प्रस्तुत किया था वे आमपूण होत हुए भी अपने क्रम में एक नया को प्रस्तुत करती थी। बच्चन जी ने 'मधुशाला' के प्रथम मस्करण में उमर खयाम की समता पर ७५ अल्पदिया ही प्रस्तुत की थी। इनमें भी एक गाथा के सम्म तत्त्वा की घोषणा

और विविध भावनाओं के बीच तारतम्य भी बँठ जाता था ।

### (१) मधुशावो की अगूरी हाला

‘मधुशाला’ के आरम्भिक पद में वे पहले अपने प्रियतम को संबोधित करते हुए कहते हैं कि मैं अपने मधुभावा के अगूरी की हाला बनाकर लाया हूँ । इसका पहले तुम्हें भोग लगाऊँगा फिर ससार उसका प्रसाद पायेगा । उनकी मधुशाला सबसे पहले प्रियतम का ही स्वागत करती है । इसके पश्चात् वे प्रियतम से अपना अद्भुत सम्बंध विज्ञापित करते हैं —

प्रियतम तू मेरी हाला है ।

मैं तेरा प्यासा प्याला,

अपने को मुझमें भरकर तू,

बनता है पीन वाला ।

मैं तुझको छक, छलका करता

मस्त मुझे पी तू होता

एक दूमरे का हम दानो

आज परस्पर मधुशाला ।

### (२) कल्पित कल्पना की हाला

कवि रूपी साकी भावुकता रूपी अगूरलता से कल्पना का हाँगा खींचकर लाया है । वह कल्पना के हाथों से ही उसे पान करता है । यहाँ पर कल्पना शब्द विशेष महत्वपूर्ण है । हाला कल्पना की है जीवनानुभूति रहस्यसाधना या दार्शनिक मन्तव्य की सूचक नहीं । कल्पना शब्द का अनेक बार प्रयोग करके कवि बीच-बीच में यह सजग करता जाता है कि मेरी हाला भीतर नहीं, काल्पनिक है । मधुशाला के अन्त में भी कवि ने कल्पित कल्पना शब्द को रखार उसकी अयथायथा उदघोषित की है

कल्पित कल्पना का ही इसन

सदा उठाया है प्याला

मान दुलारो स ही रचना

इस मरी सुकुमारी को

विश्व तुम्हारे हाथों में अब

सौंप रहा हूँ मधुशाला ।

उमर खयाम ने अपना हाँगा का कभा भी कल्पित नहीं कहा, इसका मन्तव्य यही है कि बचन का हालावाद जावन की गहन रहस्यानुभूतियों से अनुबधित होकर काल्पित भावों में मद है । मधुशाला के पथ के पथिका को सुबाधन करके भी वे कहते हैं

मुद्य स तु अविरत कृता जा  
 मधु मदिरा मादकं हाला,  
 हाथो म अनुभव करता जा  
 एक ललित कल्पित प्याला ।  
 ध्यान किए जा मन म सुमधुर  
 सुखकर सुन्दर साकी का ।

और जब मदिरा पीने की अभिलाषा ही हाला बन जायगी, अघरो की जातुरता म ही प्याना जाभाषित होने लगेगा ध्यान करत करते जब स्वय साकी हो जाजोग और जत्र हाना प्याना, साकी का अस्तित्व न रहेगा, तब मुझे मधुशाला मिल जायगी ।

### [३] दग्ध प्राणो की कविता

इसके पश्चात् उन्होंने मधुशाला का मागीतिक चहलपहल मधुशाला का इन्द्र धनुषी शृंगार उसके नाज नखरे आदि का चित्रण किया है । हाला मधुशाला के गुणा का भी उल्लेख उन्होंने किया है उनकी हाला सामारिक हाना स पथक है, वह जगती की शीतल हाला नहीं, ठंडा प्याला नहीं वह तो जलत हुए प्याले म ज्वाला की सुरा है दग्ध प्राणा की कविता है । बच्चन की मधुशाला साम्प्रदायिक वातावरण से ऊपर है वह केवन् उमी पीन वाले का स्वागत करती है जो सारे धम धमो को जना चुका ही मन्दिर मस्जिद गिरजे की चहारदीवारी स निकल आया हा और पडित, मोमिन और पान्तरिया के सफीण जान को नष्ट भ्रष्ट कर चुका हा ।

### [४] विश्व विजयिनी मधुशाला

इसके पश्चात् उनका कथन है कि जिनन ह्य विकपित हाकर मधु का प्याना पान नहीं किया, उमका जोवन निरव्य है । मधुशाना को व कालानीत कहत हैं । मन्दिर मस्जिद नष्ट हा जाय, बटे-बडे परिवार और राज्य ँट जाय पर पीन वाले और मधुशाला नष्ट नहीं हो सकती । मधुशाना नित्य नवेली है । विश्व विजयिनी है । वह स्वय नोच मे मी.जी वमुधा पर अवतरित हुइ है सामारिक दुख उसे स्पग तक नहीं कर सकता वह नित्य प्रति दिन को होली और रात को दीपावनी का महोत्सव मनाता है । उमकी इस प्रकार महिमा-मान करन के बाद बच्चन का कथन है कि परस्पर मिमल समय अब जयराम न कहकर 'जय मधुशाना के उन्चारण द्वारा अभिवान्न किया करो ।

### [५] सर्वात्मवादी हाला

बच्चन जी ने विश्वव्यापी विराट रूपका की सृष्टि करत ह्य प्रकृति के कृष्ण रण म मधुशाना क दशन भा विचे हैं—

किसी ओर मैं आखें फरूँ  
दिखलाई देती हाना  
किसी ओर मैं आखें फरूँ  
दिखलाई देता प्याला ।

किसी ओर मैं देखूँ मुझको  
दिखलाई देती साकी,  
किसी ओर देखूँ, दिखलाई  
पढ़ती मुझको मधुशाला ।

सूर्य सिंधु बलि विटप तण तारक समीरण, उपवन, रमाल, मञ्जरी, मधु ऋतु, अरण ऊपा सध्या, ज घंकार शशि योगिराज कृष्ण की वशी राग रागिनियाँ झकृत वीणा चित्रकार लोल नहरें मानसरोवर चञ्चल नदियाँ लहराते खेत आदि सभी उपादानों में उठे मात्क हाला प्याला साकी और मधुशाला ही दिखायी देती है ।

### [६] सदा सुहागिन मधुशाला

वक्चन जी मन्दिर मस्जिद आदि से मधुशाला का तुलना भा करत हैं और उसे सदा सुहागिन कहते हैं । मन्दिर मस्जिद आदमी आत्मी के बीच में बरभाव बताते हैं पर मधुशाला उनमें मल कराती है । वे मधुशाला को पावन तपोवन का रूपक भी दत हैं । वे हाला के मूल स्रोत भी बधिक यथा में खोजत हैं । वेदा में वह सामरस थी वारुणी थी वह वेद विहित है सदा में पूज्य रही है । मधुशाला समानता का पाठ पढाती हुई, जनता के मानस को बदलने के लिए सौ सुधारकों का काय अकेली ही सम्भर करती है । अज्ञ विन रक राव आदि किसी में भी वह भेद नहीं करती । इस तरह वह साम्यवाद की प्रथम प्रचारक है ।

### [७] उन्मुक्त भोग

उमर खैयाम की तरह वक्चन जी भी कल पर विश्वास नहीं करते । वतमान जीवन ही उनके लिये उपभोग्य है । वे लिखत हैं—

कल ! कल पर विश्वास किया कब  
करता है पीने वाला,

आज हाथ में था वह खोया  
कल का कौन भरसा है । (पद ६१)

खयाम की ही तरह उहाने भी अपनी सुमुख प्रेयसि को सम्बोधन करके जीवन मधुरस की मधुर मादक हाला का अनवरत रूप से पिलाते रहने की कामना की है ।

भणिक जीवन का दुःख और तसम निराशा व व्याप्त साम्राज्य की ओर भी उनकी दृष्टि गई है। जगन म 'आने के साथ ही जान' का क्रम प्रारम्भ हो जाता है, जम लेते ही मनुष्य मरना प्रारम्भ कर देता है। स्वागत के साथ ही विदा की तयारियाँ होने लगती हैं और जीवन की मधुशाला खुलते ही बंद होने लगती है। इस प्रकार तृप्ति की जगह मधुशाला अतृप्ति की जम दनी है। युझने की जगह प्यास और तीव्र हो जाती है।

## [८] भाग्यवाद क्षणवाद

बच्चन भाग्यवाद का भी समर्थन करते हैं। लाय हाथ पाव पटजन पर कुछ होने-जाने का नहीं क्योंकि भाग्य म जो मधुशाला लिखी होगी, वही प्राप्त होगी, अयथा नहीं। वे मानव को मिटटी का प्याला कहते ह्य उस क्षीण, क्षुद्र, क्षणभंगुर और दुबल कहते हैं जिसके भीतर कट्टु मधु जीवन की हाला भरा है।

एक पद म उन्होंने मधुशाला के अपने प्रतीक को भी स्पष्ट किया है। उनकी मधुशाला वह नहीं है जहाँ मदिरा बची जाता है, प्रत्युत जहा पर मस्ती की भेंट मिला करती है वही पर उनकी मधुशाला है। अर्थात् मधुशाला मतवालेपन या मधुरता की सूचक है। जाकी रही भावना जसी' के अनुसार वे यह भी कहते हैं कि मधुशाला हाला प्यास और साकी प्रत्येक व्यक्ति की रचि व अनुरूप अथ और मादकता का संचार करत हैं—

जितना ही जा रसिक उसे है

उतनी रसमय मधुशाला (१२८वा पद)

या— जिमकी जसी रचि थी उसने

वसी देखी मधुशाला। (१३१वा पद)

अन्त म बच्चन जा ने मधुशाला की निर्माण प्रक्रिया का भी सचेत दिया है जो विशेष ध्यान देने योग्य है। मधुशाला सहज हा नहीं निर्मित हुई इसके निर्माण मे न जाने कवि क कितने अरमान और मन के महल ढह गये हैं। तब कही जाकर इसका यह स्वरूप बना सका है। मधुशाला म आद्यन्त कवि कल्पना का सहारा लेकर उसके स्वरूप का विशद रूप स आख्यान करता है। उसके बीच-बीच मे उमर ख्याम के स्वरो की प्रतिध्वनि है। इसके मूल म कोई गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक भूमिका न होकर वैयक्तिक जीवन के कष्ट अथसाद को भूलन का प्रयास है, जीवन व निराशामूलक भाग्यपरक, क्षणभंगुर और नियतिवादी स्वरूप की अभिव्यजना है। बच्चन जा ने मधुशाला को जहाँ विश्वव्यापी रूपकी म प्रस्तुत किया है, वहा उनकी रसमयता प्रौढ प्रतिभा और मौज मस्ती भरा जीवन दृष्टि का निस्सदेह प्राक्ल्य है, किन्तु यह उपक्रम जीवन साधना का परिणाम न होकर कल्पना प्रवणता का ~~ही~~ ~~ही~~ पूर्ण खेल

है। यही कारण है कि मुनिश्चित जीवन-दशन के अभाव में यह ख्याली मस्ती बहुत समय तक टिक नहीं सकती।

### साग्रह विचारात्मकता

हम कह चुके हैं कि मधुशाला की अपेक्षा बच्चन जी की मधुवाला और मधु 'कवयश' में अतिरिक्त बौद्धिकता है। साग्रह विचारात्मकता के प्रवेश ने इन्हें पहली कृति के समान रसपशल नहीं बनने दिया। लोक प्रियता इन्हें भी प्राप्त हुई है और प्रत्येक कृति में दशाधिक संस्करण निकल चुके हैं किंतु हमारा मतलब यह है कि जो भावप्रवणता और कल्पनाकुलता मधुशाला में है, वह इन कृतियों में अपने प्रकृत रूप में नहीं दिखाई देती। द्वितीय बात यह है कि इन दोनों में मधुशाला की विचारधारा प्रतीकों उपमानों और रूपकों का ही आवतन है। विचारात्मक भावों का नयापन बहुत ही स्वल्प है। हालांकि ख्याली साकी और मधुशाला में जिन गुणों का उल्लेख बच्चन जी ने मधुशाला में किया है उसी का किंचित शब्दों के हेतुफेर द्वारा कथन इन कृतियों में भी किया गया है।

विषय वस्तु और कलात्मक उपकरणों के आवतन के कारण बच्चन जी की परवर्ती कृतियों की लम्बी लम्बी रचनाओं में वह सरसता मस्ती और जीवन की उत्फुल्लता भी नहीं आ सकती है जो मधुशाला की अष्टपदियों में विद्यमान है। मधुशाला में जहाँ कवि प्रतिभा का स्वाभाविक स्फुरण है समासहीन सहज शब्दों में जो बल और श्रुतिपेशलता है तथा जनसाधारण की भाषा की जो जीवनी शक्ति है वह भी परवर्ती काल में विचार बोझिल होकर बहुत कुछ श्रमसाध्य और अलंकरण प्रधान हो गई है। भाषा में कलात्मकता का प्रवेश तभी होता है जब भावनाओं का प्रवण अपेक्षाकृत कम होना है। बच्चन जी की लोकप्रियता के मूल में जनहृत्ति के अनुकूल उनकी विचारधारा के साथ परिष्कृत जनभाषा का भी अपरिमित योग रहा है। मधुशाला का भाषा उनकी आदर्श भाषा है जिसके निर्वाह का उन्होंने आद्यतन प्रयास किया है।

मधुवाला में उनके १५ लम्बे प्रगीत हैं। मधुवर्षिणी मधुवाला का सौंदर्य भी कलित कल्पना की रंगीनी से निर्मित है—

यह स्वप्न विनिर्मित मधुशाला

यह स्वप्न रचित मधु का प्याना

स्वप्नित तपणा स्वप्निल हाता

स्वप्ना की दुनिया में भूना

फिरता मानव भाला भाला।

मधुवाला की प्रकृत रचना का यह चिंतन विशिष्ट उपसंहार है। यह उसी

प्रकार का विचारत्मक मयन है जो पत जी के 'एकतारा' शीपक प्रगीत के अन्त में उपलब्ध होता है। मधुवाला क रूप, गुण सौन्दर्य, प्रकृति आदि का उल्लेख करते-करते वे मानव जीवन की स्वप्नलता और निरर्थकता का जाह्यन करने लगते हैं। मालिक मधुशाला भी ससार का पाठ पढ़ाता है—कटु जीवन में मधुपान करने का, ससार के रोदन में गान करने का और मादकता के सम्मान करने का। किन्तु यह वैयक्तिकता, ससार निरपेक्ष विचारधारा क्या जीवन के लिये उपादेय है? मादकता का सम्मान किया जाय, पर ससार के रोदन में खुशियाँ मनाना और जीवन की कटुता को सघप से पलायन कर मधुपान के द्वारा भुला देना—यह सदश क्या ग्राह्य है? 'मधुपायी में यत्न जा अपनी वैयक्तिक तुष्टि की ही चरम मत्प मान लेते हैं—

कल्पना सुरा औ साकी है  
पाने वाला एकाकी है,  
यह भेद हम जब ज्ञात हुआ  
क्या और समझना बाकी है ?

वे क्षणवाद को भी दग्गन के रूप में ग्रहण करते हैं और 'मधुशाला के कंधो पर चढ़कर, अपने जीवन के क्षण क्षण को मादकता से भर लेन का उपदेश देते हैं।' 'प्यास' शीपक रचना में उमर खंयाम की कूजा नामी की विचारधारा ही स्पष्ट है। इसमें भी वे वाद-विवाद तक-वितक को छोड़कर एवमात्र आनन्द करने का सदेश देते हैं। 'हाला में हाला की विश्व-व्यापी मादकता का अवन किया गया है। प्यास' में निराला के 'तुम और मैं की तरह हाला और जीवन की प्यास के बीच अद्भुत सम्बन्ध दिखलाया गया है। एक दूसरे को परस्पर एक दूसरे की नितान्त आवश्यकता है। प्यास हाना से मिलकर पूणकाम हा जाती है, हाला प्यास से मिलकर साथक हो जाती है—

तेरी मुझको आवश्यकता  
आवश्यकता तुझको मेरी  
तुझसे मिल पूण चला बनने  
बस इतना ही मेरा परिचय।

'आत्मपरिचय' उनकी एक विशिष्ट रचना है। इसमें उन्होंने आरमपरक शली में अपना परिचय दिया है। इस परिचय में उनका मीज मस्ती से भरा वैयक्तिक जीवन दशन व्यक्त हुआ है। वे कहते हैं कि मैं जग-जीवन का भार ढा रहा हूँ फिर भी अपने जीवन से प्यार करता हूँ। मैं स्नेह-सुरा का पान करता हूँ और ससार का कभी भी ध्यान नहीं करता। मैं ससार के गीत न गाकर अपने मन के गीत गाता हूँ। मुझे



यह अपूण सत्तार अच्छा नहीं लगता मैं स्वय अपना स्वप्नो का सत्तार लिए फिर रहा हू। दोवानो के वेश मे, नि शेष रूप से मादरना लिए हुए मैं मन मोबो पर मस्त बहा करता हू। लाख यत्न करने पर भी किसी ने आज तक सत्य को नहीं जान पाया मैं अपन सीखे हुए ज्ञान विज्ञान के बोझ को भुलाना सीख रहा हू और सत्तार को मस्ती का संदेश देता हू।

## (ई) उपसहार

‘मधुवाला की उपयुक्त रचनाओं की विचारधारा लगभग वही है जो मधुशाला के सागर में स्फुट रूप से सतचित है। मधुक्लेश में भा प्रकारान्तर से यही वस्तु है। हाँ उनकी इस व्यक्तिक वासनात्मक विचारधारा के विरुद्ध किए गये आघातों के उपशमन का प्रयास उसमें अतिरिक्त है। बच्चन की ये अनुभूतियाँ और विचारधारयाँ हिन्दी पाठकों की प्रकृति के विपरीत थीं। वे अपरिचित थीं और भारतीय काव्य परम्परा से भी मेल नहीं खाती थीं। साथ ही सामाजिक जीवन की दृष्टि से वे अस्वस्थ और सविकार थीं। इसलिए उनका सर्वाधिक विरोध हुआ और उन्हें कवि की निराशा जय प्रतिक्रिया के द्वारा उदभूत कहा गया। कवि ने धार्मिक साम्प्रदायिकता के साथ खुला विद्रोह किया है, मन्दिर मस्जिद और गिरजघरा का द्वेष और घणा का प्रचारक कहा है और मदिरालय को साम्यवाद का निकतन, पर क्या मधुशाला वरेण्य है? इस विद्रोह की सामाजिक उपापेयता क्या है? मस्तानापन जीवन में आवश्यक है पर क्या वह हाना की कल्पना से ही संभव है? मदिरालय की शरण में ही मुबारक होता है? क्या व्यक्तिक तपित ही अलम है, सांसारिक जावन का कमठता निस्व है? यदि इस सारां की सारी विचारधारा को रहस्यवाद की सामग्री मान लिया जाय और मधु और मधुशाला को सूफी कवियों की तरह पश्चिनी मान लिया जाय तो भी इसमें रत्नसेन की साहमिक और साधनापूण माला का जभाव है। मैं नहीं चाहता कि बच्चन जी के मधुगीता पर दशन और रहस्य के आवरण चढाकर उनकी आरभा का हनन किया जाय। वे लौकिक जीवन की मौज मस्ती से परिपूण सरस सुन्दर और भावना प्रवण गीत हैं उनमें मानवीय जीवन की ताजगी और उत्फुल्लता निहित है। उ हे उनके प्रकृत रूप में ही ग्रहण किया जाय। वे सरस काव्य के उदाहरण हैं। वाद के कठघर तो काव्य के स्वच्छन्द रसपान में बाधक ही होते हैं। रहस्यवाद की वतुल परिधि में आकर बच्चन के गीतों की लोकप्रियता नहीं बढ़ेगी उनकी विचारधारा उमर खयाम की तरह फिर भी निराशा और पलायनवादा ही कही जायगी, वस्तुतः उनके मधुगीतों में दार्शनिक विचारधारा का महत्व न होकर मानव की प्रकृत भावनाओं तथा मस्ती का आह्लाद है, जो उमर खयाम की ख्वाइया की तरह कभी कम न हागा। हालां, मधुशाला और

मधुवाला ता बहाना हैं उनकी कल्पना के द्वारा जो मस्ती प्राप्त होती है वह मानवीय जीवन की सक्रियता के लिए सुख दुःख, राग विराग, घणा द्वेष, आशा निराशा, सफलता असफलता आदि के द्वन्द्व में अचल, अप्रभावित रहने के लिए अतीव आवश्यक है। यह विधायक वस्तु उनके गीता में विद्यमान है और लोग उनका मधुपान कर अपने जीवन की कटुता का रचन कर स्वस्थ और निर्विकार हो जाते हैं। बच्चन के गीतों की यही साध्यता है। उनके गीत जीवन मदेश और आगे वृत्त रहने के लिए महान कवियों की भांति उल्लोघन नहीं देते वरन् सम विषम परिस्थितियाँ में मस्त रहने का जाग्रह करते हैं। कवि जीवन से थककर भागा नहीं है उसकी अपूर्णता को उसने अपने स्वप्ना की मात्कना क द्वारा भरने की चष्णा की है और इसी चष्णा में उनके निराश उदास जीवन में मस्ती का एक नया ससार ही बस गया है। प्रसाद जी के जीवन में भी एक मात्क मस्ती थी, बनारसी रग था, जिसमें उन्हें आनन्दवादी और समस्त बनाया। यही मस्ती निगला और नवीन के फक्कड़ जीवन में भी थी, पर इनमें से किसी ने भी हाला का गुण गान नहीं किया, ऐकात्मिक तृष्णा और स्वप्निल मादकता के क्षणवादी गीत नहीं गाये। उनका काव्य उनके कममय जीवन की क्रियायें थी प्रतिक्रियायें नहीं। बच्चन जी ने स्वप्नित मधु क द्वारा अपने जीवन के रिक्त पात्र को भर कर उसका प्रशस्ति गान किया है। जायसी की नागमती सूर की राधा, मीरा और महादेवी की तरह बच्चन ने अपनी परमशक्ति हाता और कवय धाम मधुशाला के विषोय में आखी से गया नहीं बहार्थ, जश्रुआ की अजलि नहीं चटाई। मधु मधुवाला और मधुशाला के साथ उनका रागात्मक सम्बन्ध न होकर कल्पनाकुल और बुद्धि विशिष्ट सम्बन्ध है। उह केवल मस्ती से काय है जो असाधित है। पर यह मस्ती क्या? किसलिए? उत्तर है मस्ती के लिए मस्ती! यह दर्शन भी व्यक्तित्वना स प्रस्त है। जो मस्ती निष्प्रयोजन है वह किस काम की? यदि कहा जाय कि सौसारिक जीवन की विषमता को भूलने के लिए? तो यह एक पलायनवाणी जीवन-दर्शन है क्योंकि मादकता की मस्ती में मस्त हो जान पर भी ससार की विषमता दूर नहीं हाने की?

पत जी ने बच्चन की इस मदिरा प्रसूत मस्ती की बहुत प्रशंसा की है और कहा है कि यह अमृत सजीवनी है जिसे मत्स्य भी पान कर जीवित हा उठती है यह मस्ती जीवन चत व की मस्ती है वह शिव सौ दय तथा आनन्द की प्रतीक है वह जीवन के आदिमक उल्लास से प्रसूत है, वह अलौकिक शक्ति का रूपान्तरण है। वह

१ राग के पीछे दिग्भा चीत्कार  
कह लेगा किसी लिन ।

हैं लिये मधुगीत मैंने  
हा खडे जीवन समर में ।

बच्चन के आरम्भिक काय में वासना का उदगार न होकर साधना का उदगार है। आप बच्चन जी के हालावादी या मधुवादी काय का उसी धरातल पर चर्चा काय भी कहते हैं।

बच्चन तथा पत जी के अल्पत मुहूर्त सम्बन्ध रहे हैं और निश्चित है पत जी यहाँ तटस्थता से काम न लेकर पूर्वाग्रह से प्रभावित हैं। बच्चन जी की इस क्षणिक या अल्पस्थायी मस्ती को हम कभी भी पत जी की अतश्चेतनावादी रचनाओं की तुलना में नहीं रख सकते, क्योंकि चेतानाकाव्य के लिए जो वाशानिक-सांस्कृतिक धरातल की अपेक्षा होती है, वह काल्पनिक नहीं हो सकता, 'यक्तिनिष्ठता' तथा 'एकान्तिकता' की विशेषताएँ भी इस दिशा में बाधक होती हैं, जो बच्चन जी के मधुपर्वी गीतों की आधारशिलाएँ हैं।



## ४ | प्रगतिवाद

[अ] 'प्रगतिवाद और 'प्रगतिशील' शब्द -

— प्रगतिवादों उपयुक्त दोनों शब्दों को पर्याय-रूप में ग्रहण करते हैं किंतु इस सदम में प्रश्न हो सकता है कि क्या प्रगतिगामिता के तत्त्व केवल प्रगतिवाद में ही निहित हैं ? या विश्व के अन्य साहित्यिक वादों में भी हैं ? अथवा प्रगतिवाद में उनका प्रकथ है और इतरवादों में विरलता ? साहित्य समाज की क्रिया-प्रतिक्रियाओं की मखरित वाणी है । परिवर्तनशीलता समाज का सत्त्व जोर शाश्वत धर्म है इसलिए हर देशकाल विशेष में सामाजिक, राजनीतिक मानसिक भाँति पष्ठभूमियों के अनुरूप साहित्य भी बदलता रहा है या कहे प्रगतिशील रहा है । वह कोई जड या निर्जीव वस्तु नहीं जो अचल हो, प्रगतिहीन हो, उसकी चिर-तनता और शाश्वतता समय का साथ देने में निहित है । इस दृष्टि से कौन सा साहित्य प्रगतिशील नहीं है ? जब सब कुछ गतिशील है तब उसे 'वाद' की सीमा में जकड़कर जड बना देना, उसके साथ अयाम करना है । 'वाद एक देश-काल विशेष और समाज की मन-स्थिति के प्रकथ को घोषित करता है वह अपनी सीमाओं में बंदी रहता है पर साहित्य परिस्थितियों के अनुरूप अपनी वादों-कचलों त्यागकर तम साजे में ढल जाता है । यह दूसरी बात है कि साजे की रूपावृत्ति के निर्माण में स्वदेशी वातावरण या विदेशी विचारधारामें अथवा दोनों ही सत्रिय हा । पर पूणत उत्खात करके कोई भी वस्तु एकाएक अपरिचित परम्पराहीन और अनुवर स्थान में नहीं लगाई जा सकती । यहाँ हम लेखना यह है कि प्रगतिवाद की प्रगतिवादिता क्या है और क्या वह स्वदेशी वस्तु है या विदेश से आयात की गई है ?

✓ ध्यायावाद की जोड़ स हिन्दी में जो नया साहित्यिक आन्दोलन उठा, वह प्रगतिशील होते हुए भा एक सम्प्रदाय विशेष की वादात्मक सीमा में आवद्ध है । यहाँ शील और 'वाद का विवाद है । प्रगति दोनों में है पर एन की प्रगति 'शीलता' से युक्त है और दूसर की उससे विरहित । 'शील' स हीन होने पर प्रगति वाद का रूप धारण कर गई है और एक विशय जीवन-सदेश को इष्ट मानकर अग्रसर हुई है पर मानवीय जीवन की प्रगतिशीलता थोड़े ही समय में उस जीवन-दशन

अतिरेक बर गई और प्रगतिवाद हिंदी—माहित्य में इतिहास बनकर रह गया। यह एक द्विचारात्मक प्रवेग था जो तत्कालीन परिस्थितियाँ से आक्रांत होकर वास्तविक की भाँति उठा और हालावादी की तरह चार—पाँच वर्षों में ही अपने प्रकय पर पहुँचकर समाप्त हो गया। पर हालावादी में जहाँ जीवन के प्रति पलायन, निराशा, मौज मस्ती आदि का जीवन—दशन था वहाँ प्रगतिवादी जीवन की कमठला का यज्ञ निनाद है। सघर्ष की पूँजीभूत वाणी है नयी आशा—आवासाओं का राग है, याति की ज्वाला है पूँजीवाद के द्वारा घोषित प्राणियों के प्रति महानुभूति प्रदर्शित करने वाला भौतिकवाद है। प्रगति या तात्पर्य यहाँ पर केवल घोषित वग की प्रगति से है। मानवीय जीवन की सर्वांगीण प्रगतिशालता इस वैचारिक दशन में नहीं मिलेगी। भारतीय आध्यात्मिक प्रगति, काय धर्म और माक्ष में सर्वधित जीवन या उन्नयन प्रगतिवादियों का उद्देश्य नहीं अरु उनका प्रस्थान बिन्दु है। अथ का समान वितरण और समाज से विषमताओं का अधमार्ग्य उनका मलभ्य है। प्रगतिवादी को पागली किंवा उन्नति से कुछ भी मतलब नहीं वह एक विशुद्ध लौकिक और सामाजिक जीवन दशन से सम्बंधित एक राजनीतिक विचार—धारा है। प्रगतिवादी और प्रगतिशील के इस अंतर को भूलकर अनेक प्रगतिवादी अपने को प्रगतिशील ही कहते हैं। 'निराला और पत जी की कुछ रचनाओं को भी प्रगतिवादी की भीमा में परिगणित किया जाता है। इसमें सदेह नहीं कि कुकुरमुत्ता में निराला जी की प्रगतिशीलता व्यक्त है और युगात्, युगवाणी और ग्राम्या में पत जी ने उस युग की प्रगतिवादी वाणी को प्रस्तुत किया है पर ये कवि प्रगतिवादी वैचारिकता को प्रस्तुत करते हुए भी अपनी दृष्टि अथ पर केन्द्रित नहीं करते। भौतिक उन्नति को ही जीवन का सर्वस्व नहीं मानते। ये भारत की आध्यात्मिक और दार्शनिक परम्परा से अनुबंधित कवि हैं। भौतिक उन्नति की अपेक्षा ये मानसिक और आत्मिक उन्नति पर—विशेष बल देते हैं। यही कारण है कि प्रगतिवादी की शीर्षण करके भी पत जी मार्कवाणी विचारधारा का सम्बन्ध गांधी जी की सत्य—अहिंसामयी आध्यात्मिक विचारधारा से करते हैं और जब इस काय में कृत्कृत्य नहीं होते तो अरविन्द—दशन की जोर मुड जाते हैं। निराला जी प्रगतिवादियों पर भी कठोर यग्य करते हैं। उनका कुकुरमुत्ता' शापित का प्रतीक है और गुलाब पूँजीपतियों का पर इस कृति का, व्यग्यात्मक सदेश यही है कि मानवीय जीवन—दशन और समाज का अभ्युदय न तो पूँजीपतियों के, द्वारा संभव है और न कुकुरमुत्ता की सस्कृति के द्वारा। हम इन दोनों से ऊपर उठना होगा। जपन चतुर्थ याम में निराला जी भी यह—प्रगतिवादी—दृष्टि छोड़कर प्राथमपरव आध्यात्मिक गीतों की सजना करते हैं। इस प्रकार निराला और पत जी पूणत प्रगतिवादी नहीं हैं व प्रगतिशील कवि हैं।

प्रमचंद जी भी प्रगतिवादी उद्धार प्रगतिशील लेखक हैं। केवल घोषित

युग का ही वे पक्ष न लेकर मानवता के उत्थयन की बात करने हैं। इस तरह पिराला और पन्त की तरह उनका भा समस्त साहित्य मानवतावाद की उदात्त भूमिका पर थाग्रन है। प्रगतिवादी लेखक और कवि भी मानवतावाद की सरगम बजाते हैं पर उनकी मानवता का अर्थ है पूँजीपतियों के द्वारा उत्पीड़ित जनो के प्रति मानवीय सहानुभूति से युक्त भावना का ज्ञापन या बौद्धिक स्तर पर समानानुभूति।

इस तरह इन सन्तों में एक मूढम अंतर विद्यमान है जिस पर हमें ध्यान रखना आवश्यक होगा। यद्यपि इस अंतर को डा० नामवर सिंह केवल बौद्धिक विलास कहते हैं और इसे निरर्थक बताते हैं। किसी का कम या अधिक प्रगतिवादी या प्रगतिशील बहना भी आपको पसंद नहीं और प्रगतिशील साहित्य को आप 'अप्रेजी' प्रोप्रैसिव लिटरेचर' का हिस्सा अनुवाद कहते हैं। 'प्रोप्रैसिव लिटरेचर' में प्रगतिवादी साहित्य के ही तार स्वर हैं। उन्होंने लिखा है कि यह विरोध प्रच्छन्न विरोध-भावना से किया जा रहा है किन्तु प्रगतिवादी हस्त के लिए उस जावन-दशन में पूर्ण निष्ठा तो आवश्यक है। यदि उसका अभाव हो या अति-याप्ति हो तो भी क्या हम उन्हें प्रगतिवादी कहें? ऐसा कहना उनके साथ 'पाय न हागा अतएव यह अंतर लेकर चलना ही श्रेयस्कर होगा।

**प्रगतिवाद की प्रेरणा भूमियाँ -**

**[क] युग-चेतना**

प्रगतिवाद को मार्क्सवाद से प्रभावित एक विदेशी वस्तु भी कहा जाता है। पर हम कह चुके हैं कि जब तक हमारे अंतःकरण और वातावरण में युग-चेतना की सर्वश्रीलता न हो तो हम बाहर के प्रभावों को ग्रहण ही नहीं कर सकते। छायावाद के भी पूर्व, पश्चिम में मार्क्सवाद का प्रभाव फल-सूका था। १९१७-१८ में रूस में जनक्रान्ति हो चुकी थी और श्रमिक वर्ग के हाथों में दश की बागडार आ गई थी। उस समय भारत में प्रगतिवाद क्यों न पदा हुआ? इसका सीधा उत्तर यही है कि उस समय हमारे देश का मानस उन प्रभावा का ग्रहण करने के लिए सक्षम नहीं था। उस समय देश में ब्र परिस्थितियाँ ही नहीं थी जिनमें प्रगतिवादी तत्त्वों का उदभव और उत्थयन हो पाता। हमारे देश में इस शताब्दी के आरम्भ से ही औद्योगिक प्रगति प्रारम्भ हुई है। प्रथम दो दशकों तक यह प्रगति बहुत ही कम थी अतएव शोषक-शापितों की समस्याओं बहुत स्वल्प था धीरे धीरे औद्योगिक प्रगति तीव्र हुई और समाज में अग्रजी साम्राज्यवाद और भारतीय सामतवाद के साथ-साथ पूँजीवाद और व्यक्तिवाद का तीव्रता से विकास हुआ। यक्तिवाद की व्यक्तिकता, छायावादी काव्य में आत्मनिष्ठा के रूप में अभिव्यजित दृश्य है। इस समय देश अपनी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सघन-कर रहा था। स्वतन्त्रता-प्राप्ति का तात्पर्य था साम्राज्यवाद और सामतवाद से मुक्ति। १९२० के दशक

पूँजीवाद न अपना विकराल रूप नहीं दिखाया था अतएव इस समय तक समाज के सभी वर्ग-पूँजीपति और रक, स्त्री पुरुष मिलकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील थे किंतु १९२८ के आसपास पूँजीपतियों ने अपने-कल-कारखात्रो-मे-धमिक मजदूरो का शोषण तीव्रता से प्रारम्भ किया फलतः मजदूरो ने संगठित होकर पूँजीपतियों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किये। अपनी आवश्यकताओं और सुविधाओं की माग की उनकी पूति न होने पर हड़तालें की। इस समय तक भारतीय समाज शोषक और शोषित इन दो इकाइया में बँट गया था। समाज का मानस इस समय ऐसी संवेदनामय अवस्था से गुजर रहा था जबकि उनपर बाह्य साम्यवादी (कम्युनिस्टिक) विचारधारा अपना प्रभाव सहज ही छोड़ सकती थी। अतः इस समय १९२७ ई० में सब प्रथम भारत में कम्युनिस्ट दल की भी स्थापना हुई।

### [ख] राजनीतिक स्थितियाँ

अखिल भारतीय कांग्रेस का दृष्टिकोण भी १९३५ ई० तक आते आते विशुद्ध राजनीतिक न रहकर जायिक प्रश्नों से परिकेन्द्रित हो गया था। १९२६ में लखनऊ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्षीय अभिभाषण में प० नेहरू ने कांग्रेस की नवीन नीतियों पर विस्तार से प्रकाश डाला था और उसके बाद से कांग्रेस मस्यथा शोषित किसान मजदूरो का पक्ष ग्रहण करके समाजवाद की ओर अग्रसर हुई। इसके पूर्व ही १९३४ में कांग्रेस सोसलिस्ट पार्टी की स्थापना हो चुकी थी जिसने समाजवाद को अपना लक्ष्य बनाया था।

✓ भारत में सब प्रथम प्रगतिवादी विचारधारा का प्रभाव वगैरह प्रकाशित होने वाले 'प्रगति' नामक पत्र पर दिखाई देता है। इसके सम्पादक थे बुद्धदेव दसु और अजितदत्त जो ढाका से इसको प्रकाशित करते थे। १९३४ ई० के लगभग कम्युनिस्ट पार्टी को गर सरकारी ठहराया गया और उसे भंग करन के आदेश हुये किंतु इसके सदस्य परोक्ष रूप से लगातार अपने सिद्धांतों का प्रचार करते रहे। देवली कम्प जेल में सरकार ने राजनीतिक चेतना वाले आतंकवादियों को हत्याओं और नशस कार्यों के माग से हटाने के लिए भाषस तथा लेनिन का साहित्य पढने के लिये दिया। इस कार्य ने कम्युनिस्ट विचारधारा में प्रसार में परोक्ष रूप से विशेष योग दिया।

### [ग] प्रगतिशील लेखक संघ

१९३५ में लदन के गावरस्टीट के ननकिंग रस्तोरा में अंतरराष्ट्रीय संस्था 'प्रगतिशील लेखक संघ' की एक शाखा की स्थापना हुई। इसमें मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर भी सम्मिलित हुये थे। इस संस्था का उद्घाटन समारोह फ्रान्स के प्रसिद्ध उप-यासकार ई० फारेस्टर की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ था। इसी वर्ष पेरिस में भी ई० फारेस्टर की अध्यक्षता में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक

अन्तरराष्ट्रीय सस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ था। भारत में मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के ही प्रयत्नों से एक शाखा खुली जिसके प्रथम अधिवेशन का नेतृत्व प्रेमचन्द्र जी ने किया और द्वितीय का महर्षि कबीर रवीन्द्र ने। भारत में इसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में १९३६ में हुआ था। अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द्र जी ने यह दृढ़तापूर्वक उदघोषित किया था कि आज लेखकों के समक्ष जन साधारण के सामाजिक और आर्थिक अभ्युदय का लक्ष्य होना ही चाहिए। उ होने साहित्य के लक्षण निरूपण करते हुए कहा कि 'हमारा कसौटी पर वही साहित्य परा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो जो सबसे गति, सघन और बेचनी पैदा करे सुलाये नहीं क्योंकि और अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।' इस अवतरण में प्रेमचन्द्र जी ने प्रगतिशील साहित्य के मूल उपकरणों की व्याख्या कर दी है। इस अभिभाषण में आपने यह भी कहा था कि नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक है—केवल उपदेश विधि में अन्तर है। मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह साहित्य को भी उपयोगिता की तुरता पर तोलता हूँ। फूलों को देखकर हम इसलिये आनन्द होता है कि उनसे फला की आशा होती है।" इस अर्थ में प्रेमचन्द्र जी साहित्य या कला को विशुद्ध सौंदर्य की वस्तु न मानकर उसे एक उपयोगी कला के रूप में ग्रहण करते हैं किन्तु उनके अनुसार प्रत्येक लेखक स्वाभाविक रूप से प्रगतिशील होता है अतएव 'प्रगतिशील लेखक सघ' इस नामकरण में प्रगतिशील शब्द निरर्थक है।

आरम्भ में प्रगतिशील लेखक सघ को रवीन्द्रनाथ और शरच्चन्द्र जस लेखकों का भी आशीर्वाद मिलता रहा है। इसका तात्कालिक उद्देश्य तेजी के साथ विश्व में फैलने वाली फासिस्टवादी विचारधारा का विरोध करना रहा है किन्तु बाद में माक्सवादी दर्शन से पूणत दीक्षित होकर यह प्रगतिवाद के नाम से हिन्दी में अवतरित हुआ। मार्क्सवादी सिद्धान्तों का उल्लेख प्रेमचन्द्र ने अपने अध्यक्षीय भाषण में नहीं किया था। यहाँ तक कि उन्होंने प्रगतिशील शब्द पर आपत्ति की थी जिसकी चर्चा की जा चुकी है। इसके विपरीत डा० शिवदान सिंह चौहान ने मार्च १९३७ के विंगाल भारत में भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता शीघ्र एक लेख लिखा और आर्थिक परिस्थितियाँ और वर्ग-सघर्ष के बीच साहित्य को रखकर उसकी परीक्षा करने का प्रयास किया। इस निबन्ध में मार्क्सवाद वर्ग-सघर्ष और भौतिकवाद की विस्तृत चर्चा की गई है और समसामयिक साहित्य को पूँजीवाद की हासो-मुखी प्रवृत्तियों का प्रतिफलन कहा गया है। उन्होंने लेखक वर्ग से यह आग्रह भी किया कि वे वर्तमान साहित्य से ऊपर उठकर वर्गवादी साहित्य की सज्जा करें।



है कि 'हमारा साहित्यिक नारा कला कला के लिये नहीं, वरन् कला सत्तार की बदलने के लिये है। इस नारे को बुलन्द करना प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यिक का फज है।'

### [घ] प्रगतिशील पत्र-पत्रिकायें

प्रगतिवादी साहित्य की प्रथम झलक हमें जुलाई १९३८ में प्रकाशित होने वाले 'रूपाभ' मासिक पत्रिका में मिलती है। इसका संपादन श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा नन्द शर्मा ने किया था। यह कालाकाकर से प्रकाशित होती थी। इसके प्रथम अंक के सम्पादकीय में पन्त जी ने प्रगतिवादी साहित्य की सदघोषणा की। आपने लिखा कि 'इस युग की वास्तविकता ने जसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल (मिले) गये हैं। श्रद्धा अवकाश में पलने वाली सस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जडित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिये कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'

(रूपाभ जुलाई १९३८ पृष्ठ १ अंक १।)

प्रगतिशान साहित्य के विकास में 'रूपाभ' का महत्वपूर्ण योग रहा है। किन्तु यह पत्रिका दो वर्षों तक प्रकाशित हुई और इसके बाद बंद हो गई।

१९३८ के अंत में पन्त जी की युगवाणी प्रकाशित हुई जिस प्रगतिवादी साहित्य की प्रथम सशक्त वाणी कहा गया। इसमें पन्त जी के गद्यगीत हैं। इन रचनाओं में तथा 'रूपाभ' में प्रकाशित प्रगतिवादी कविताओं में जनमानस को आकृष्ट किया और इस प्रकार व्यापक स्तर पर प्रगतिवादी रचनायें लिखी जाने लगीं। इसी समय 'उच्छ्वन्न' शीपक एक अल्पजीवी पत्रिका का भी प्रकाशन हुआ जिसपर प्रगतिवाद के साथ अन्तश्चेतनावेद का प्रभाव था। १९४१ में डा० शिवदान सिंह चौहान काशी से प्रकाशित होने वाले श्री प्रेमचंद्र जी के मासिक पत्र 'हंस' के सम्पादक हुये तब से इसमें भी व्यवस्थित रूप से प्रगतिवादी दृष्टि की विस्तृत 'यात्रायें' और तद्विषयक रचनायें प्रकाशित होने लगीं। इसी समय हिन्दी साहित्य के पूना अधिवेशन के अध्यक्षीय पद संवत् १९४१ देते हुये आचार्य नन्दलाले वाजपेयी जी ने प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता, महत्ता आदि का जोरदार शब्दों में समर्थन किया था किन्तु वाद में जब प्रगतिशीलता वादबद्ध हुई तो आपने उसकी निन्दा भी की।

### [ङ] साम्यवादी प्रचार प्रसार

१९३८ से द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया था जिसका प्रभाव विश्व भर के लेखक वर्ग पर पड़ा। इसी समय के आस पास सर स्टफर्ड क्रिप्स भारत आये और

उनकी इस माया के परचात कम्युनिष्ट पार्टी पुन वैधानिक घोषित कर दी गई अतः साम्यवादियों को अपने सिद्धान्तों के प्रचार का उन्मुक्त अवसर मिल गया। १९४३ ई० में बंगाल का अकाल पड़ा जिसमें अन्त यत्नकारों के परचात लगभग ५० लाख व्यक्तियों की जानें गई। इस भीषण घटना में प्रभावित होकर सम्पूर्ण भारत के साहित्यिक जन पीडा के निचे महती संवेदना व्यक्त करने लगे। उनमें मानस में बंगाल के इस अकाल की दुरवस्था और मूल कारणों-व्यंगों की स्मार्थ और गोपणपूर्ण नीति की ममाप्त करने की अन्त्य आवांगायें जाग्रत हुईं। इन परिस्थितिया में भी तथा भीन साहित्य में परिवर्तन कर उसे प्रगतिशील रूप दिया।

### [च] शैक्षणिक प्रसार

डा० राम अक्षय द्विवेदी के अनुसार हि० साहित्य में समाजवादी या प्रगतिशील विचारों के बढ़ने का एक शान्ति कारण विश्वविद्यालयों के द्वारा होने वाला शिक्षा प्रसार भी है। यह युवक विश्वविद्यालय में नई विचार धाराओं से परिचित और प्रभावित हुए। मार्क्सवाद के साथ के फायर के मन्त्रविश्लेषण तथा प्रतीकवादी विचार धाराओं की भी अपने काव्य में प्रथम दन लगे। प्रगतिवादी संघर्षों पर मार्क्स तथा सेनिन की विचार धारा का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। किन्तु हमी समय १९४३ ई० में प्रयोगवाद का जन्म हो गया जो पारचातय प्रतीकवादियों-वर्लेन, मलामे, वेंतरो, रिल्के, ईप्टस, इतिप्रस, फाम्ब आदि का विचारधाराओं से प्रभावित रहा है। आरम्भ में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद साथ-साथ विकसित होत रहे हैं पर परवर्ती काल में प्रयोगवाद ने प्रगतिवाद को दबा दिया। इस भूमिका का आशय यह है कि हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का उद्भव और विकास सहसा ही नहीं हुआ, वरन् यह युग की पुकार थी। उस युग की परिस्थितियों में केवल प्रगतिशील और प्रगतिवादी साहित्य ही पनप सकता था और पनपा भी और जब समाज तथा देश की परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ, प्रगतिवाद को छोड़कर साहित्य प्रयोगवाद के रूप में हमारे सामने आया।

### [आ] मार्क्सवाद

प्रगतिवाद को सम्यक ढंग से समझने के लिये हम उस पर सर्वाधिक प्रभाव डालने वाले मार्क्सवाद का स्वरूप जानना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में डा० राम अक्षय का कथन है कि महान लेखक प्राय ही अपने भीतर प्रगति तत्व धारण करता है। प्रगति जन कल्याण है, कितनी अधिक, कितना कम इसका निर्धारण, प्रगतिशीलता के मानदण्ड कर सकते हैं। प्रगति समाज में सदैव रहा है जीवन में भी, साहित्य में भी, किन्तु अब हम जिस प्रगतिशीलता कहते हैं वह सामाजिक तथा , क.

विश्लेषण के आधार पर स्थित है और उसी के आधार पर हम किसी कवि को तत्कालीन राजनीति में सापेक्ष रूप से रखकर उसकी आलोचना करते हैं। इस नयी भावना का जन्म कार्ल मार्क्स से हुआ, जिसने वग-सघष की बशानिक जानकारी प्रस्तुत की। मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन स्टालिन तथा माओत्सेतुंग ने साहित्य पर अपने-अपने विचार प्रकट किए हैं। उनकी विवेचना का आधार द्वैदात्मक भौतिकवाद और ऐतिहासिक भौतिकवाद की कसौटी रहा है। — (प्रगतिशील साहित्य के मानचण्ड।) यह उद्धरण हमने यहाँ सप्रयोजन अवतरित किया है। डा० रागेय राघव एक प्रतिष्ठित प्रगतिवादी समीक्षक हैं। उन्होंने अपने इस कथन में स्वयं उन प्रभावों का उल्लेख कर दिया है जो प्रगतिवाद पर पड़ हैं अतएव इस सम्बन्ध में किसी विवाद की विशेष गुंजाइश नहीं रह जाती।

मार्क्स के दशान का आधार द्वैदात्मक भौतिकवाद है। डायलेक्टिकल एक पुराना शब्द है। यूनान में यह दशन शास्त्र की एक ऐसी भली थी जिसमें दो विरोधी दल तक-वितक और खण्डन मण्डन द्वारा अपने अपने पक्ष का समयन करते थे। किन्तु आधुनिक युग में हागल ने इस शब्द को नये अर्थ में प्रयुक्त किया है। यह उसे द्वैदावादी विकासात्मक प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है। उसकी दृष्टि से विकास के लिए परस्पर विरोधी तत्त्वों का मिलन असाव आवश्यक है। इसे वह स्थापन, प्रतिस्थापन और समन्वय (थीसिस ऐंटी थीसिस और सिन्थिसिस) कहता है।—यथा-कोई-वस्तु 'अ' है तो उसका विरोधी 'ब' उत्पन्न होगा। विकास के लिए इनमें परस्पर द्वन्द्व-मा सघष होगा, जिसके फलस्वरूप उनका समन्वय 'म' में होगा। यहाँ 'अ' स्थापना, 'ब' प्रतिस्थापना और 'स' समन्वय कहा जायगा। इसके बाद फिर 'स' का विरोधी 'ड' का उदभव होगा दोनों का द्वन्द्व होगा और समन्वय होगा किसी तीसरी वस्तु में। इस प्रकार समान में द्वैदात्मक पद्धति से विकास का क्रम चलता है।

कार्ल मार्क्स अपने प्रारम्भिक काल में हीगल की इस द्वैदात्मक प्रक्रिया से प्रभावित रहे हैं किन्तु हीगल का दशन परम भाव का दशन है जिसे वह ब्रह्म, विश्वात्मा या निरपेक्ष प्रत्यय आदि कई नामों से अभिहित करता है। मार्क्स को इस निरपेक्ष ब्रह्म की सत्ता पर कोई आस्था नहीं थी। वह पूजन भौतिकतावादी या अतएव उसने हीगल की द्वैदात्मक प्रक्रिया को तो ग्रहण किया पर उसके चरम प्रत्यय का विरोध करके भौतिक पदार्थों में ही अपनी निष्ठा स्थापित की। अथवा यों कहें कि उसने मूल तत्त्व किसी परमाच्च सत्ता को न मानकर पदार्थ को ही सर्वोच्च माना। मार्क्स के अनुसार पदार्थ गतिहीन न होकर सहजत गतियुक्त है। उस संचालित करने के लिए किसी बाह्य सत्ता या निरपेक्ष ब्रह्म की आवश्यकता नहीं है। इस मायता के द्वारा मार्क्स का दशन हीगल का प्रतिरूप ही गया है। इस धरणीय को ही लक्ष्य करके यह कहा गया है कि हीगल अपने सिर के बल खड़ा था पर मार्क्स ने उसे जमीन पर खड़ा

कर दिया।' मार्क्स ने हीगल के दशन को जमीन पर जरूर खड़ा किया किन्तु हम यह देखना हागा कि मार्क्स की यह जमीन क्या है? क्या वह इतनी दृढ़ है जहाँ निश्चित तापूबक खड़ा रहा जा सके? इस तथ्य पर हम बाद में विचार करेंगे।

हीगल के परम भाव ( एक्सुल्यूट आइडिया ) का खण्डन मार्क्स के पूव एक अर्थ जमन दाशनिक फायरबाख ( १८०४-७२ ) ने किया था और भौतिकवाद की स्थापना की थी। उसका कथन था कि वस्तु के बिना उसका ज्ञान या बोध शक्य नहीं अतएव सबसे पहले पदार्थ की उपस्थिति आवश्यक है तत्पश्चात् उसके ज्ञान की। इसी सिद्धान्त के आधार पर उसने यह प्रतिपादित किया कि ससार के विकास में पहला स्थान पदार्थ का है। मनुष्य समाज भी उसी पदार्थ के द्वारा विकसित एक शृंखला है। फायरबाख के अनुसार मानवीय समाज पदार्थों के वातावरण का परिणाम है पर मार्क्स कहते हैं कि मनुष्य में उस परिवेश को बदलने की भी शक्ति है। फायरबाख प्रकृतिवादी का समर्थक है किन्तु मार्क्स का कहना है कि मनुष्य की चेतना का निरूपण केवल ऐतिहासिक और आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है।

हीगल और फायरबाख दोनों इस प्रकार के दाशनिक हैं जो अपने दशन में वर्ग संघर्ष का कोई उल्लेख नहीं करते। यह कार्य सबसे पहले एक अंग्रेज चिन्तक चार्ल्स हॉल ने किया है। उसके अनुसार मनुष्य की सम्पत्ता और मस्कुति के अभ्युदय के साथ ही सम्पत्ति शोषण और शोषित वर्गों की उत्पत्ति हुई। इन्हीं कारणों वग-संघर्ष की भावना भी उत्पन्न हुई। उसकी दृष्टि में पूँजीपति, शासक आदि अपनी स्वायत्त की भावनाओं की पूर्ति के लिए युद्धादि करते रहे हैं स्वायत्त और प्रभुत्व कामना के कारण ही अधिकार और अधिकारी के भेद उत्पन्न हुए हैं। उसका यह भी कहना है कि यदि आज गरीबों शोषितों के हाथ में शासन के सूत्र सौंप दिए जायें तो समाज और देशों के बीच होने वाले युद्ध बंद हो जायें और वर्ग संघर्ष भी समाप्त हो जाय। जन कल्याण और मानवीयता की रक्षा के लिए वर्ग संघर्ष का नष्ट करना आज एक परमावश्यक कार्य भी है।

मार्क्स ने अपनी साम्यवादी विचारधारा की प्रेरणा रूप में उपयुक्त हीगल, फायरबाख और हाल की ही त्रयशा द्वन्द्वात्मक पद्धति, भौतिकवाद और वर्ग संघर्ष की विचारधाराओं को ग्रहण किया है। उन्होंने सृष्टि के विकास में निहित श्रृणात्मक और धनात्मक दो प्रकार के विरोधी तत्त्वों की सत्ता मानी है। इनके संघर्ष का नाम ही उसका अनुसार जीवन है। इन विरोधी पदार्थों के द्वन्द्व से चेतना उत्पन्न होती है। जो जीवन का आधेय है। हम कह चुके हैं कि मार्क्स पदार्थ को ही सर्वोच्च वस्तु मानता है। उससे इतर वस्तु या निरपेक्ष ब्रह्म की सत्ता का खण्डन करता है। उससे

अनुसार चेतना को विराधी पदार्थों के द्वन्द्व का प्रतिफलन है। इस कारण ही उसका दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है।

जिम प्रकार माक्स ससार का मूल तत्त्व पन्था ( मटर ) मानते हैं उसी प्रकार समाज व्यवस्था का मूलाधार वे आर्थिक व्यवस्था कहते हैं। उनका अनुसार जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की उत्पादन शक्ति का विकास के अनुरूप समाज के भक्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित होता है। उत्पादन का संगठन का आधार पर ही समाज का सम्पूर्ण आर्थिक ढांचा तयार होता है जिस पर मनुष्य की समस्त कार्य प्रणालियाँ राजनीति धर्मनीति और साहित्य आश्रित हैं। इस विचार-प्रणाली का अनुसार मार्क्सवादी इतिहास की अथमूलक व्याख्या करते हैं।

माक्स के अनुसार समाज में आजकल विषमता का कारण अब का असमान रूप से वितरण और जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन पर कुछ पूँजीपतियों का स्वामित्व है। समाज का यही संगठन दुःख क्लेश और विषमता का जनक है। इसने समाज को दो भागों में विभक्त कर दिया है—गोपक और श्रापित। इन दोनों में बग-सघप प्रारम्भ है। यह बग सघप तभी शांत होगा जबकि समाज में आर्थिक व्यवस्था सामाजिक ढंग की हो। यह तभी सम्भव है जबकि पूँजीवाद को समाप्त करके श्रमिकों किसानों के हाथों में उत्पादन शक्तियाँ कल कारखाने आय और उन्हें उनके श्रम का यथोचित लाभ और मूल्य मिले। यह कार्य केवल श्रापित का माध्यम सही सम्भव है। यह श्रापित भी तभी प्रारम्भ होगी जब बग सघप अपने चरम रूप को पहुँचे और यह कार्य तभी होगा जब समाज में बग चेतना का जगति का कार्य जोरो से किया जाय। इस प्रकार पूँजीवाद और श्रापका का विरोध शोषिता के प्रति सहानुभूति, उनकी गुण गाथा बग सघप की भावना श्रापित की दुर्लभ आवाज आदि का नारा लगाना मार्क्सवाद के प्रमुख सूत्र बन और इन्हें इसी रूप में साहित्य में भी अवतरित किया जाने लगा।

हम कह चुके हैं कि यह एक भौतिकवादी जावन दर्शन है। उसके अनुयायियों के लिए भौतिक जगत ही एक मात्र सत्य है। आध्यात्मिक विकास ईश्वर की सत्ता उपासना आदि पर इन्हें कोई आस्था नहीं। भौतिक जीवन का उपभाग ही इन्हें इष्ट है। किसी स्वप्निल सुख या काल्पनिक राक में सुख और आदर्शों की प्राप्ति के लिए भटकना ये निरर्थक और पलायन की प्रक्रिया समझते हैं। अब इनके लिए प्रस्थान और गन्तव्य दोनों हैं। वह समाज की सब विषमताओं का जनक है अतएव उसके समान वितरण पर नियन्त्रण रखना इनका राजनीतिक नारा है। इस प्रकार माक्स ने विशुद्ध भौतिक ससार की विषमताओं से परिपूर्ण जमीन पर खड होकर उसकी विसंगतियों में सामरस्य लाने के लिए मानव-मानव के बीच का अंतर पाटकर बग

हान समाज की स्थापना करने के लिए अपनी विचार धारा को प्रस्तुत किया । मार्क्स के पूव सफ़ेदी दाशनिक हा गये हैं पर किमी ने इतना शक्ति के साथ समाज की विषमता का मूल कारण अथ के अममान वितरण को नही बताया और न उसे अप सारण करन की ऐसी किसा विधि का ही उल्लेख किया । मार्क्स के समान किसी दाशनिक ने अपने दाशनिक मिद्धात की पुष्टि समाज क ऐतिहासिक विकास के स दम मे भी प्रस्तुत नही की ।

### ऐतिहासिक भौतिकवाद

मार्क्स के अनुसार मनुष्य अपनी आदिम अवस्था मे साम्यवादी ही था । उस समय वह कबीलो या झुण्डा म रहना था और भोजन-शिकारादि की तलास मे एक साथ यहाँ वहाँ घूमा करता था । इस समय किसी की कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी । जो वस्तुयें इनके पास थी उन पर सबका समान अधिकार था । धीरे-धीरे कबीलो के जीवन मे स्थायित्व आया और व खेती का काम करने लगे । खेतों पर शन शन व्यक्ति विशेष का अधिकार माना जान लगा । यह अधिकार भावना कुछ समय के पश्चात व्यक्ति व्यक्ति और कबीलो कबीलो के बीच सघष का कारण बनी जिसका अन्त परस्पर युद्धो म हुआ । युद्धो मे पराजित व्यक्ति दास के रूप म रखे गये और उनसे खेतों तथा अन्य गह कार्यों को लिया जाने लगा । पहले ये दास भी सामाजिक सम्पत्ति माने जाते थे पर बाद म ये भी व्यक्तिगत हा गय । कबीलो मे सशक्त व्यक्ति मुखिया होता था । धीरे धीरे बलिष्ठ व्यक्ति अन्य कबीलो पर अपन अधिकार क्षेत्र को व्यापक करके उनका नेता बनन लग जो बाद म राजा के रूप म हमार सामन आये और इस प्रकार कई कबीलो को मिलाकर राज्य बन । राज्यों के बा साम्राज्य बने । इसके विस्तार के लिए भी निरन्तर युद्ध हात रहे और इस प्रकार आदिम अवस्था का साम्यवादी समाज दो भागो मे—शामक और शासित म विभक्त हो गया । अनेक शताब्दियो तक यही व्यवस्था चलती रही । राजा के पास धन संग्रह होता गया । धीरे धीरे धनी व्यक्ति व्यापार और उद्योग की ओर अग्रसर हुए । इस काय से उनके पास और धन एकत्र हुआ और शासक वर्ग म व्यापारियो का यश और प्रभुत्व बढा । व्यापार के द्वारा और अधिक व्यक्तियो का शापण किया जाने लगा और कम से कम मजदूरी देकर श्रमिको से अधिक से अधिक काम लिया जान लगा । इस प्रकार जो निधन थे वे और अधिक निधन हुए और जो अमीर थे उनके पास और अधिक धन संग्रह हो गया । अथ के अमम न वितरण न अनक समस्याओ को जम दिया । धीरे धीरे धनी धनी और राज्य राज्य के बीच सघष प्रारम्भ हुए । धनी से और अधिक धनी होन की हाड मे संकडा युद्ध हुए । अयायो और भ्रष्टाचारो का प्रवर्तन हुआ । रहने सुनने के लिए तो लोगो ने 'दास प्रथा' समाप्त कर दी पर वह बन्द न होकर

प्रच्छन्न रूप से और अधिक बढ गई। मार्क्स की दृष्टि से समाज के अतस्तल में निहित यह विषमता एक मात्र अथ के असमान वितरण से प्रारम्भ हुई और उसके सुधार के लिए अब एक मात्र वगवादी विचारधारा का प्रचार तथा क्रांति ही आवश्यक है। इस प्रकार पूँजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप मार्क्सवाद का जन्म हुआ।

पूँजीवाद के विप से विश्व का समस्त श्रमिक वग अभिभूत था। अतएव थोड़े ही समय में मार्क्स की उपयुक्त विचारधारा का प्रभाव विश्व भर में फैल गया। १९१७ में रूसी साम्यवादियों ने जारशाही के सिंहासन को उलटकर के साम्यवादी पणतंत्र की स्थापना की। पूर्वी योरोप के अधिकांश देशों में भी धीरे धीरे साम्यवादी राज्य स्थापित हुए। कहा जा चुका है कि अनुकूल परिस्थितियों के अनुरूप भारत में भी १९२७ में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई जो रूस के सकेतो पर अपना कार्य करती थी।

### समाजवाद और कम्युनिज्म

कम्युनिस्ट शब्द कम्युनिज्म से मन्वद्धित है। यह मार्क्स के पहले से प्रचलित था पर एक विशिष्ट राजनीतिक सस्था का स्वरूप दते हुए १८४७ में मार्क्स तथा ऐंजिल्स ने 'कम्युनिस्ट लीग' की स्थापना की थी। १८४८ में इसका मेनिफेस्टो प्रकाशित हुआ था जिसमें ऐंजिल्स का कथन था कि 'कम्युनिज्म सबहारा वग (प्रोलेटेरिएट) की मुक्ति का माग बतलाने वाला सिद्धांत है। एमाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में कम्युनिज्म शब्द की जो व्याख्या की गई है वह इस प्रकार है 'कम्युनिज्म समाजवाद (सोसलिज्म) के ही अंतगत एक विशिष्ट आंदोलन है जिसका लक्ष्य भी वही है उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत स्वामित्व हटाकर एकाधिपत्य का उन्मूलन। कम्युनिज्म की अपनी विशेषता इस बात में है कि इसके अनुसार इस उद्देश्य की पूर्ति का एक मात्र साधन क्रांति है। समाजवाद क्रांति को ऐतिहासिक और सामाजिक सबरोधों को दूर करने के लिए अन्तिम उपाय के रूप में अस्वीकार नहीं करता पर कम्युनिज्म क्रांति को अनिवार्य समझना और धुले आतक पर आधारित सबहारा वग की तानाशाही को ही समाजवादी आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का साधन मानता है।' इस अवतरण में समाजवाद तथा कम्युनिज्म का पार्यक्य भी स्पष्ट हो जाता है।

इसी संदर्भ में हम यह भी देख लें कि मार्क्स और ऐंजिल्स ने अपने आपको समाजवादी न कहकर कम्युनिस्ट क्यों कहा है? इसका स्पष्टीकरण मेनिफेस्टो के संस्करण में किया है जिसे देखने पर हम सहज ही यह जान लेंगे कि प्रारम्भ से ही कम्युनिस्ट लोग की क्या रीति-नीति रही है। ऐंजिल्स ने लिखा है कि 'सन १८४७ में समाजवादी साधारणतः एक ओर तो काल्पनिक व्यवस्थाओं (यूरोपियन सिस्टम)

मे चिपके रहने वाले व्यक्ति संमझे जाते थे और दूसरी ओर सुधारक जो पूजी मुनाफे को कोई खतरा पहुँचाये बिना तरह-तरह से सभी सामाजिक अत्यायों को दूर करने की बात कहते थे। ये दोनों तरह के लोग श्रमिक वर्ग के आंदोलन से दूर रहने वाले और सहायता के लिए शिक्षित वर्ग का मुँह जोड़ने वाले थे। इनके विपरीत श्रमिक वर्ग का जो भी अंश केवल राजनीतिक क्रांतियों की निस्सारता से भली भाँति अवगत हो गया था और जिसने आमूल सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता घोषित की वह अपने को कम्युनिस्ट कहने लगे। हमारा विचार आरम्भ से यह था कि श्रमिक वर्ग के उद्धार का काय निश्चित रूप से स्वयं श्रमिक वर्ग का ही होना चाहिए अतः इन दोनों में से हम कौन सा नाम ग्रहण करें, इस विषय में हमारे लिए कोई असमंजस नहीं रहा।<sup>१</sup>

### प्रगतिवाद और फ्रायडवाद

प्रगतिवाद पर जो बाह्य प्रभाव पड़े उनमें कम्युनिज्म के अतिरिक्त ईषत भावा में फ्रायड के अतश्चेतनावेद का भी नाम लिया जाता है। हिन्दी में यशपाल अज्ञय, जनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी आदि ने यह तथ्य स्वीकार किया है। यशपाल तो हिन्दी के सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी लेखक हैं। 'मार्क्सवाद' शीर्षक अपनी कृति में आपने एक स्थल पर लिखा है कि 'स्त्री पुरुष और विवाह के सम्बन्ध में मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतंत्रता देता है परन्तु उच्छ्वलता और गड़बड़ या भाग को पशा बना लेने को और उनके साथ अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियों और समाज की जीवन-व्यवस्था में अडचन डालने को यह धमकर अपराध समझता है। आपने इस कथन का समर्थन लेनिन के शब्दों द्वारा किया है कि 'तु जो लेनिन के वास्तविक शब्द हैं उन्हें विवृत करके ही उद्धृत किया गया है और एक तरह से अतश्चेतनावेद तथा मार्क्सवाद का आवश्यक सम्बन्ध निरूपित किया गया है। सत्य इसके विपरीत है। यशपाल जी ने धामे लिखा है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में मार्क्सवाद का रुख लेनिन की एक बात से स्पष्ट हो जाता है। लेनिन ने कहा था कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध शरीर की दूसरी आवश्यकताओं भूख, प्यास, नींद की तरह ही आवश्यक है। इसमें मनुष्य को स्वतंत्रता होनी चाहिए परन्तु प्यास लगने पर शहर की गली नाली में भूह डालकर पानी पीना नहीं है। उचित है स्वच्छ गिलास से स्वच्छ से स्वच्छ जल पीना।'

स्वच्छ गिलास के इस सिद्धान्त द्वारा तपति की बात का खण्डन डा० राम विलास शर्मा ने बड़ी ही ममता पूर्वक किया है। उन्होंने वक्तव्यों भी उद्धृत की हैं जहाँ इस प्रकार की चर्चा की गई है। लेनिन का कथन है कि चीन जावन में साधारण कुदरत का ही छाल नष्ट करना होता बल्कि सांस्कृतिक विधोपताओं पर भी विचार किया जाता है कि वे ऊँच या नीचे स्तर की हैं। निस्संदेह प्यास बुझानी



चाहिए लेकिन उसका सामाजिक पहलू सबसे महत्वपूर्ण है । पानी पीना बशक किसी का निजा काम है लेकिन प्रेम म दो जिन्दगियों का सम्बन्ध होता है और एक तीमरी नयी जिन्दगी पदा होती है । इससे उसम सामाजिकता का सवाल उठना है जिससे समाज के प्रति कस्यय पदा होता है ।'

डा० शर्मा यह भी लिखत है कि 'एक कम्युनिस्ट की हैसियत से मुझे पानी के गिलास की ध्योरी स जरा भी हमदर्दी नही है, हालाकि उस पर 'प्रेम की तपति' का सुन्दर लेविल लगा हुआ है । कुछ भी हो प्रेम की यह मुक्ति न तो नयी है न कम्युनिस्टिक है । ( प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें )

लेनिन आप कम्युनिम के सस्यापकों म स एक वरिष्ठ विद्वान और निष्ठावान हैं अतएव इस सम्बन्ध म हम आपने उपयुक्त कथन के आधार पर ही मार्क्सवाद के साथ यौन भावनाओं का सम्बन्ध सामाजिकता के निरूपण पर देखना होगा । 'प्रेम की तपति' ही स्त्री पुरुष के समागम द्वारा अलम नही प्रस्युत यह एक समाज से सम्बन्धन वस्तु है वह भावात्मन नही बौद्धिक जगत की वस्तु है । स्वच्छ रूप से 'पानी पीने' का सिद्धांत समाज विरोधी और गर मार्क्सवादी है ।

इसी तथ्य का उदघाटन डा० रामविलास शर्मा न अपनी 'प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें' शीषक पुस्तक म विस्तार के साथ किया है । डा० शर्मा प्रगतिवाद के अधिकारी विवचन और समीक्षक हैं अनएव उनका कथन भी दस सदम म देख लेना अप्रासागिक न होगा । उनके अनुसार प्रगतिशील साहित्य नारी की स्वाधीनता का पक्षपाती है । वह सम्पत्ति जाति और धम के विचार से किए हुए विवाह की बदी पर दश के युवक युवतिया के प्रेम की बलि देने का बडा विरोधी है । वह उनके प्रेम करने के अधिकार और जीवन म एक साथ रहने और सपप करने क अधिकार का समर्थन करता है । जब तक प्रेम के अतिरिक्त विवाह के लिए जाति धम सम्प्रदाय, सम्पत्ति आदि की शते रहंगी, तब तक समाज म र्थाभचार, बश्यावत्ति आदि व्याधिया भी रहंगी । लेकिन ये याधिया शुद्ध र्वास से शुद्ध जल पीने की ध्योरी से दूर नही हो सकती । यह मार्क्सवाद क विपरीत सामती पूजीवादी नतिकता का प्रतिपादन होगा ।

इस प्रकार शमा जी न प्रेम विवाह, शुद्ध ग्लास से शुद्ध जल पीने आदि की वस्तु को भी आर्थिक भूमिका पर रखकर देखा है । ये फ्रायडवाद के अनुसार मनुष्य की अतुप्त तपति स सबधित बयत्तिक वस्तुयें नही हैं । जब तक पूजीवाद सामतवाद रहेगा, तब तक समाज स र्थाभचार, बश्यावत्ति आदि की याधिया समाप्त नही होने की और इस प्रकार नारी और पुरुष के सम्बन्ध म प्राप्त अधिकार और अधिकारी की यह विपमता समाप्त नही हा सकती । पुरुष के समान नारी को भी प्रकृति क सारे वरदान मिले हैं । वह भी मानवी है । समाज मे जीवन क सारे कार्यों म समान रूप

स भाग लेने का उस पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए पुरुष उस बंधन में रहे, धर्म, सम्प्रदाय, जाति या अर्थ या आधार बनाकर उसके साथ दुष्यवहार न करे। इंग्लिश प्रगतिवादी थ्रिंके के साथ-साथ नारी बग की स्वतन्त्रता का भा उदघोष तीव्रता व साथ करते हैं। नारी स्त्रात व्य सम्बन्धी विचारधारा का प्रतिपादन पत जी न अपनी प्रगतिशील रचनाओं में प्रमुपता व साथ किया है।

इस प्रकार मार्कमवाद जनवादी विचारधारा का प्रयत्न है, फ्रायडवाद व्यक्तिक काम भावनाओं की संतुष्टि तक सीमित एक व्यक्तिवादी विचारधारा है। विषय की स्पष्टता के नियम इस अन्तर का हम विचित विस्तार से देखना होगा। मार्कमवाद के समान फ्रायडवाद भी श्रौतिकवादी विचारधारा है। जिस प्रकार मार्कमवाद व अनुसार पदाथ (मेटर) एकमेव सत्य है, उसी प्रकार फ्रायडवाद व अनुसार काम भावना (सिक्टो) मानव जगत की केन्द्रीय वस्तु है। पदाथ ही जिस प्रकार सपथ द्वारा चेतन बनकर गतिशील होता है तदवत् काम भावना या यौन भावनायें ही मानवीय जीवन का संचालन करती हैं। ये यौन भावनायें व वस्तुयें हैं, जि हैं व्यक्ति अपने सासारिक जीवन में धर्म जाति सम्प्रदाय आदि का य व कारण तुण नहीं कर पाता और वे प्रथियों के रूप में उसके अयचनन में समाविष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार यौनवाद अन्तश्चेतनावान पर आधारित है जिसमें कुण्डला अतुष्टि का अतिरक है किन्तु मार्कमवाद व्यक्ति से नहीं समाज के अभ्युदय जन करथाण की भावना से सम्बन्धित वस्तु है। इस यदि हम चानावाद कहता फ्रायडवाद का अयचतनावद कह सकते हैं। मार्कमवाद का रण मन्त्र विज्ञान मानव समूह तथा उसमें व्याप्त विषमताओं का अपसारण करना है। यौनवादा व्यक्ति व मानस में व्याप्त कण्डाओं की तृप्ति से सम्बन्धित है। अतुष्ट वासनाओं की तृप्ति जिसका प्रमुख काय है। इसमें व्यक्ति के जीवन में व्याप्त अतुष्टि को मिटाने का भी प्रयत्न नहीं प्रयुक्त उसकी कला, कृतिव आदि का मून में व्याप्त कुण्डला का दखन समझने और उनका स्पष्टीकरण करने का काय निहित है। प्रगतिवाद जहाँ प्राचीन कला और मरुति व अभ्युदय सूचक वस्तुओं का पूजावाद तथा सामन्तवाद का प्रतिमान कह करके उह नष्ट भ्रष्ट करने की बात करता है वहाँ यौनवाद व अनुसार समस्त कलायें और सांस्कृतिक अभ्युदय के उपादानों में कलाकारों और समाज की अतुष्ट काम वासनाओं का प्रच्छन्न प्रकाशन हुआ है। फ्रायडवाद व अनुसार व्यक्ति स्वप्न के द्वारा भी अपनी अतुष्ट कुण्डाओं को तृप्त करता है। काव्य कला और अय लनित कलायें भी उसकी अतुष्ट कुण्डाओं का मुखरित वाणी हैं। फ्रायडवाद के अनुसार व्यक्ति अपनी अवचेतन मन में दमित काम भावनाओं की प्रथिया स्वरूप ही, उह विरेचन करने के हतु कलाओं का सहारा लेता है। यह प्रतिक्रिया मार्कमवाद में भी है वहाँ पर पूजावाद और सामन्तवाद की प्रतिक्रियास्वरूप अपसर होते हैं और उहू।

के लिए वगवादी चेतना का प्रसार करत है । इस प्रकार प्रतिक्रियायें दोनों में हैं किन्तु फ्रायडवाद में जहाँ केवल विश्लेषण है वहीं प्रगतिवाद में विश्लेषण से आगे चलकर नये समाज की रूपरेखा का साकारता प्रदान करने के भी प्रयास हैं । फ्रायडवाद एक अभावपूर्ण विचारधारा है किन्तु मार्क्सवाद विधायक । प्रथम के समक्ष जन कल्याण की कोई भी भावना नहीं है पर दूसरा जन कल्याण को अपना लक्ष्य बनाकर चलता है । फ्रायडवाद दमित काम वासनाओं की चर्चा से आरम्भ होता है और उनका विश्लेषण करके समाप्त होता है, हर काम के पीछे उसे एक मात्र दमित कुण्ठाएँ ही दिखाई देती हैं और एक प्रकार से वह दमित कुण्ठावाद बन जाता है । हिंदी में अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, जनार्दन आदि इसे अपनाकर चले हैं और प्रयोगवाद तथा नयी कविता की यह एक मूल चेतना रही है किन्तु यह वस्तु मार्क्सवाद के सिद्धान्त के विरुद्ध है अतएव प्रगतिवादी साहित्य में यह सिद्धान्त न आकरके केवल यथा यवादी शैली के रूप में दिखाई देता है । कुछ कवियाँ तथा लेखकों ने स्त्रियों के मासल सौन्दर्य को नग्न रूप में चित्रित किया है पर यह काम प्रगतिवादी निष्ठा को ज्ञापित न करके कवि या कलाकार की अतप्त कुण्ठा को ही यक्त करता है । प्रगतिवादी काव्य में इस तरह अश्लीलता वस्तुगत रूप में न आकर यथायवादी शैली के रूप में प्रवेश पा सका है ।

### मार्क्सवाद और त्रात्स्कीवाद

मार्क्सवादी साहित्य पर त्रात्स्कीवाद का भी प्रभाव माना गया है । त्रात्स्की रूस के एक सुप्रसिद्ध साहित्यिक नेता हैं । अन्य और यशपाल न उनकी अनेक स्थानों पर प्रशंसा की है । ये दोनों त्रात्स्की से बहुत दूर तक प्रभावित भी हैं किन्तु त्रात्स्कीवाद एक वामपक्षीवाद है । उसकी वस्तु याजना पूर्णतः प्रतिक्रियावादी होत हुए भी उसमें मार्क्सवाद के मौलिक उपादानों का विरोध और अभाव है । मार्क्सवादी क्रांति को अपना अन्तिम शस्त्र समझत हैं किन्तु त्रात्स्की को क्रांति पर विश्वास नहीं था अतएव उसका साहित्य पाठकों के हृदय में क्रांति की कोई भावना प्रज्वलित नहीं करता । वह वग-चेतना की उत्पत्ति में सहयोग भी नहीं देता । डा० रामविलास शर्मा जी ने त्रात्स्कीवाद का वामपक्षी भाषा में श्रेष्ठचिन्ती के स्वप्न कहा है । इस विषय का स्पष्ट करत हुये और प्रगतिवादी निष्ठा की दृढ़ता का उघोषित करत हुये उन्होंने आगे लिखा है कि ' जो लेखक पूजावादी व्यवस्था से लोहा लेने लगे हैं और शोषण व्यापार घटम करके समाजवाद लाना चाहत हैं अगर वे साहित्य की तरफ अराजनकता और सिद्धान्त हीन दृष्टिकोण अपनाते हैं, यानी अपना कर्ना पर राज नीतिक सिद्धान्तों का अकुश नहीं मानते तो वे शुद्ध प्रतिक्रियावादी की हिमायत नहीं करते तो और क्या करते हैं ? '

## रूसी मार्क्सवादी साहित्य

हिन्दी प्रगतिवाद पर मार्क्स की विचारधारा के अतिरिक्त रूसी मार्क्सवादी साहित्य का भी प्रभाव पड़ा है। जनएक सरोप में उनकी चर्चा करना यहाँ आवश्यक है। इस चर्चा से यह भी स्पष्ट हो जायगा कि विदेशी मार्क्सवादी साहित्य की क्या विशेषताएँ रही हैं और हिन्दी प्रगतिवाद उन्में क्या समता विषमता रखता है ?

रूसी क्रान्ति के पूर्व रूस में दो प्रकार के कवि थे—भविष्यदवादी और विन्धवादी। (फ्यूचरिस्ट और इम्जिस्ट)। इनमें से विन्धवादी तो अपने यत्तिदेचिह्नवाद के कारण अल्पायी रह। प्रगति के पश्चात् भविष्यदवादी कवियों का भी कोई आवश्यकता नहीं रह गई, क्योंकि अब काव्य साहित्य में सुनियोजित रूप से मार्क्सवादी विचारधारा को प्रस्तुत किया जाना लगा था। सत्तावाद पार्टी के द्वारा लेखकों तथा कवियों से यह आग्रह किया गया कि वे पार्टी के सिद्धांतों का प्रचार कर राज्य की योजनाओं को मफल बनायें। अर्थात् साहित्य को प्रचारात्मक रूप में प्रथम दिया गया। एक रूसी कवि वोजीमेत्सी ने कहा है कि पहले मैं मार्क्सवादी हूँ और फिर और कुछ।

I carry my membership card not in my pocket but in myself  
—Bezymensky

मायाकी स्कोप्स वल के एक सुप्रसिद्ध कवि हैं। उनकी एक कविता का ह्रस्ट माशन ने अग्रजी में अनुवाद किया है जिसका कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं—

I

Hurl myself into communism

From the heights of Poetry above

because without it

for me

7  
A

There is no love

I am a Soviet Factory

manufacturing happiness

अर्थात् मैं काव्य की उदात्त भूमिका से कम्युनिज्म के बावजूद पड़ा हूँ क्योंकि उससे अतिरिक्त मुझे अत्यंत प्रेम-भावना नहीं प्राप्त होती। मैं सोवियत के लिये सुख उत्पादन करने वाला कारखाना हूँ। मायाकी स्कोपस वल समान इस युग के सभी कवि का ये वाक्य धारणत छोटकर कम्युनिज्म की राजनीतिक विचारधारा को अपनाकर उसका प्रचार-प्रसार अपनी रचनाओं के माध्यम से करने लगेंगे।

इसका फल यह हुआ कि सोवियत देश का साहित्य अत्यन्त वस्तुआ के समान योजनाबद्ध हो गया और उसका विकास स्वतंत्र ढंग से न हाकर कृत्रिमता के साथ प्रचारात्मक और उपयोगी कला के रूप में हुआ। इस विषय में ग्लेब स्ट्रुव का निम्न कथन प्रमाण प्रस्तुत किया जा रहा है—

Literature in Soviet Russia like everything else is planned  
It is artificially reared and looked after it cannot develop free and  
untrammelled —Soviet Russian Literature By Gleb Struv

यहाँ यदि काडवेल की चर्चा न की गई तो यह वक्तव्य अधूरा रह जायगा। काडवेल ऐसे प्रथम साहित्यिक समीक्षक हैं जिन्होंने मार्क्सवादी समीक्षा पद्धति को जन्म देकर साहित्य का नया मापदण्ड निर्धारित किया। आप अग्रज थे। वास्तविक नाम Sprigg था। आप स्पेन के गृहयुद्ध में १९३७ में मारे गये। अपने इल्यूजन एण्ड रिमल्टी नामक ग्रन्थ में आपने ऐतिहासिक भौतिकवाद का आधार ग्रहण करके काव्य के उदभव और विकास का समीक्षा की है तथा उसका आधार बौद्धिक राष्ट्रीय, जातीय आदि न मानकर आर्थिक माना है—

Poetry is regarded then not as something racial national  
genetic or specific in its essence but as something economic

—Illusion and Reality P 7

काडवेल यह भी कहते हैं कि यह समय की मांग है कि कलाकार को कला के क्षेत्र में शोषितों का नेता होना चाहिए—

It is a demand that you an artist become a proletarian  
leader in the field of art —Illusion and Reality

## (इ) हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य

इस प्रकार हिन्दी में जब प्रगतिवाद का आंदोलन प्रारम्भ हुआ उस समय तक पाश्चात्य जगत में केवल काव्य में वरन् समीक्षात्मक मापदण्ड के रूप में भी मार्क्सवाद का समावेश हो चुका था। हिन्दी के तरुण प्रगतिवादी लेखकों ने उसे पढ़ा और उनसे प्रेरणायें ग्रहण करके अपनी काव्य रचनायें प्रस्तुत कीं। हम कह चुके हैं कि इस समय देश की परिस्थितियाँ प्रगतिवादी विचारधारा के विकास के अनुकूल थीं, अतएव हिन्दी में प्रगतिवाद के नाम से एक विशाल आन्दोलन ही चल पड़ा। इस समय न केवल काव्य वरन् साहित्य की सभी विधाओं में मार्क्सवादी विचारधारा का समावेश हुआ।

✓ इस युग के प्रगतिवादी कविषु म नागाजु न, रामेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, त्रिनकर, त्रिलोचनशास्त्री, राम विलास शर्मा, शिवमगल सिंह सुमन, भारत भूषण अग्रवाल शमशेर बहादुर सिंह, केदार नाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा आदि के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रगतिवादी कथाकारों म राहुल साहूत्यायन, निराला, रामेय राघव, यश पान कृष्ण चन्द्र अमृत लाल नागर, नागाजु न आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। समीक्षक और निबंधकारों म डा० रामविलास शर्मा, यशपान शिवदान सिंह चौहान, प्रकाश चन्द्र चन्द्रवनी सिंह डा० नामवर सिंह आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

कवियों की सूची म मैंने श्री पत और निराला का नाम नहीं जोड़ा है। हम कह चुके हैं कि पत जी प्रगतिवादी कवियों क पुरोधा रहे हैं। इसी प्रकार निराला जी न भा इस प्राप्ति यन म अपना महत्वपूर्ण अर्घ्य दान दिया है। किन्तु समसामयिक प्रगतिवादी धारा के य छायावादी कवि प्रातिपयिक रहे हैं, उसके अनुकूल इन्होंने अपने को ढाला पर अपनी निष्ठाआ और मूल दार्शनिक चेतना का नहीं बदल सके अतएव प्रगतिवादी गान गाकर भी य उससे कुछ विशिष्ट हैं। उनके व्यक्तित्व और कृत्तित्व का द्योतन कराने के लिए प्रगतिवादी शब्द छोटा पड़ता है। य कवि मार्क्सवाद की आधिक भूमिका पर न खड होकर—भारतीय आध्यात्मिक चतुफलो की भूमिकाओ पर खड हैं अथ उनके लिए सबस्व नहीं जीवन का एक हिस्सा है अथ वे आगे चलकर क ये मानवीय धम, काम और मोक्ष तक की लम्बी यात्राएं भी करते हैं जबकि प्रगतिवादी अथ की सीमा से बाहर निकलना गुनाह मानत है क्योंकि ऐसा मार्क्स का कहना है। उनका कहना आप्त वास्तव है। पार्टी के सिद्धान्त—कवियों को यथावत न मानना या कला पर राजनीतिक सिद्धान्तों का अकुश स्वीकार न करना शुद्ध प्रतिज्ञियावाद है मार्क्सवाद क प्रति विद्रोह है जो मार्क्सवादियों को सह्य नहीं।

पत जी अपनी रचनाआ म मार्क्सवाद या ऐतिहासिक भौतिकवाद को प्रथम देत हैं और मार्क्स का भी गुणगान करत हैं—

धन्य मार्क्स चिर तमच्छत्र पथ्वी के उदय शिखर पर  
तुम त्रिनत्र के ज्ञान चम्पु से प्रकट हुए प्रलयकर ॥

किन्तु बाद म वे स्वयं भौतिकवाद या मार्क्सवाद के साथ भारतीय आध्यात्मिक कता के समावेश करने का प्रयत्न करत हैं। इस सम्बन्ध म आपका ही कथन है कि ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय दशन मे मुने किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पडा क्योंकि मैंने दोनों का लाकोत्तर कल्याणकारों पक्ष ही ग्रहण किया है। मार्क्सवाद के अदर श्रम-कवियों के संगठन वग-संघप रखन वाले बाह्य दृश्य को जिसका वास्तविक निणय आधिक और राजनीतिक प्रातिर्या ही कर सकती हैं, मैंने

अपनी कल्पना का अग नहा बनने दिया है।' इस दृष्टि से हम पत जी को अद्वैतमाकम वादी ही कह सकते हैं। उ हाने माक्सवाद का केवल विधायक पक्ष ही ग्रहण किया है उसके विध्वंसक पक्ष के वे समर्थक और गहीता नहीं रह हैं। पत जी भी यत्र तत्र क्रांति की चर्चा करते हैं और प्रतीक-रूप में पावन कणा की दृष्टि की आवाशा करते हैं फिर भी उनकी क्रांति का अर्थ पूंजीवाद और साम तवात् को ही केवल नष्ट भ्रष्ट करना नहीं है। उनकी क्रांति समाजवादी समाज या गाँधी दशन के रामराज्य की स्थापना से सम्बन्धित है।

निराला का बादल राग भी क्रांति का विप्लवकारी राग है किन्तु उन्हें भी प्रगतिवादी नहीं कहा जा सकता। व्यंग्य और हास्य से सम्बन्धित उनकी अनक रचनायें हैं जो कुकुरमुत्ता' बला और नये पत्ते में संकलित हैं। इन रचनाओं में उन्होंने पत जी की ग्राम्या की ही भांति श्रमिक-मजदूर वर्ग के प्रति सहानुभूति, पूंजीपतियों की नश्वरता ग्राम्य जीवन का चित्रण आदि से सम्बन्धित वस्तुओं को अपना प्रतिपाद्य बनाया है किन्तु इनकी ये रचनायें युगवाणी की तरह प्रगतिवादी नहीं हैं। इनमें प्रगति-चिन्ता हास्य व्यंग्य का अग बनकर शली रूप में अवतरित हुई है। विषय-वस्तु राजनीतिक प्रचारात्मक और सिद्धा तनिष्ठ न होकर कायात्मक संवेदना से युक्त मानवीय एवं सांस्कृतिक है। का प की उदात्त भूमिका से ये दोनों ही महाकवि अपनी आँखें मूँदकर भाषावा स्त्री की भांति कम्यूनिज्म के क्षत्र में बूँदे नहीं हैं वरन इन्होंने युग की वाणी का साथ दते हुए भी अपनी परम्परा और कवि-व्यक्तित्व की पूरी पूरी रक्षा की है। ये प्रगतिवादी हाकर भी उसकी सीमा से अवर हैं। कुकुरमुत्ता में ता निराला जी प्रयोगवादी और प्रगतिशील लेखकों पर बरारा व्यंग्य भी करते हैं। वे विघ्नत हैं—

कही का रोडा कही का (लिया) पत्थर  
टी० एम० एलीयट ने जैसे दे मारा  
पत्ने वाला ने जिगर पर हाथ रखकर  
कहा कसा लिख दिया ससार सारा  
देखने के लिए आँखें दबाकर  
जैसे सध्या को विमी ने देखा तारा  
जस प्रीयसीव की लेखनी लेत  
नहीं रोने रुकता जोश का पारा।

### प्रगतिवादी काव्य की विशेषतायें

#### [१] माक्सवाद का साहित्यिक संस्करण

प्रमुखतः प्रगतिवादी काव्य, माक्सवाद की राजनीति विचारधारा का साहि

व्यक्त संस्करण है किंतु कवि राजनीति की एक विचारधारा से सना अनुबन्धित नहीं रहते, ऐसा होना उनके व्यक्तित्व और स्वतन्त्र चिंतन की पराजय होगी अतएव हिंदी में प्रगतिवाद के नाम से कई प्रकार की रचनाएँ हमारे सामने जाती हैं। सुविधा की दृष्टि से इन्हें हम चार प्रमुख भागों में विभक्त करके देख सकते हैं—

प्रथम वे रचनाएँ हैं जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता से सम्बन्धित हात हुए सामाजिक विषयों को चित्रित करती हैं। इस श्रेणी में स्मिटर का नाम हम ले सकते हैं। आपकी रचनाओं में राष्ट्र प्रेम के उद्गार, स्वतंत्रता की पुकार, अतीत गौरव और वर्तमान युग की दुरवस्था का चित्रण, देश की स्वतंत्रता तथा विषमता को मिटा देने आह्वान और उदबोधन राष्ट्र नायकों की प्रशंसा तथा गरीबों, श्रमिकों, मजदूरों की विपदावस्था और सेठा-साहूकारों की निमग्नता का जापान किया गया है।

द्वितीय प्रकार की वे रचनाएँ हैं जो मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद का तो ममथन करती हैं किंतु उनमें कम्युनिस्ट पार्टी के बंधनों को पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है। परंतु जो इसी श्रेणी के प्रगतिवादी कवि हैं।

तृतीय प्रकार की वे रचनाएँ हैं जो न तो मार्क्स के सिद्धांतों का अनुवर्तन करती हैं और न पार्टी के अनुबंधों का निवाह किन्तु यथायथा शक्ती अपनाकर श्रमिक या सबहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट की हैं। द्वितीय प्रकार की रचनाओं में जहाँ मार्क्सवाद विचारधारा का बंधन ईष्यतः मात्रा में है और वस्तु सम्बन्धी उपकरण प्रचुर मात्रा में हैं वहाँ इन रचनाओं में बौद्धिकता का अंश तिरोहित हो गया है। वस्तु सम्बन्धी उपकरण प्रथम प्रकार की रचनाओं में भी मिलते हैं किन्तु वहाँ राष्ट्रीय स्वातंत्र्य भावना अतिरिक्त रूप में विद्यमान है जिसका इन तृतीय और द्वितीय प्रकार की रचनाओं में लगभग अभाव है। इस श्रेणी में निराला जी के प्रगतिशील प्रगीतों का रखा जायगा।

चतुर्थ प्रकार की वे प्रगतिवादी रचनाएँ हैं जहाँ मार्क्सवाद के सिद्धांत वाक्य और पार्टी के बंधन—दोनों को स्वीकार किया गया है। कम्युनिस्ट पार्टी की नीति-नीति का प्रचार करने के कारण ऐसी रचनाएँ साम्प्रदायिक हैं। जब प्रगतिवाद पर एकाकीपन का दाप लगाया जाता है तब इन रचनाओं को ही ध्यान में रखा जाता है। प्रगतिवादी वाक्य की ये चार उपधाराएँ ऐसी नहीं हैं जो कहीं परस्पर मिलती न हों। किन्हीं किन्हीं रचनाओं में एक धारा का कवि दूसरी धारा का भी स्पष्ट कर लेता है अतएव यह विभाजन आत्यंतिक नहीं है। इतना अवश्य है कि उपर्युक्त उपधाराएँ अधिकतर अपनी ही सामग्री प्रवाहित होती हुई प्रगतिवाद को स्थापना प्रदान करती हैं। 'प्रगतिवाद नाम प्रमुखता के कारण ही पड़ा है अन्यथा इस युग की



काव्यधारा में कई क्रमागत और नवोदभूत धाराओं का जल सम्मिलित है। एक ओर मधिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त गोपालशरण सिंह नेपाली आदि के द्वारा संचालित द्विवेदी युगीन काव्यधारा इससे मिलती है दूसरी ओर ५० माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन जी को राष्ट्रीय काव्यधारा दिनकर जी के रूप में नयी शक्ति प्राप्त करती है। तीसरी ओर छायावादी काव्य धारा अपना स्वरूप बदलकर पत और निराला के रूप में अपनी मानवीयता और विश्वात्मक दृष्टि का ज्ञापन करती है। चौथी ओर इस युग की धरती से भी प्रगतिवादी विचारधारा के उरस फूटकर इस समय के काव्य को सवेदना प्रदान करते हैं और साथ ही मानववादी विचारधारा को पल्लवन का अवसर प्रदान करते हैं।

## [२] बगहीन समाज की स्थापना

प्रगतिवादी काव्य की एक अर्थ विशेषता समाज का नया स्वरूप प्रस्तुत करना है। मानववादी बगहीन समाज की स्थापना में विश्वास रखते हैं। पत जी ने भी अपनी एक रचना में अपने विचार इस सन्दर्भ में इस प्रकार प्रस्तुत किये हैं—

रूढ़ि रीतिया जहाँ न हा आधारित  
श्रेणि बग में मानव नहीं विभाजित  
धन बलस हा जहाँ न जन श्रम दापण  
पूरित भव जीवन क निखिल प्रयाजन ।

— सस्कृत वाणी भाव, कम सस्कृत मन  
सुंदर हो जन-वास बसन सुंदर तन ।

—ऐसा स्वगघरा में हो समुपस्थित

नव मानव सस्कृति किरणों से ज्वालित ॥ —नव सस्कृति

## [३] पूँजीपतियों का विरोध

माक्सवादियों की तरह पत जी भी पूँजीपतियों को भला-बुरा कहते हैं और उनके अंतिम समय की सूचना देते हैं। प्रगतिवादियों ने जिन बुरे शब्दों से पूँजीपतियों को आड़े हाथों लिया है उनकी एक झलक पत जी की निम्न रचना में देखिए—

वे मशस हैं वे जन के श्रम बल से पोषित  
दुहरे घनी जोंक जग के भू जिसस शोषित  
नहीं जिन्ह करनी श्रम से जीविका उपाजित  
नतिकता से भी रहते हैं अत अपरिचित ।—

दर्पो हठी निरकुश निभय क्लुपित, कृत्सित

गत सस्कृति के गरल, लोक जीवन जिनसे मृत ।

जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन  
अब न प्रयोजन उनका अंतिम है उनके क्षण ।

### [४] सवहारा बग के प्रति सहानुभूति

प्रगतिवादी वाक्य की एक विशेषता श्रमिक बग की दुरवस्था का चित्रण करना तथा उनके साथ सहानुभूति प्रकट करना है । भव अत्याय घृणा से पालित श्रमिक को पत जी लोक ज्ञानि का अग्रदूत, वर वीर, जनादत, प्रक्षानित, जीवन को शिल्पी आदि विशेषताओं से विभूषित करते हैं । शृपका की विनम्रावस्था का चित्रण भगवती चरण वर्मा की "भसागाडी" शीषक रचना में तिदग्धता के साथ देखा जा सकता है । कवि लक्ष्मी के परम भक्त व्यापारी, जमींदारों के प्रति घणा का भी प्रकाशन करता है जो निप निरामिय सूखोर' और मनुष्य का उष्ण रक्त पीने वाले हैं । उनके अनुसार पशु के समान काम में पिसन वाले भूखे नग्न किसानों तथा मजदूरों के कालों पर ही राजकाय सधा हुआ है ।

श्रमिक किसानों या शापित बग के प्रति कविया न अपनी सहानुभूति का प्रकाशन का काय मार्मिक कथा प्रसंगा की नियोजना द्वारा भी किया है । 'सियारामशरण गुप्त जी के आह्वान-प्रगतिशील प्रगीत इसी श्रेणी के हैं । नागाजुन की प्रेत का बयान' शीषक रचना भी इसी श्रेणी को एक श्रेष्ठ रचना है । इसमें भूख से मरकर एक मास्टर प्रेत बनता है और नरक के मालिक यमराज के समक्ष मास्टर नचाकर लम्ब चमचो सा पचगुरा हाथ रुडी पतली किट किट आवाज में अपना पूरा पता करेगा की पत्तियों को खाने को आधी वाठ व्याधि आदि कहता है—

और जीर और जीर भले  
नाना प्रकार की याधिया हों  
भारत में कितु कितु  
भूख या क्षुधा नाम हो जिसका  
एसी किसी व्याधि का  
पता नहीं हमको ।  
जहा तक मेरा अपना  
सम्बन्ध है  
सुनिए महाराज—  
तनिक भी पीर नहीं,  
दुख नहीं दुविधा नहीं  
सरलतापूर्वक निकले ये प्राण  
सह न सबी आत जब  
पचिश का हमना

इस व्यंग्य रचना में भारत में शिक्षा का दुरवस्था का चित्रण किया गया है।

### [ ५ ] व्यंग्य प्रधानता

व्यंग्य प्रधानता प्रगतिवादी काव्य की एक सामान्य विशेषता रही है। इस युग के व्यंग्य कवियों में नागाजुन का नाम विशेष प्रसिद्ध है। आपन नहरू जा की अप्रजा-प्रियता परवर्णीय योजनाओं आदि पर अत्यन्त तीव्र व्यंग्य किए हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

यतन बचकर पठित नहरू फूट नहीं समात है।  
 बर्षा भी हो रही है फिर भी बाँवें उड़ा बनात हैं।  
 अग्नेजी अमराही जाँस की जमाना में हैं शामिल।  
 फिर भी आपू का समाधि पर पर एक फूट उदात हैं।

यहाँ पर भारत का वर्णनक नीति पर आघात किया गया है। भारत का लट स्यना की नाति बबल लिखाया है अप्रजा जोर अमरिनी से शत्रु नेत के कारण भारत उनसे दया है। नागाजुन जाँस उषय न था म हमी तथ्य का उद्घाटन किया है।

अपत्त आप दश ही याजनाजा पर समाधात परत हुए बहूत है—

राजानी की कतिना फूटा पान सात में हाग फन।  
 पान सात में फूट रीतनेंग रहे पन जाँसूना शून।  
 पाच सात कम पाआ भया गम खाजा दस पढ़े सात।  
 अपन हाँसा स धारा अपन हाँसा म घुल।

यहाँ कवि ने दश की याजनाजा की निरथकता और सामयिक समस्याओं के हल में उनका अक्षमता का स्फूर्त उद्घाटन संक्षेप शक्ति में किया है।

### [ ६ ] सामाजिक क्रांति का उदघोष

प्रगतिवादी काव्य में पूँजीवादी समाज के प्रति तात्पर्यम आकाश भी व्यक्त किया गया है। दिनकर जो एक जगह लिखते हैं—

शवाँस की मिनता दूध वस्त्र भूख वातक अबुलत है।  
 माँ का हन्डी से चिपन ठिठर जाडो की रात बितात है।  
 युवती को राजा बमन उच जब याज चुकाय जात है।  
 मानिक जब सन फूलनी पर पानी माँ द्रव्य बहात है।

यह क्षाम भरा आकाश दलित पालित बग क प्रति भी यत्न-तथ्य व्यक्त हुआ है। अबल जो एक स्थान पर लिखते हैं—

वह नरुन जिस कहते मानव कीडा से आज गई प्रीती  
 बुझ जाती तो आश्चर्य न था हैरत है पर कस जीती ?

अबल जा घोषण की नाव पर पनपन रात समाज का चियडे चियड करने क लिए भी उद्बोधन करते हैं। व निश्चत हैं—

✓ हो समाज चियडे-चियडे गोपण पर जिसकी नीव पडी।

कुछ अय कवि तो पू जीपतियो को 'उल्लू हुरामी के पिल्ले ये पू जीपति' जैसे शब्दों से अपना उग्रतम आक्रोश व्यक्त करते हैं।

निराला जी ने 'बाग्य राग' और पत जी ने 'गा कोकिल बरसा पावक कण शीघ्र रचनाओं में सामाजिक क्रान्ति का उदघाप किया है।

### [ ७ ] लाल निशान का जयगान

प्रगतिवादी कवि रूस तथा वहाँ की साम्यवादी शासन पद्धति की जय गाथा भी गाते हैं और उसके विरोधियों को मजदूरों, किसानों आदि का दुश्मन कहते हैं। व कम्युनिस्टों के लाल निशान का दुनिया के हर क्षेत्र में देखने से इच्छुक हैं—

छोली लाल निशान !

हो सब लान जहान !

लाल रूस है डात साथिया सब मजदूर किसानों की  
वहा राज है पचायत का वहा नहीं है प्रकारी  
लान रूस का दुश्मन, साथी दुश्मन सब इमानों का  
दुश्मन है सब मजदूरों का दुश्मन सभी किसानों का

—नरेन्द्र शर्मा

### [ ८ ] नारी मुक्ति का स्वर

नारी की परवशता तथा दुदशा की आर भी प्रायः सभी प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि गई है और उन्होंने उमकी मुक्ति का गान गाय है। पत जी की रचना का कुछ अंश यहाँ उदाहरण-रूप में प्रस्तुत है—

यौन नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।

उसे पूण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अधरित।

छोटी है मखला युगा की, बटि प्रदेग स तन स,

जगर प्रेम हा बंधन उमका हा पवित्र वह मन स।

### [ ९ ] भौतिक अभ्युदय

प्रगतिवादी काव्य भौतिक अभ्युदय से ही सम्बन्धित रहा है। इश्वर, धर्म सम्प्रदाय आदि में कवियों का कोण आस्था नहीं रही है। नवीन जीवन अपनी एक कविता में इस प्रसंग में लिखा है कि जिम दिन मैंने एक भिखारी का संपर्क कर जूठे पत्तल की चाटत हुए देखा उस दिन मेरी इच्छा हुई कि आज जगत्पति का ही गान

क्या न घाट दिया जाय जिसन मनुष्य का यह क्षुब्धतम रूप दिया। अथ कविया का भी इस सम्बन्ध में विश्वास है कि ईश्वर जमी कोई भी वस्तु इस सत्ता में नहीं है क्योंकि आज तक न तो उसने कुछ किया है और न उसमें कुछ भी करने का सामर्थ्य है।

### [१०] रुद्रियों का विरोध

प्रगतिवादी कवि रुद्रिया तथा जाति पति का भी विरोध करते हैं। नरेन्द्र शर्मा जी की एक कविता का कुछ अंश इस सन्दर्भ में दृष्ट्य है--

मैं हि दू हू तुम मुसलमान  
पर क्या दोना इंसान नहीं।  
मैं तुम्हें समझता रहा म्लेच्छ  
तुम मुझे बणिज और देहवानी।  
सदियों हम दोना साथ रहे  
यह बात न अब तक पहिचानी।  
दानो ही धरता के जाये  
हम जनचाहे महमान नहीं।

### [११] यथाथवादी चेतना

प्रगतिवादी काव्य की महत्ता सामयिक सव्यपूर्ण जीवन के प्रति सजगता तथा विपमतापूर्ण जगत की यथाथ समस्याओं का वाणी दन में भी निहित है। समाजवादी यथाथवाद की चेतना इस वाद की प्रमुख वस्तु रहा है। सामाजिक चेतना की प्रकृता के कारण कवि की व्यक्तिकता को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

### [१२] साहित्य एक उपयोगी कला

काव्य की भी उपयोगी कला के रूप में ग्रहण किया गया है और यथाथवादी विचारों के प्रसारण का उस एक सशक्त माध्यम बनाया गया है। काव्य कल्पना-लावण्य से उत्तरकर बिल्कुल समाज के यथाथ जीवन-स्तर से घुन मिला गया है। छायावादी काव्य में वस्तु तथा शिल्प लाना ही दृष्टियों से समाज तथा काव्य में एक पाथक्य था। प्रसाद, निराला पत और महादेवी के प्रगीन सामाय जनता के लिए नहीं लिखे गये पर प्रगतिवाद का सामाय जनता कृपक मजदूर शोषित वर्ग का ही काव्य रहा है।

वस्तु योजना की दृष्टि से अभी एक विषय छूट गया है जो छायावाद का प्रमुख उपादान रहा है किन्तु प्रगतिवादी जीवन-सव्य में इतने अधिक उल्लेख रहे कि उन्हें उसकी आर दृष्टिपात करने का अवसर ही न मिला--वर्त विषय है प्रकृति। अतएव प्रकृति का प्रयाग प्रगतिवादी काव्य में विरलता के साथ मिलता है। नागजुन केदार नाथ जगवाल आदि न अपनी अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र प्रकृति के आलम्बनगत

शोभन और सवेद्य चित्र भी प्रस्तुत किए हैं। अतएव प्रगतिवाद काव्य में प्रकृति के चित्रण सवया उपक्षित नहीं हो सके हैं। यहाँ हम कदारनाथ जी की एक प्रकृति रचना प्रस्तुत कर रहे हैं जिसमें खेत की लहराती फसल का चित्रण करत हुए उहोने रूपक के माध्यम से स्वप्नर का एक दृश्य उपस्थित किया है—

एक बीते के बराबर, यह हरा ठिगना चना,  
बाघे मुरठा शाश पर  
झाटे गुलाबी फूल का  
सजकर खडा है ।  
पास ही मिलकर उगी है  
बीच म अलसी हठाली  
देह की पतली, कमर की है लचाली ।

सिद्धर तिलकित भाल ✓

इसी प्रकार मिथला की अमराश्यों का सनिष्ट चित्रण नागाजु न ने भी अपनी रचना म किया है। प्रगतिवादी कविया व प्रकृति चित्रण की यह विशेषता है कि उहोने छायावादी प्रकृति व अवयवा का छोडकर सवया नय रूप में उस प्रस्तुत किया है। यह रूप प्रगतिवादा जीवन चेतना के पूणत अनुरूप है।

### [१३] खुल गये छद के बध

प्रगतिवादी काव्य के कला पक्ष स सम्बन्धित विशेषताओ को हम एक साथ पत जी की निम्नांकित पक्तियों म देख सकत हैं—

तुम बहन कर सको जन मन म भरे विचार  
वाणी मेरी चाहिए तुम्ह क्या असकार ।  
या तुम रूप कम से मुक्त, शब्द के पख मार  
कर सको मुद्दूर मनानभ मे जन के विहार ।  
या खुल गय छद के बध प्रास व रजत पाश ।  
अब गीत मुक्त ओ युगवाणी बहती अयास ॥

✓ अर्थात जन-मन म वाणी का प्रसार करना प्रगतिवादी कवियों को इष्ट रहा है अतएव भाषा को अलकार की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। भाषा जनवादी विचारा के अनुरूप जन भाषा के रूप म प्रस्तुत हुई और उससे अलकारा के आवरण उतार लिय गये। छद क बध टूट गये और गीत मुक्त होकर युग वाणी का प्रसार करने लग ।

भाषा के क्षेत्र म छायावादी लक्षणा और न्यजना का प्रकप इस युग की रच नाओ म नहीं मिलता। शब्द-विधान सामाय जीवन स्तर को ध्यान म रखकर प्रस्तुत

११६ । आधुनिक काव्य प्रवर्तियों एक पुनर्मुल्यांकन

किया गया है। इस प्रकार न कवन विचारों के क्षेत्र में बरन् भाषा के क्षेत्र में भी यह काव्य जनता के पास आकर उगम घुन मिल गया है किन्तु सामान्य भाषा और सरल अभिव्यक्ति का अर्थ गलत नहीं समझा जाना चाहिये। यदि भाषा दरिद्र हो तो श्रेष्ठ काव्य की रचना हो ही नहीं सकती। इसी प्रकार जनता की सीमित शब्द-राशि को ही बढ़ित करके साहित्य लिखा जाय तो उसमें सूक्ष्म मनोभाषा की व्यञ्जना नहीं हो सकती। इसीलिए भाषा की सरलता और सुबोधता की आवश्यकता का प्रतिपादन करने के उपरान्त भी डा० रामविलास शर्मा को निम्नलिखित पडा कि भाषा क किसी आदेश को ही अमर नहीं कहा जा सकता। भाषा और विचारों के अनुकूल ही भाषा का स्वरूप होना चाहिए।

### [१४] जन भाषा का आग्रह

जन भाषा का आग्रह करने के कारण प्रगतिवादों का ये म विपुल मात्रा में प्रामाण्य शब्दों का भी समावेश हो गया है और भाषा विशुद्ध न होकर शुद्ध तत्सम और तद्भव शब्दों का मिश्रित रूप है। प्रामाण्य शब्दों के कुछ उदाहरण ये हैं—छिन धनि, पगही आधाना, पोत करी चनाचवना, बिलमना छापना छिपाना सात कुसाइत घाजू चिर-पटे सराता अर्राता नर्राता आदि। कही-कही तो गालिया तक को प्रस्तुत कर दिया गया है।

कही कही शुद्ध तत्सम शब्द भी मिल जाते हैं किन्तु ऐसे उदाहरण विरल ही हैं। प्रभाकर माचव की एक कविता का कुछ अंश यहाँ अवलोकनाथ उद्धृत है—

यदा सहरत चाय  
कूर्मो-अगनीव सवश  
गीता म यह स्थित प्रन का लक्षण ।  
तुम हो जीव विलक्षण ।  
बडी उम्र ही कच्छपराज तुम्हारी ।  
करी पाठ  
सिंवार-सनी यह पृथुल देह, गति शिथिल ।

इसी प्रकार पत जा की प्रगतिशील कविताओं में भी तत्सम पदावलि का जाधिक्य मिलता है।

निराला जी के 'कुकुरमुत्ता' की भाषा प्रगतिवादों काव्य की आदेश भाषा माना जाती है। उदाहरणरूप में उसका कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

अवे सुन वे गुलाब,  
भूल मत गर पाई खुशबू रपोआब ।  
खून चूसा खाद का तूने अशिश्ट,

डाल पर इतरा रहा कपीटिलिस्ट ।  
 कितनो को तूने बनाया है गुलाम  
 माली कर रक्खा खिलाया जाडा घाम ।

## [१५] जनवादी अप्रस्तुत विधान

अप्रस्तुत विधान भी प्रगतिवादी काव्य का जन सामाग्य है । एक तो अलंकरण करन का उहे कोई मोह नहीं रहा यथाय जगत की बना की कवियों ने निर्व्याज रूप मे प्रस्तुत किया दूसरे जिन उपमानों प्रतीका या बिम्बा को उहोने ग्रहण किया, वे छायावादा कवियों की सृष्टिकल्पना की विनाल उडागा स सम्बन्धित न हाकर श्रमिका के दैनिक जीवन स सम्बन्धित है । प्रतीक ऐस है जो सहज ही जनता समझ सके और जिनकी शक्ति और ताप, उहे अभीष्ट अथ की प्रतीति करा सके । छायावादी प्रतीको म जो मसणता, स्निग्धता और सौन्दर्य चेतना विद्यमान है वह प्रगतिवादी काव्य म नहीं है यहाँ जीवन के सघममूलक उपादाना से प्रतीको को नये सिरे से उठाया गया है जन-वाणी विचार और जन भाषा के साथ प्रतीक भा जनवादी ही है । यहाँ पर कुछ प्रगतिवादी प्रतीक दिये जा रहे हैं—'कायल की खान की मजदूगिनी सी रात' 'सफेद कासा की झण्डो,' डेला सी बडी बडी आँखें, रहा की टोकरो का जीवन' 'लडू की बूँदो से जलत है बिजली क दत्व सूनी सडको पर लाल-लाल,' 'पूट' बतन सी तिरस्कृता मानवता' लखनी ही है हमारी पार, घरा है पट, सिधु है मसिपात्र आदि । यहाँ जितने भी उपमान हैं व सब सामाग्य जावन की सामान्य वस्तुयें हैं और उपामानो की प्रतीकात्मकता स वस्तुस्थिति की यथाथता का बाध कराया गया है । निश्चित रूप से यहा पर उपमाना म नयी प्रगतिवादी चेतना के अनुसार नयापन है और य प्रतीक अथ को पूर्ण शक्तिमत्ता क साथ उदघाटित करने मे ममय हुय हैं किन्तु सबत्र ऐसा नहीं हो सका है । कही-कही असाहित्यिक और भौडे उपमान और प्रताक भी आ गय हैं जो का य को उसके उदात्त, सवेदनीय स्तर से स्खलित कर देत हैं जस पूँजीपतिया की उल्लू हरामी आदि के पिल्ले कहना एसा ही एक चिन्त्य प्रयाग है ।

अलंकारा म उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का अधिक प्रयोग किया गया है । मानवीकरण क भी शोभन प्रयोग प्रगतिवादी काव्य म मिलत हैं । स्वयंवर एक एसी ही रचना है जिसे हम पहल देख चुके है । यहा पर वेदारनाथ अग्रवाल की एक अय कविता उद्धत कर रहे हैं जिसम मस्त बसती पवन की चञ्चलताआ की चर्चा है—

चढ़ी पड महुआ  
 पपाथप मचाया  
 गिरी घम्म से फिर



चढ़ी आम ऊपर  
उमे भी चकोरा  
किया वान म कू  
उतर कर भगी मैं  
हर खेत पट्टची-

इस गीत में विम्ब योजना का भी स्वरूप देखा जा सकता है गिरी धम्म से फिर में ध्वनि मूलक प्रतीकात्मकता है जोर महुए के जमीन पर गिरन का विम्ब हमारी जाखा के सामने आ जाता है। किया वान में कू में श्रुतिपेशल प्रतीक है। बोविल की कू की ओर गहा सकेत है। यह चित्र भी अतीव शोभन है। गहुआ में लहर मारना लहराते हुए गहू के खेता की प्रतीक है इसमें चक्षुगोचरता विद्यमान है। उपयुक्त पंक्ति के पत्र ही लहराते खेत हमारी आँखों के सामने मूत हो उठते हैं। विम्ब विधान की एक अन्य विशेषता यह है कि सारे विम्ब खेत-खलिहानों, किसान और मजदूरों से सम्बन्धित जनवादी है। प्रवृत्ति से सम्बन्धित उपयुक्त प्रगीत में विम्ब विधान सौन्दर्यमूलक है पर यथाय जावन से सम्बन्धित है वह काल्पनिक लोक की वस्तु नहीं।

पूस मास की धूप सुहावन  
घिम हुये पीतल सी पाडुर  
स्नन पायी नीरोग गौर छवि  
शिगु वं गाला जसी मनहर  
पूस मास की धूप सुहावन।

(नागाजुन)

उपयुक्त पंक्तियों में पूस मास की सुहावन धूप व प्रति उपमा और उत्प्रेक्षाय है य भी प्रगतिवादी उपकरणों से सम्बन्धित हैं। इनमें भी चित्रात्मकता विद्यमान है।

अयोक्ति का भी प्रगतिवादी कवियों ने बहुत प्रयोग किया है। पत्र की स्वीट पी क प्रति केदारनाथ अप्रवाल की कोयलें जादि एसी हा रचनायें हैं।

प्रगतिवाद में शलिया की दृष्टि से प्रधानतः चार शलिया प्रयुक्त की गई हैं—  
वर्णनात्मक उद्वाधनात्मक, विचारात्मक और हास्य तथा व्यंग्य मूलक। वर्णनात्मक शली प्रगतिवादी काव्य में यथायवादी शली का ही संस्करण है। इस क्षेत्र में निराला तथा ईपत माझा में पत जी ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। निराला ने विपुल माझा में यथायवादी शब्द चित्रा की उनका सपूर्ण परिवेश में प्रस्तुत किया है। य चित्र प्रामाण्य जावन व भाषिक अंश हैं और इन स्थला का वर्णन करते हुए निराला वस्तुतः 'ग्राम्य गीतों की वर्णनात्मकता को प्रस्तुत करन लगते हैं। कुत्ता भौकन लगा' डिप्टी

साहब आय, 'वह मूँज कुटता है' आदि ऐसी ही रचनायें हैं। यहाँ हम उनका एक ग्राम्य रेखा चित्र का उदाहरण दे रहे हैं—

सड़न के बिनार दूकान है  
पान की। दूर एक्काबान है  
घोड़े की पीठ ठाकता हुआ,  
पीरउरुएक एक बच्चे को दुआ  
दे रहा है पीपन की डाल पर  
कूक रही कागिल मान पर  
बलगाडी चली जा रही है।

इस रेखाचित्र में तत्कालीन परिस्थिति का सूक्ष्म चित्र अंकित किया गया है। पं. जी की 'ग्राम्या म घोड़िया, चमारो आदि के नृत्यो म भी यह वर्णनात्मक शली अपने प्रकय पर दखी जा सकती है। तथात्मक प्रगीता म भां इपत् मात्रा म इस दखा जा सकता है।

प्रगतिवादी विचारा का प्रचार—प्रसार करने का कारण प्रगतिवादी काव्य म उदवाधन शली की प्रमुखता है। इस शली क कई उदाहरण वस्तुगत विशेषताओं के निदर्शन के समय हम दे चुके हैं।

जहाँ प्रगतिवादी कवि का य का माध्यम से अपने सद्भावितक विचारा का प्रस्तुत करत है वहाँ विचारात्मक शली का प्रयाग हुआ है। पं. जी की 'युगवाणी' इस शली के उदाहरण से भरा पडा है।

'युग्य गीर हास्य शला प्रगतिवादी काव्य का एक सामान्य और सार्वत्रिक विश्रपना है। प्राय सभी कवियों ने इनका प्रयोग किया है। हास्य शली का लक्ष्य विशुद्ध मनोरजन रहता है किंतु व्यंग्य मनोरजन का जाग बंधकर जाग्रमण भी करता है। उसकी प्रकृति विचरणण मक जीर समीक्षात्मक होता है। इसका पल्लवन काव्य की भाव-भूमिका पर न हाकर बोद्धिक भूमिका पर होता है। निराला, नागाजुन भारत भूषण अग्रवाल आदि को व्यंग्य याजना म अधिष्ण गणलना गिनी है।

✓ छन्द और काव्य रूपों के क्षत्रा म भां प्रगतिवादी काव्य अपनी विशिष्टता रखता है। इस युग में मुक्त छंदों का सर्वाधिक रूप से प्रयोग किया गया। परम्परा से आगत छन्दों की विरलता या बन्धकार हा है। मुक्त छंदों में लय का सभार और निर्बाह प्रमुख वस्तु रहती है किंतु यथात्मकता का निराला की अपक्षा अभाव है और रचनायें, गीत गद्य का रूप म हा अधिकतर लिखी गई हैं। छंद इसके लिए जुम्भदार नहीं है। विचारा का भाग्रह और प्रचारात्मकता, तथा व्यंग्याधिक्य ही छंद के निष्ठा तक सिद्ध हुए हैं। जहाँ कोमल सरस भावनाओं का प्रकाशन है वहाँ मुक्त छंद म भी गीत के समान तरलता और सरसता है। बेनारनाथ अग्रवाल का स्वयंवर तथा



७ जाति की अपेक्षा सवष म निष्ठा, अहिंसा की अपेक्षा हिंसा म आस्था ।

८ जाति को एक मात्र अस्त्र रूप म ग्रहण करना, जिससे वग कटुता

की भावनायें अधिक गहरी हुई हैं ।

९ इसका आत्यंतिक लक्ष्य शारीरिक सुख, आर्थिक विषमता का अभाव, वग  
हीन समाज की रचना ।

१० अधिकांश प्रगतिवादी लेखक समाज के दलित वग के प्रति मौखिक सहा  
नुभूति का विज्ञापन करते हैं ।

११ अतिशय श्रृंगार चित्रा म काम वासना की प्रमुखता, नारी का सौन्द्य  
पासल और कामुकता से भरा रूप चित्रित ।

१२ वस्तु परकता की सर्वाधिकता, स्वानुभूतियों का अपेक्षाकृत अभाव ।  
युग चेतना की अनुभूति कम, देश के श्रमिकों की दुखस्था का आँखों देखा चित्रण  
अधिक है ।

१३ सत्य, शिव और सुन्दर की अनुभूतियों पर विश्वास नहीं । “सुन्दर,  
शिव, सत्य कला से कल्पित भाव मान, बन गये स्थूल जगज्जीवन से हो एक  
प्राण”—पत ।

१४ कला के तत्त्वा का ह्रास हुआ है और प्रचार भावना के कारण बुद्धि तत्त्व  
की अधिकता है ।

१५ काव्य कला की शिथिलता तथा अपरिष्कार विद्यमान है । प्रगतिवादी  
समीक्षा म समाजशास्त्रीय पन अधिक साहित्यिकता कम है ।

१६ कवि ग्रहण मूल प्रेरणा पर ध्यान न देकर सिद्धांतों का अध्यानुकरण  
करते हैं जिससे काव्य को सहजोत्पन्न नहीं मिलता ।

१७ मानवता की चर्चा करके भी प्रगतिवाद सर्वहारावादी है समाज के  
सभी वर्गों के प्रति उसके पास शुभाकांक्षायें नहीं हैं ।

इन आक्षेपों में से कुछ के निराकरण के सदर्भ म प्रगतिवाद के अधिकृत विद्वान  
और समीक्षक डा० रामबिलास शर्मा ने लिखा है कि 'मावसवाद पर जो एकांगी  
हाने का दोष लगाया गया है वह वस्तुगत सत्य नहीं । उन्होंने प्रगतिवाद की मूल  
विशेषता का ज्ञापन करते हुए इसी सदर्भ म लिखा है—'वह यह मानता है कि जा  
साहित्य युग की मज्जीव अनुभूति और प्रगतिशील विचारों का व्यक्त नहीं करता वह  
निर्जीव हो जाता है उनका यह कथन तो हर साहित्य की मूल विशेषता है पर प्रश्न  
यह है कि क्या प्रगतिवाद यहाँ वाय व्यावहारिक रूप म करता है । हम देख चुके हैं  
कि सामाजिकता की शब्दचरित करते हुए भी वह सर्वहारा को ही समाज मानता है,  
वही इसका इष्टदेव है, और जा उसका विरोधी या विजातीय है वह उनकी निम्न  
मता का पात्र है भले हा बट दूध का घुला और गंगा जल का पावन हो । उनका तन्त्र

स्वरचित है इसी को वे समाज का निरूप मानते हैं। यदि उन्हें मार्क्स के सिद्धांतों के अनुगत होन की स्वतंत्रता है, तो दूसरे उसे न मानने के लिए भी स्वतंत्र हैं। पर यह व्यक्ति स्वतंत्रता वे सहन नही कर पाते, फिर एकाकी दृष्टि नही तो क्या समरस है ?

ईश्वर मे उनकी आस्था नही इस अनास्था से मुझे कोई चिह्न नहीं है। जो समाज उसे मानता है वह उनकी अपेक्षा अधिक उन्नतिशील भी तो नही ? स्वयं भारतीय दशन की विविध धाराओ के प्रवक्तव्य म से लगभग आधे दार्शनिक नारितक रहे हैं, भौतिकता की चरम लक्ष्यता भी नही अपरती, प्रगतिवाद धर्म की रूढ़ि का खण्डन करता है इस पर भी मुझे कुछ नही बहना, जीवन म निरंतर मर्षण करत रहना, इसमे भी कोई बुराई नही है बगहीन मभाज भी बुरा नही प्राति हो यह सब कर सकता है वतमान समाज की विपन्नावस्था और पूजीपतियो की अधिकार लिप्ता तथा स्वायत्तता की अपरिवर्तनशीलता को देखत हुए यह भी किसा हूँ तब स्वीकार्य है पर क्या ये सब व्यापार काय क विषय है ? क्या यह साम्यवाद राजनीति के तन्त्र का एक अभिन्न अंग नही ? क्या साहित्य को राजनीति का अंग बना देना समाचीन होगा ? क्या साहित्य का यही प्रयोजन है ? क्या ये ही बिचार प्रवृत्त करना साहित्यिक सौन्दर्य और कलात्मकता है ? निश्चित रूप से नही है। राजनीति समाज तन्त्र है, उसके विकास के लिए सुख सुविधाओ का सचय करना आन्तरिक व्यवस्था और बाह्य आक्रमणो से रक्षा करना उनकी अधिकार सीमा है। साहित्य व्यक्ति के हृदय की वस्तु है, यह जन मन की व्यक्तिकता से मुक्त करके एक उन्नत स्तर पर पहुँचाकर, उन्हें आह्लाद प्रदान करने वाला कला सम्मित रूप से ज्ञान विज्ञान, आदेश उपदेश और सदेश को प्रस्तुत करने वाला है। दोनो के पथ भिन्न हैं। एक आर कल्पना का आह्लादक सौन्दर्य है दूसरी ओर जीवन का दुर्घर्ष यथाथ सघष है दोना के पथक क्षेत्र हैं एक नही। फिर एक कर देना साहित्य की चिरतन गतिशीलता को झुठलाना नही है। सिद्धान्त रूप से कर भी निया पर क्या संभव ऐसा कर संभवा सम्भव है ? यदि ऐसा है तो बेदारनाथ अग्रवाल के 'स्वयंवर' तथा वसंत पवन की चंचलता से युक्त श्रीडाओं म कौन सा मार्कम का दशा भरा हुआ है ? कौन सी प्रगतिगामिता है ? क्या वहाँ कल्पना का सौन्दर्य ही हम सवेच नही बनाता ? यह सवेदना पत जी के मार्कम स्तवन म क्यों नही मिलती। यदि उसे समाज जनता को सुनाया जाय तो कदाचित ही एकाध शब्द समझ सक ? तब क्या यही प्रगतिवादी दृष्टि जीर उपलब्धि है ? राजनीति साहित्य से प्रेरणा ले साहित्य राजनीति की चेतना ग्रहण करे किसी को कोई आपत्ति नही किन्तु इहे अपनी मर्यादाओ का अतिक्रमण नही करना चाहिए। राजनीति और साहित्य को एक समझने वाली साम्यवादी दृष्टि निश्चित रूप से चिन्त्य है। इस आधार बनाकर यदि प्रगतिवाद पर आपेप किया जाता है तो कोई अपराध

नहीं किया जाता, असत्य का पथ ग्रहण नहीं किया जाता।

इलील अश्लील की पहचान के लिए यहाँ मैं मंगला माहन की एक प्रगतिवादी रचना प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसमें यथायवादी शैली है, या कवि के हृदय की नग्न वासना और क्या ऐसे चित्रण साहित्यिक हैं? इसका निणय स्वयं कर लीजिएगा—

उस धान के कटे हुए खेता व उस पार  
भस के पीछे एक काली सी किसान क्या।  
नाटे स बरगद की घनी उस छाह मे  
पास मे माटा सा लट्ट लिए एक युवक  
भस की पीठ पर कुहनी टिकाए हुए  
देखते ही देखने चिवाटी काटी उसने  
छातिया मसल दी और ।

मैं यह नहीं कहता कि प्रगतिवाद ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है, पर उदाहरण मिलते तो हैं, अपवाद ही सही, क्या वह विषय वासना सामाजिक चेतना का फल है? या केवल वस्तुस्थिति के यथाथ चित्रण के नाम पर प्रस्तुत किया गया है?

प्रिये अभी मधुराधर चुम्बन गात गात गूथे आलिंगन।

सुने अभी अभिलाषी अंतर मदुल उराजा का मुदु कपन ॥ -

—नरेन्द्र शर्मा।

नरेन्द्र शर्मा की उपयुक्त पाँचवाँ भी इसी प्रसंग में विचाराय देखी जा सकती हैं। सयाग शृंगार के इसमें भी मादक चित्र प्रसाद की परिरम्भ कुम्हकी मदिरा, निश्वास मलय के झोक, मुखचन्द्र चाँदी जल स मैं उठता था मुँह घोवे' आदि पक्तियों में तथा निराला की होली रचना में मिलते हैं पर उन पर प्रतीकों का मुन हला आवरण है। वे नग्न और निलज्ज नहीं हैं।

एक ओर प्रगतिवादी रूस में पानी बरसे तो भारत में छाता लगाकर चलने वाले हैं दूसरी ओर शींग महलो में खस की टट्टियों से सुमज्जित प्रकोष्ठ में मटकती सोफा-सेटो में बैठकर प्रीप्स व आतप स झुलसत हुए किसान की बदना के गीत गाते हैं। क्या यह विरोधभास नहीं है। उनके गीतों से कदाचित्त एव भी किसान और मजदूर का भला न हुआ हागा, देग के मजदूरों को आज भी यह पता नहीं कि उन पर पत निराला, रामविलास शर्मा, नागाजु न, शींग या अथ किसी ने प्रगीत लिखे हैं? शायद उनसे पूछो तो वे इनका नाम भी न बता पावेंगे। इसी स्थिति में यह मोक्षिय और बौद्धिक सहानुभूति का आरोप व्यय नहीं कहा जा सकता, भले ही यह आरोप आत्यन्तिक न हा।

बला-पदा की शिथिलता और अपरिष्कृति की तो स्वयं डा० रामविलास

शर्मा जी ने स्वीकार किया है अतएव इस विषय पर तर्क देना, अनावश्यक है।

### (उ) प्रदेय

दुरलतायें और कमियाँ तो हरवस्तु में पाजन पर मित्र ही जाती हैं, विकास के लिए उतका होना आवश्यक भी है। प्रगतिवाद में भी ये हैं और प्रचुर मात्रा में हैं किंतु उसका सौरस्य कमियाँ में निहित नहीं है, उसकी विशेषताएँ और उपलब्धियाँ युगांतरकारी हैं। इमान्दिये दोषों का विवेचन करके प्रायः सभी समीक्षकों ने उसका माहात्म्य भी उदघाटित किया है। यहाँ हम हिन्दी के चार प्रतिष्ठित जालोचकों के मतों को इस सदर्भ में उद्धृत कर रहे हैं। जिनके द्वारा प्रगतिवाद का समुचित समादर और प्रदेय स्पष्ट हो जाएगा। इन समीक्षकों में दो स्वच्छन्दतावादी हैं एक प्रगतिवादी और एक अतश्चेतनावादी। स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों में एक सौष्ठववादी और दूसरे मानवतावादी हैं। प्रगतिवादी समीक्षक डा० शर्मा को छोड़कर शेष सभी आचार्य प्रगतिवाद के कट्टर समर्थक हैं किंतु उन्होंने अपने एकाग्रपन का परिचय नहीं दिया, गुण लोप दोनों ही उनकी दृष्टि में रहे हैं। सौष्ठववादी समीक्षक आचार्य वाजपेयी जी के अनुसार साहित्य का सामाजिक लक्ष्य और उद्देश्य का विज्ञापन करने वाली यह पद्धति साहित्य का बहुत कुछ उपकार भा कर सकती है। उसमें हमारे युवकों को एक नई तजस्विता भी प्रदान की है और एक नया आत्मबल भी मिला है। हम यह भी नहीं कहते हैं कि प्रगतिवादी समीक्षा न हिन्दी को कुछ दिया है। उसमें दो वस्तुएँ मुख्य रूप में हैं। प्रथम यह कि काव्य साहित्य का समन्वय सामाजिक वास्तविकता से है और वहीं साहित्य मूल्यवान है जो उक्त वास्तविकता के प्रति राजग और सवेदनशील है। द्वितीय यह कि जो साहित्य सामाजिक वास्तविकता से जितना ही दूर होगा वह उतना ही कात्पनिक और प्रतिष्थितावादी कहा जायगा। न केवल सामाजिक दृष्टि से वह अनुपयोगी होगा, साहित्यिक दृष्टि से भी हीन और ह्लासोमुख होगा। इस प्रकार साहित्य के सौष्ठव सम्बंधी एक नई माप रेखा और एक नया दृष्टिकोण इस पद्धति ने हमें दिया है जिसका उचित प्रयोग हम करेंगे।”

मानवतावादी समीक्षक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि “इसके सिद्धांत और उद्देश्य बहुत सुन्दर हैं लेकिन ये लोग कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जुड़े हुए हैं, यही जरा खटकता है। प्रगतिशील आंदोलन बहुत महान उद्देश्य से चालित है। इसमें साम्प्रदायिक भाव का प्रवेश नहीं हुआ तो इसकी सम्भावनाएँ अत्यधिक हैं। भक्ति आंदोलन के समय जिन प्रकार एक अदम्य, दृढ़ आदर्शनिष्ठा दिखाई पड़ी थी, जो समाज के नए जीवन दर्शन से चालित करने का सकल्प बहूत करने

के कारण अप्रतिरोध्य शक्ति के रूप में प्रकट हुई थी, उसी प्रकार यह आन्दोलन भी हो सकता है।<sup>१</sup>

श्री इलाचन्द्र जोशी जी का मत है कि "प्रगतिवाद ने बाह्य जगत के जीवन सघन की ओर हमारी चेतना को उन्मुख कर साहित्य का बहुत बड़ा उपकार किया है। यह बात हम किसी भी हालत में नहीं भूलानी होगी।"<sup>२</sup>

उपयुक्त तीनों विद्वान प्रगतिवाद की समीक्षा करते हुए मुक्त कंठ से उसकी उपलब्धियों को स्वाकार करते हैं। डा० शर्मा ने अपने प्रगतिवाद-सम्बन्धी विश्लेषण के उपरान्त जो निष्कर्ष दिये हैं वे भी उपयुक्त निष्कर्षों से भिन्न नहीं हैं। उनका कहना है कि 'प्रगतिशील साहित्य युग की मांग को पूरा करने वाला साहित्य है। उसकी शक्ति इस बात में है कि वह समाज के वास्तविक जीवन के निकट है।'<sup>३</sup>

इस प्रकार हिन्दी-साहित्य में प्रगतिवाद एक युग प्रतिनिधि और युगान्तकारी आन्दोलन है। अनेक दुःखनताएँ रहते हुए भी उसकी सामाजिकता और जीवन की सनिगृहता उसे अक्षयता और लोकप्रियता प्रदान करती है। यह आन्दोलन केवल काव्य में ही नहीं, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, समीक्षा आदि साहित्य के सभी रूपों में हमें एक साथ दिखाई देता है। इसने जो मानवीय जीवन की सामाजिक यथायवादी दृष्टि प्रस्तुत की, वह साहित्य तथा समाज के उन्नयन का एक नया दिशा बोध है। साम्प्रदायिक भावना से हीन प्रगतिवादों के प्रतिमान स्वस्थ और समुज्ज्वल साहित्य के प्रतीक हैं।

१ हिन्दी-साहित्य—प्रगतिवाद

२ प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ ।



## ४ | प्रयोगवाद 1143 - 1953

### भूमिका

१९४३ ई० से लेकर आज तक के इन वर्षों में 'प्रयोगवाद' और उसकी आत्म जाये नयी कविता, अकविता युवा कविता आदि पर बहुत बाद विवाद हो चुके हैं। प्रशंसा-स्तुति भी अच्छी मात्रा में हो चुकी है। प्रयोगवादियों और नयी कवितावादियों को प्रबोधन आदेश उपदेश और योजनाएँ भी दी जा चुकी हैं। यदि किसी अप्रयोगवादी समीक्षक ने उस पर विचार किया तो दोषों की असीम सूची तयार कर ले या किसी प्रयोगवादी समीक्षक ने अपना जोर अपने मित्रों की काय साधना का विश्लेषण किया तो कुकरमुत्ता की भाँति अपनी आत्मस्तुति में पत्ते रग डाले। गुलाब का भाँति परम्परा पोषका को काय-जगत के राहु नेतु कहा और अपने को युग का अधिष्ठित प्रतिनिधि सिद्ध करने का प्रयास किया। इस मध्य का उपशमन आज भी नहीं हो सका है। किन्तु आज आरम्भिक तनावपूर्ण स्थिति भी नहीं है। तार सप्तक' के स्वर भी शनशना कर सम पर आ गये हैं और पुराने समीक्षक भी नई कविता और प्रयोगवाद सम्बन्धी अपने पुराने मत्तों का सशाधन करने लग हैं। समय भी गया है जब हम तटस्थ रहकर इस साहित्यिक आंदोलन पर पुन विचार करें।

✓ हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद की प्रथम अनुभूति अज्ञेय जी के द्वारा संपादित प्रथम 'तार सप्तक' (१९४३ ई०) से मानी जाती है। इसकी प्रकाशन योजना के मूल में दो सिद्धांत थे-प्रथम सहयोग अर्थात् भाग लेने वाला प्रत्येक कवि पुस्तक का साक्षी होगा और द्वितीय सप्रहीत कवि सभी ऐसे होंगे जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते, कि काव्य का सत्य उहाने पा लिया है केवल अन्वेषी ही अपने को मानते हैं। उहोन यह भी कहा कि 'तार सप्तक किसी गुट का प्रकाशन नहीं है क्योंकि सप्रहीत सात कवियों के साठे सात अलग अलग गुट हैं उनके साठे सात व्यक्तित्व हैं।' फिर भी वे यह दावा करते हैं कि "सातो (यानी तार

१ तार सप्तक प्रथम, पृष्ठ ५।

२ " " " " ६।

सप्तक के सात कवि) अवेपी हैं। काव्य के प्रति अवेपी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाधता है बल्कि उनके एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं—राही नहीं, राहों के अवेपी।”

प्रथम तार सप्तक के प्रकाशन से सम्बंधित इस तथा-कथा से यह शात होता है कि प्रयोगवाद—कोई योजनाबद्ध आंदोलन नहीं है। उस समय उसका कोई निदिष्ट रूप भी नहीं था। तार सप्तक के कवि किसी एक स्कूल के भी नहीं हैं। वे काव्य सत्य के अन्वेषी हैं और काव्य की प्रयोग का विषय मानते हैं—केवल य दो बातें उनमें समान हैं। इस तरह अनेक जी यहाँ किसी वाद का प्रवर्तन नहीं करते, बस, काव्य को प्रयोग का विषय मानते हैं। किंतु इसी पर विवाद उठ खड़ा हुआ और रामशेर बहादुर सिंह, अनेक आदि प्रयोगवाद को वाद के रूप में मानने के लिए प्रति वाद करते रहे, तभी श्री नलिन विलोचन शर्मा, केशरी कुमार तथा नरेश ने (न-के-न वाद) प्रयोगवाद का मनीफेस्टो—उद्घोषणा पत्र प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने निम्नांकित दस मूल मय फकिक्का के प्रस्तुत किये—

### प्रपद्यवाद या नकेनवाद

#### प्रयोग दस सूत्री

प्रयोगवाद के घोषणा पत्र का प्राख्य ।

- (१) प्रयोगवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है ।
- (२) प्रयोगवाद सधतत्र स्वतन्त्र है । उसके लिए शास्त्र या दल निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं ।
- (३) वह महान पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को निष्प्राण मानता है ।
- (४) वह दूसरों से भी अधि अपना अनुकरण वर्जित समझता है ।
- (५) उसे मुक्त काव्य नहीं स्वच्छद काव्य की स्थिति अभीष्ट है ।<sup>(१)</sup>
- (६) प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है, प्रयोगवाद को साध्य ।<sup>(२)</sup>
- (७) प्रयोगवाद की इक वाक्य पदीय प्रणाली है ।<sup>(३)</sup>
- (८) उसके लिए जीवन और कोप कच्चे माल की खान है ।
- (९) प्रयोगवादी प्रत्येक प्रयुक्त शब्द और छंद का स्वयं निर्माता है ।<sup>(४)</sup>

१ प्रथम तार सप्तक के कवियों में आधे प्रगतिवादी हैं—

प्रभाकर माचवे, गिरजा कुमार माथुर और रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबाध नेमिचंद्र और अजय— प्रयोगवादी तथा भारत भूषण अग्रवाल प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की संधि के कवि हैं ।

(१०) प्रयोगवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है ।

हस्ताक्षरित  
ननिन विलोचा शर्मा  
केसरी कुमार  
नरेश<sup>१</sup>

### फविकका

(१) Verse Libre Vers Libre भाष्य के लिए दखिए— दृष्टिकोण' मासिक के द्वितीय अंक का प्रथम निबंध ।

(२) तुलना कीजिए चरित्रशील और चारित्र्यवाद, प्रगतिशील और प्रगतिवाद के साथ ।

(३) Veru-Voco-Visual-method

(४) जस चित्रकार वण योजना का मूर्तिकार प्रस्तर खण्ड का ।

जब इन दस-सूत्रों को आधार बनाकर कविता लिखी गई तो वह अपनी विलक्षणता और प्रयोगों की बहुलता के कारण बौद्धिक हो गई । वह परम्परा से विच्छिन्न, अहंकेन्द्रित कुंठाओं, निराशाओं और तपितियों से मुक्त विचित्र गोरख घघा बन गई । इस विच्छिन्नता अस्त-पस्तता और बौद्धिकता को ही इन कवियों ने आस्वाद्य बताया । प्रतिफल यह हुआ कि यह नैतनवाद जन्म लेता ही अपनी आत्म घुटन से पीड़ित होकर जल्दी ही समाप्त भी हो गया ।

अज्ञय और उनके सहयोगी मित्रा ने प्रयोग को अंतिम लक्ष्य न मानकर अपने को प्रयोगशील कहकर अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया । यहाँ 'प्रयोगशील' और 'प्रयोगवाद्' में लगभग वही अंतर है जो 'प्रगतिवाद्' और 'प्रगतिशील' में है । जिन प्रकार प्रगतिशीलता प्रगतिवाद से किंचित भिन्न होकर भी एक ही बतुल परिधि में साहित्य सजना करती है तदभव प्रयोगशीलता भी प्रयोगवाद की परिधि से मिल कर ही कायम थी । प्रयोग आदि काल से हात रहे हैं सभी कवि नये प्रयोग करते हैं पर अन्ध, शमशर, गजानन माधव मुक्तिबोध आदि कवि काव्य को प्रयोगों का विषय क्षेत्र मानकर चलते हैं । प्रयोग-माध्यम से वे काव्य सत्य पाने के लिए लाला यित हैं । इस राहावेण में उठने भी सहस्राधिक वेदगे प्रयोग किए, यहाँ तक कि प्रयोगशीलता को ही अपनी मनोवृत्ति बना ली ।

### प्रयोगवाद के प्रेरणा स्रोत

यहाँ प्रश्न है कि यह प्रयोगवादी या प्रयोगशील मनोवृत्ति एकाएक कैसे जागत हुई ? क्या देश की तत्कालीन विविध परिस्थितियाँ इस मनोवृत्ति की उदभाविका हैं ?

१ इस प्रयोगदर्शनसूत्री में पहली बार 'प्रयोगवाद' का मौलिक शील निरूपण हुआ— नरेश, प्रकाश, पटना ३८ १० ५७

या यह मनोवृत्ति हाल-वाद के समान कवियों के व्यक्तिगत दुःखद जीवन की प्रतिप्रिया है अथवा यह विदेश से आयात की हुई वस्तु है ? या इसके सूत्र हमारे साहित्य में विद्यमान थे बाह्य प्रभाव और कवियों के मनोयोग द्वारा वे उत्पन्न होकर प्रगतिवाद के समान ही एक आन्दोलन के रूप में हमारे सामने आये ।

जहाँ तक देश की विविध परिस्थितियों का प्रश्न है १९४२-४३ का समय देश में व्यापक राष्ट्रीय आन्दोलन का समय था और उतनी ही शक्ति के साथ उसका दमन भी किया जा रहा था । इसी समय दंगल का अकाल पड़ा, जिसकी चर्चा प्रगतिवाद के सदस्यों में की जा चुकी है । ये परिस्थितियाँ दुःख और कष्ट थी, पर इस समय देश के कवियों ने वग घटना से प्रभावित होकर अपरिमित मात्रा में गोक सहायनूति, शोभ और अग्नेय की नीति की समीक्षा करते हुए प्रगीत लिखे । उनकी वाणी में आक्रोश था । जनता के लिये अमीम दान और देश की स्वतन्त्रता के लिए बलवती चाह थी किन्तु यह व्यक्तिगत के विखण्डन करने वाली परिस्थितियाँ नहीं थी, अहर्केन्द्रित, निराशा घुटन अनास्था, कुण्ठाओं की प्रेरणा इन परिस्थितियाँ निश्चित रूप से नहीं दी । प्रयागशीलता का जब इस भूमि में नहीं हुआ । इन प्रमुख घटनाओं के बाद देश की स्वतन्त्रता प्राप्त हुई और विस्थापितों की समस्या उठ खड़ी हुई । देश के विभाजन से, साम्प्रदायिक झगटों से—पुनः स्वतन्त्रता की प्राप्ति का आनन्द दुःखद हो गया किन्तु ये परिस्थितियाँ भी यकीन में सघष से पनायन उठाती तथा निराशा के बीजों का बोध करने वाली नहीं रही । देश की स्वतन्त्रता पर कवियों ने अपनी प्रसन्नता का अभ्य चनाया और जब वापू का हत्याकाण्ड हुआ तो श्रद्धाञ्जलियाँ चढ़ाई गई । निश्चित ही वापू की हत्या मानवता और देश की आत्मा की हत्या थी, पर शोक-विह्वल उत्तार ही कवियों के मुख से उदगीण हुए, प्रयोगशीलता की मनोवृत्ति उत्पन्न नहीं हुई । इसके बाद पंचशील का सबल लेकर भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्रभुत्व-यात्रा का अभियान प्रारम्भ हुआ जिसका उपसंहार भारत-चीन सीमा युद्ध के रूप में हुआ । यह कोई भी नहीं मान सकता कि देश की पंचशीलता हिंदी काव्य में प्रयागशीलता का पर्याय बन गई है ? फिर इस आन्दोलन के प्रेरणा-स्रोत क्या हैं ? जब परिस्थितियाँ अनुवर्ध थी, तो यह कैसे फूला फला ? क्या समाज की मनस्थिति के प्रति यह वस्तु लाज दी गई है ?

इस सदस्यों में प्रयोगवादों मूक नहीं हैं । उनका कथन है कि द्वितीय महायुद्ध का वरदान विषय को अन्तरसंधर्ष के रूप में मिला । ज्ञान विज्ञान व विकास से समाज में बौद्धिकता आई व्यक्तिगत चेतना के अतिरिक्त उन्हें आत्मकेन्द्रित बना दिया, अणु बम्बों की भाँति व्यक्तिगत व्यक्तित्व का भी विखण्डन हुआ और सश्लिष्टता टूटकर बिखर गई । जीवन की अनवरुद्ध धारा पण्ड-खण्ड हो गई । व्यक्तिक्षण के सुख में ही

परमता की अनुभूति करने लगा, जीवन के सघष ने उनकी भावनाओं और संवेदना पुंजों को सुखा दिया और वह बौद्धिक हो गया, जीवन की असफलताएँ, निराशाएँ, कुण्ठा और अतृप्तियाँ—बढ़ती गईं इन्हे वाणी देने के लिए नये प्रयोग वाञ्छित थे, अतएव समीक्षकों के विरोध करते हुए भी प्रयोगवादी काव्य रचा गया, जिसमें उपयुक्त सारी वस्तुएँ प्रतिबिम्बित हुईं ।

निश्चित ही स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारा जीवन अधिक उलझा है क्रिया व्यापारों में भी कुछ विखराहट आई है, अंतरसंघर्ष और बौद्धिकता भी किंचित बढ़ा है, पर इतनी नहीं कि उसमें अबले ही एक साहित्यिक आन्दोलन के प्रवर्तन करने की शक्ति हो । आज का समाज छायावादी या प्रगतिवादी समाज से निश्चित कुछ अधिक प्रतुष्ट है, मँहगाई, वकरी खाद्य समस्या, उत्तरदायित्व हानता बढ़ती हुई जनसंख्या आदि के कारण उसमें जटिलताएँ भाँजा गई हैं, उनके व्यक्तित्व में अशत सघष की ज्वाला में पिघले हैं पर आज भी उसमें वह मनोवृत्ति नहीं जो इस युग के काव्य की है । प्रगतिवादी युग में कवि और जाता अनुभूति और अभियोजना के एक पथ से गुजर रहा था पर आज काव्य जन संवन्ना और अभिव्यंजना दोनों ही उपबला पर समाज से पथक होकर चल रहा है । समाज ने उसका बहिष्कार भी किया उपेक्षा और निंदा भी की पर कवियों के साहित्यिक प्रयास बंद नहीं हुये । यह दूसरी बात है कि प्रयोगवाद की प्रयोगशीलता अब जन संवेदना के निकट आती जा रहा है ।

श्री लक्ष्मीकांत वर्मा इस सद्भम में मनुष्य मनोवैज्ञानिक सन्नमण के कारण सामाजिक एवं संस्कृतिक मूल्यों के विघटन की बातें करते हैं और इन्हें ही प्रयोगवादी काव्य के मूल प्रेरणा स्रोत मानते हैं किंतु महासम्राज्य में स्थितियाँ जितनी पश्चिमी संसार के लिये सत्य हो सकती हैं उतनी भारतीय समाज के लिये नहीं वस्तुतः प्रयोगवादी कवि कुछ तो स्वयं सन्नत रहें हैं और कुछ मात्रा में उन्हे पश्चात्य कलावादी आन्दोलनों का सहारा मिल गया अतः वे इस दिशा में विशेष सन्निय हो उठे ।

इस पुस्तक के परिशिष्ट में सक्षप में उन पश्चात्य काव्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिनसे हिन्दी के प्रयोगवादी नये कवि, अकवि आदि विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं ।

## प्रथम तार सप्तक

### प्रयोगमूलक दृष्टिकोण

#### [ १ ] वैयक्तिक कुण्ठाएँ

प्रथम तार सप्तक (१९४३) के प्रथम कवि गजानन माधव मुक्तिबाध ने अपने प्रेरणा स्रोतों को स्पष्ट करते हुए लिखा है—जीवन में निम्न मध्यवर्गीय

मास्टरी पलने में पड़ी है। — मेरे बाल मन की पहली भूख सौन्दर्य और दूसरी विश्व मानव का सुख दुःख—इन दोनों का सघन मेरे साहित्यिक जीवन की पहली उलझन थी। मेरी हर विकास स्थिति में मुझे घोर असंतोष रहा है। मानसिक द्वन्द्व मेरे व्यक्तित्व में बद्धमूल है। यह मैं निकटता से अनुभव करता आ रहा हूँ कि जिस क्षेत्र में भी मैं हूँ वह स्वयं अपूर्ण है और उसका ठीक ठीक प्रगटीकरण हा नहीं हो रहा है। फलतः गुप्त अशांति मेरे मन के अन्दर घर किये रहती है।'

### [२] वैचैन मन की अभिव्यक्ति

इस प्रसंग में मुक्ति बोध जी का बयान है कि 'मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढने वाले वैचैन मन की अभिव्यक्ति हैं। उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन स्थिति में छिपा है।'

उपयुक्त उद्धरणों को पढ़कर यह अच्छी तरह से देखा जा सकता है कि प्रयोगवादी काव्य की रचना के निगमन स्रोत कहाँ हैं—देश की समसामयिक परिस्थितियों में या कवि विशेष के व्यक्तिक जीवन में। और इन निजी जीवन की अशांत, निराशा उदास परिस्थितियों में किस प्रकार के उदात्त काव्य की सजना सम्भव है।

### [३] जीवन परिपाटियों में घोर वैषम्य

प्रयोगवाद के सूत्रों के सकलनकर्ता 'अज्ञेय' का दृष्टिकोण भी इस सन्दर्भ में देख लेना आवश्यक है। वे यह मानकर चलते हैं कि पहले 'काव्य एक छोटे से समाज की आती थी। उस समाज के सभी सदस्यों का जीवन एक रूप होता था, अतः उनकी विचार सजाजनाओं के सूत्र भी बहुत कुछ मिलते जुलते थे कोई एक शब्द उनके मन में प्रायः समान चित्र या विचार या भाव उत्पन्न करता था। आज काव्य के पाठकों की जीवन परिपाटियाँ में घोर वैषम्य आ गया है। एक ही सामाजिक स्तर के दो पाठकों की जीवन परिस्थितियाँ इतनी भिन्न हो सकती हैं कि उनकी विचार सजाजनाओं में समानता ही नहीं। ऐसे शब्द बहुत कम हैं जिनमें दानों के मन में एक ही प्रकार के चित्र या भाव उदित हो। यह आज के कवि की सबसे बड़ी समस्या है। साधारणीकरण और कम्यूनिकेशन (निवेदन) की समस्या है। और कवि को प्रयोगशीलता की आर प्रेरित करने वाली सबसे बड़ी शक्ति यही है।'

### [४] भाषा की अपर्याप्तता

इस प्रसंग में अज्ञेय जी का बयान है कि—'भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतो से अक्षरों और सीधे—तिरछा लकीरा छोटे बड़े टाइप से, सीधे और उलटे अक्षरों से लोगो और स्थानों के नामों से, अक्षरों या कवियों से सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को, पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।'

### [५] उलझी हृद्यी सवेदनार्थ

अपने जीवन की उलझी मवेदनाओं की अभिव्यक्ति में कवि को पूरी सफाई नहीं मिली— जहाँ वह पाठक के विचार संयोजक सूत्रों से नहीं छू सका, वहाँ उसे पागल, प्रलापी समझा गया या अर्थ का अनर्थ पा लिया गया । बहुत से लोग इस बात को भूल गये कि कवि आधुनिक जीवन की एक बहुत बड़ी समस्या का सामना कर रहा है—भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सतकता की बँचुल फाटकर उसमें नया अधिक व्यापक अधिक सारगर्भित अर्थ भरना चाहता है—और अहंकार के कारण नहीं इसीलिये कि उसके भीतर इसकी गहरी मांग स्पष्ट है इसलिये कि वह 'यक्ति सत्य' को 'यापक सत्य' बनाने का सनातन उत्तरदायित्व अब भी निभाना चाहता है ।'

### [६] जीवन की जटिलता

उन्होंने भाषा समस्या को आधार बनाकर इस क्षेत्र में व्याप्त अस्पष्टता पुर्बोधिता आदि के विषय में भी अपना वक्तव्य देते हुये कहा कि 'जीवन की जटिलता को अभिव्यक्त करने वाले कवि की भाषा में किसी हद तक गूढ़ अलौकिक' अथवा दीक्षा द्वारा गम्य (Csoteic) हो जाना अनिवार्य है किंतु वह उनकी शक्ति नहीं विवशता है धर्म नहीं आपदधर्म है । इसमें कोई पूछे कि कवि अपनी विशेषताओं को क्या समझ पाय है ? यदि समझ पाय है तो वे क्या नहीं स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर रहे, क्यों नहीं अपने अनुभूत सत्य को स्पष्ट रूप से व्यापकता में लाते । जटिलता को जटिल अलौकिक रूप में प्रस्तुत करना—कवि धर्म नहीं हैं यह उनकी विवशता नहीं, दृष्टि बोध की कमी है फिर जटिलताएँ भी क्या हैं, जरा उनका भी स्वरूप उन्हीं के शब्दों में देखिए—

### [७] यौन वजनार्थ ✓

✓ आधुनिक युग का साधारण यक्ति यौन वजनाओं का पुंज है । आज के मानव का मन यौन कल्पनाओं से लदा हुआ है और सब कल्पनायें दमित और कुठिल हैं । उपमान सब यौन प्रतीकार्थ रखते हैं । और इस आंतरिक संघर्ष के उपर जैसे काठी बसकर एक बाह्य संघर्ष भी बठा हुआ है जो यक्ति और व्यक्ति का नहीं यक्ति समूह और यक्ति समूह का बर्गों और श्रेणियों का संघर्ष है । व्यक्तिगत चेतना के ऊपर एक वगगत चेतना भी सदी हुई है और उचितानुचित की भावनाओं का अनुशासन करती है जिससे एक दूसरे प्रकार की वजनाओं का पुंज खड़ा होता है और उनके साथ ही उनके प्रति विद्रोह का स्वर जागता है ।'

यह वक्तव्य युग के अतिसंशुद्ध के विफलपण की ध्याया है । अन्य जी के अनुसार यौन पुंजों और वगचेतना के संघर्षों की जटिलता ही यक्ति का सत्य है । उनके ही शब्दों में कवि का यह कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है । यह भी कहना ठीक

होगा, कि वह सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं, व्यापक है और जितना ही व्यापक है उतना ही काव्योत्पत्तिकारी है।" जब अनेय जी की दृष्टि से दमित कुण्ठित काम वासनाओं की 'सामूहिक अचेतन' से सघन की जटिलता को ही जटिल, दुर्बोध, अलौकिक वाणी में प्रकट करना—कवि धर्म है तो इस सदर्भ में मुझे कुछ नहीं कहना।

### [ ८ ] प्रगतिशीलता का काव्य

यहाँ हम अनेय जी की एक प्रयोगवादी कविता प्रस्तुत कर रहे हैं जो उनके कवि सत्य की हम सही सही सूचना देगी जिसकी वे इतनी वकालत कर रहे हैं। इस प्रसंग में उनकी 'धैर्यघन गल्हा वासी कविता बहुत उद्धत की जाती है किंतु 'बाहू मेरे रुके रहे' शीघ्रक रचना भी क्या बुरी है—इसमें उनका 'मुरति धर्म' देखिए—

किसी सूनी घाटिका की दूब से आवत  
विस्मृता सी, स्मरण की नीरव उसासों के सिरिस स  
परस से भी सिहर सकुचाती  
बीथिका के उभय तट मानच से अवलम्बिता  
दो लताओं के प्रलम्बित अकुरो स  
प्राण लोनों के  
व्यथ करके शब्द का गन्दाय को स्वर को  
भूलकरके प्रस्फुटन, विकसन, फनागम  
अहेतुक आशवासना से  
बस, झुके रहे।  
बाहू भरे घेर कर तुमको रुके रहे।

यहाँ साधारण शब्दों और प्रतीकों के प्रयोग में कवि की विवशता देख लीजिए यदि वह ऐसा करता तो लोग उसकी काम-कुंठाओं का समझ लेते और समझ लेते तो जटिलता कहा रहती? आधुनिक जीवन में उसका रहना परमावश्यक है। केवल इसलिए अनेय जी ने यहाँ धर्मसाध्यता के द्वारा, नये प्रतीका शब्दों और पदों को गठ कर अपने कवि-सत्य की रक्षा की है। यही उनका साधारणीकरण प्रेषणीयता और कम्युनिकेशन का रहस्य है। इसी सग्रह में कुछ ऐसे कवि भी हैं जिन्हें यह कवि-सत्य, और कथ इष्ट नहीं। जो इस प्रकार के काव्य को या तो उच्छ्वास कहते हैं या Patterns, जो जीवन की प्रगतिशीलता में आस्था रखते हैं और उसका अथ-कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में देखते हैं व्यक्तित्वहीनता में नहीं जिन्हें मनुष्य के मानवीय रूप से प्रेम है पशु रूप में नहीं। जिनमें जीवन की भौतिक परिस्थितियों

१ हम लोगों का एक मात्र धर्म है—मुरतिधर्म,

उस अनयज का एक मात्र सुख है—मयुन सुख—'वग भावना'



धीरे मन स्थितियों को मोड़ने और उनसे उपर उठने की शक्ति है, उनमें रमने की विवशता और अशक्तता नहीं जा जीवन की जटिलताओं को धुलकर कहते हैं उन पर अस्पष्टता का चिलमन नहीं डालत जो ऊपरी अहमयना का सच्चा स्वरूप जानकर पुकारकर कहते हैं—

अपने मन का पहचान गया है वह स्वरूप  
लगता है कितना जोड़ा अपना धुद्र प्यार  
कितना दुबल जाना है अपना अहकार ।

—नेमिचंद्र ममता के बधन ॥

नेमिचंद्र भारत भूषण अग्रवाल प्रभाकर माचवे, गिरजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा इसी श्रेणी के कवि हैं। नेमिचंद्र जी का बधन है कि जिस दिन कवि सचेष्ट भाव से अपनी चेतना को पूणरूप से सामाजिक बना सकेगा, उस दिन कविता फिर अपने प्राकृत रूप में निखर उठेगी। भारत भूषण अग्रवाल केवल मानसवाद को ही उन्नति का रहस्य मानते हैं किंतु उन्होंने अपने को स्वप्नदर्शी और पलायनवादी कहा है। उन्होंने लिखा है कि संसार को मज्जा मानकर उसमें कम करना क्योंकि वास्तविक क्षमता और सामर्थ्य का अपक्षा रखती है, इसलिए मैंने कवितायें लिखकर माना रचन में अपनी अभिलाषायें पूरी की और संसार को मिथ्या सिद्ध किया। कम से पलायन ही मेरी कविता का स्पदन रहा। जापकी प्रयोगशीलता का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है—

५ नव विचार, नव ज्ञान रीति,  
नित-नित नवीन जावन के स्वर  
पर प्राचीना अब भी है वाणी की वीणा  
इतना ही नहा—  
अप्सरा बना डानी तूने  
धोड़प-वर्षीया रूपवती वह पढी लिखी लडकी पागल  
तू सुनता रहा मधुर नूपुर ध्वनि  
यद्यपि बजती थी चप्पल ।

— अपने कवि से'

## [९] माया की अनगढ़ प्रयोगशीलता

उपयुक्त कविता में आधुनिक अधी प्रगतिशीला पर व्यस्य है। 'वाणी की वीणा' अल्पा प्रयोग है किंतु इसकी तुलना में 'मधुर नूपुर ध्वनि' को चप्पल ध्वनि में सुनना सुरक्षिपूण नहीं है। विशेषता यह है कि अस्पष्टता, दुर्बोधता भावाभिव्यक्ति में जटिलता कहीं नहीं मिलती। यही वस्तु प्रभाकर माचवे की रचनाओं में मिलती

हैं। वे 'कविता और पाठक' के बीच में सीधा भाव विनिमय' मानने के पक्ष में हैं। उनके अनुसार "व्यक्तिगत जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं जो अत्यधिक सामाजिक आशय से गर्भित रहते हैं। उनमें मानव और प्रकृति, प्रकृति और सस्कृति के सतत सघर्ष के गति चित्र ऐसा अशाब्दन होता है कि उसकी पुनरावृत्ति असम्भव है। कविता गत मौलिकता का अर्थ यहाँ अशाब्दन है। वह अशाब्दन है सामाजिक परिपाश्वर्य में व्यक्ति की मानसिक प्रभाव प्रक्रिया वेदना-सवेदना, प्रगति-अप्रगति आदि का प्रामाणिक विम्व-चित्रण।' शक्ति-शक्तियों में अभिघामूलक लक्षण की अपेक्षा के व्यजना शक्ति पर विशेष आस्था रखते हैं। भाषा में नये प्रयोगों के वे भयभीत हैं और इस क्षेत्र में निराला, 'नवीन' तथा नरेन्द्र शर्मा का अपना आदर्श मानते हैं। व्यजना शक्ति को महत्ता तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण की अपनाकर चलने के कारण आपने व्यंग्य की रचना में विशेष सफलता प्राप्त की है—'दशोद्धारको से' शीर्षक रचना का कुछ अंश उदाहरण रूप में यहाँ दिये—

बाहर अध नग्न पीडा  
भातर श्रीडा लवरज हरम  
कहणा के जागन में नेता  
दे थोड़ी सी भेज शरम।

यहाँ कहणा के आगन में थोड़ी सी शर्म' भेजने का नवीन शोभन, सवेद्य और प्रगतिशील प्रयोग है। पर सामान्य रूप से माया-योजना अनगढ़ ही है।

[१०] हल्के रंगों के आवरण से युक्त चित्र विधान

गिरजा कुमार मायूर वस्तु विधान का जपेक्षा ऐकनिक को विशेष महत्त्व देकर चलते हैं। प्रथम तार सप्तक के कवियों में शिल्प योजना पर इन्होंने ही गम्भारतापूर्वक विचार किया है। स्वयं अपने चित्र विधान की विशेषताओं को उदघाटित करते हुए आपने लिखा है कि वातावरण के चित्रण में मैंने डिटेल (Detail) में रंगों का आधार विषय रूप से रखा है किन्तु मैं चित्र को सदा हल्के रंगों की छाहों के आवरण में लिपटा पसन्द करता हूँ क्योंकि यथाय चित्र के सभी डिटेल में कला की दूरी से देखता रहा हूँ। मेरा यह विश्वास है कि अत्यधिक गहरे रंगों का प्रयोग कला में प्राचीनता (Mediaeval Fraint) का द्योतक है। क्लासिकल विषयों पर गभीर शैली (Grand Style) में लिखी कविताओं में मैंने गहरे रंग प्राचीनता लाने के लिए रखे हैं। यहाँ मैंने आधारभूमि विशालकाय कर दी है और डिटेल कम। डिटेल मैंने रोमानी कविताओं में ही अधिक रखा है।

मायूर जी ने शब्द-याजना पर भी प्रकाश डालते हुए लिखा है कि वे रोमानी कविता का हिन्दुस्तानी के छोटे और मीठी ध्वनि वाले शब्दों में लिखना पसन्द है और क्लासिकल कविताओं में आयुगुण (Aryanism) लाने के लिए

और गभीर ध्वनि वाले शब्द रखते हैं। इस प्रकार वे शब्द विन्यास के वातावरण को रूप भावानुकूल बनाने के पक्ष में हैं।

यहाँ हमने एक विशेष अभिप्राय से उनकी चित्र और शब्द विधान सम्बन्धी मायताओं को प्रस्तुत किया है। वह अभिप्राय कवि की प्रयोगमूलक दृष्टि से अनुबधित है। वह नये प्रयोग न केनवादियों की भाँति अनगढ़ या मात्र प्रयोगों के लिए न करके वस्तु व्यञ्जना के परिवेश और प्रकृति को व्यञ्जित करने के लिए ही करता है। इस भूमिका पर मायुर जी न जितने भी नय प्रतीक विम्ब या शब्द प्रयोग किये हैं, वे विशेष रूप से मायिक और राधक हैं।

यह फूल चादनी, रूप ध्यार  
आँसू के अनगिन ताजमहल  
रागों की ठहरी गूँज  
असम्भव सपनों की सुन्दर मिठास  
स्रष्टा तक मिटना कलाकार मिटने से  
पर गीता के इन पिरामिडों  
इन धौलागिरि सुमेरुओं पर  
मिट जाती स्वयं मृत्यु आकर।

- अधूरा गीत।

यहाँ इस प्रगीत में आँसू के अनगिन ताजमहल रागों की ठहरी गूँज गीतों के पिरामिडों धौलागिरि सुमेरुओं पर मृत्यु का मिटना सुन्दर मिठास आँसू नवीन साधक और सुन्दर प्रतीक प्रयोग हैं। ये अपनी सकेतमयता, प्रकृत जोर ऐतिहासिक विशेषताओं से अधूरे गीत की जयगमता को विज्ञापित करने में समर्थ हैं। इसी प्रकार उनके अर्थ प्रगीतों में वायु की सामो भरी एकांत खिड़की 'रातो जगा सूना पलग ठडा द्वीप—कवि की मन स्थिति को उजागी निराशा व्याकुलता स्मृति विरह दुःखता आदि सञ्चारिका की सूक्ष्म अभिव्यञ्जना में सुदक्ष हैं। ऐसे प्रयोग हमें मायुरजी के पहले प्रगतिवादी और छायावादी कवियों में भी नहीं मिलते।

### [११] मुक्त छंद का नया तंत्र

यहाँ हम श्री मायुर जी के मुक्त छंद सम्बन्धी विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। उन्होंने लिखा है कि मुक्त छंद का मने सम्पूर्ण विधान रचा है। मुक्त छंद को दो भागों में विभक्त किया है—वर्णिक और मात्रिक तथा इनके रूपांतर। वर्णिक में मैं कवित्त के विरामों को उनके रूपान्तर सहित लेकर चला हूँ। यह आवश्यक नहीं रक्खा कि कवित्त के पूर्ण विरामों पर ही रक्ति समाप्त हो अपितु अर्ध विराम भी शुद्ध माने हैं जब तक वे अनुच्चरित वण (Unaccented Syllable) पर समाप्त

न होकर उच्चरित (Accented) पर समाप्त हात हो। इस भाति कवित्त क विरामो का लकर वित्तने ही प्रकार की मुक्त छन्द पक्तियाँ निमित्त की हैं। सवय के विरामो पर म्थित एक नय प्रकार का बहुत सगीतमय मुक्त छन्द लिखा है— ( आज है केसर रग रग का)। एक कविता म एक प्रकार का मुक्त छन्द प्रयुक्त होना आवश्यक समझता हू। म्ति उच्चरित वण वि यास (Syllable) से पक्ति आरम्भ हुई तो समस्त पक्तियाँ उच्चरित से ही प्रारम्भ होनी चाहिए। विरामात् पक्तिया म यह नियम अनि वाय कर लिया है। धारावाहिनो पक्तियो म भी प्रथम पक्ति का अघ विराम द्वितीय पक्ति म लेने का नियम रक्खा है। पक्तियों क विरामो की ध्वनि मात्रायेँ पूणत सम एव शुद्ध होना अत्यत आवश्यक समझना हू। इन नियमो के विशुद्ध लिखा गया मुक्त छन्द अशुद्ध मानता हू।

इम लम्ब उद्धरण का हमन कवल यह प्रदर्शित करन के लिए उद्धृत किया है नि प्रयोगवाणी बहु जाने वाले कवि मुक्त-छन्दा का सचेष्ट प्रयोग करत हैं। इस सम्बन्ध म व अपन पहल स कतिपय विशिष्ट नियम बनाकर चलत है। तात्पय यह कि इनके छन्द भावनाओ के माँचे म डले न होकर पहल से निर्धारित नियमो के अनुसार बन है। मायूर जी न अपन मुक्त छन्द के तन म ही कविताएँ डालने का प्रयास किया है अथात् छन्द प्रमुख और वस्तुगत सवेदनाएँ गीण हा गई हैं। ऐसा सब्र हुआ है एसा मरा न ता कहना है और औराग्रह ही है, वही कही ऐसा अवश्य हुआ है और मायूर जी अपन मुक्त-छन्द विधान क सक्ल्पबद्ध आग्रह म मूल वस्तु की उपस्था कर बठ है। इस प्रकार प्रथम तार सप्तक म सबसे अधिक काय कला-यक्ष की वारीकिया पर मायूर जी ने हा ध्यान दिया है।

## (१२) नान सीरियस

तार सप्तक के छठे कवि रामविलास शर्मा हैं। आप पहले प्रगतिवादी समा चोचक हैं बाव म इसा काव्य धारा के एक कवि। आपकी सारी कविताएँ पढन पर कवि का आत्म कथन सिद्ध हो जाता है कि वह इन कविताओ की रचना म 'सीरियस नहीं रहा। इस सग्रह म सफलिन प्राय सभी कविताएँ प्रगतिवाणी हैं। 'जिनमे कही कवि जाति का फमत काटन का स्वप्न दखता है (काय क्षत) और कही जन सत्ता की विशाठ नगरी निमाण करन का उदबोधन देता है (कवि)। चाँदनी, 'प्रत्युष' के पूव कतफा' मिलहार गुरुतेव की पूण्य भूमि म' आदि रचनार्ये वणनात्मक है। य सामान्य है, विशपता कुठ नहीं है। सत्य शिव सुन्दरम म मामिक व्यग्य है। इसी म इकिनात्र जिन्दावाद वदेमातरम और हाथी घोडा पालकी जय क हैयालाल की जमी धरम्य और हास्य परक पदावला का प्रयाग किया गया है। परिणति म कवि ने दुख की प्रत्येक अनुभूति म आत्मा का बाध किया है और 'हृदिया का ताप',

विज्ञान कवि तथा उनका पुत्र' समुद्र के तिनारे आदि रचनाओं में यह विन्यासित किया है कि दुःख के इस कोषाहल में जय का स्वर ही ऊँचा उठ रहा है। गागर की प्रत्येक लहर सामा के बघन ताड़ रही है। उनकी रक्तिया इस प्रकार हैं

दुःख के इस हहर हहर में भी  
ऊँचा उठता है जय का स्वर,  
सीमा के बघन ताड़ रही है  
सागर की प्रत्येक लहर।

शमा जी की सभी रचनाएँ विचार प्रधान हैं और उनके प्रगीता में प्रगतिवादी गद्यात्मकता भी निहित है। वर्तमान जीवन के प्रति असंतोष और भविष्य में आस्था के स्वर ही प्रमुखतः उनका प्रगीता से मुखरित हात हैं। प्रगतिवादी चेतना और काव्य के विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। अनएव यहाँ उसकी पुनरुक्ति करना दोष माना जायगा।

इस सप्तक के अंतिम कवि अज्ञेय हैं। आपके विषय में कुछ चर्चा हम प्रारम्भ में कर चुके हैं। प्रारम्भिक कवि मक्ति बाघ और अंतिम अनेक — दो ही इस सप्तक के ऐम कवि हैं जिन्हें हम प्रयागशील कवि कह सकते हैं। शेष सभी प्रगतिवादी मना-दृष्टि को लेकर चलते हैं।

### (१३) प्रयोगवाद एक अयोजनाबद्ध आन्दोलन

हिन्दी साहित्य में जो यह प्रवाद चला गया है कि प्रथम तौर पर सप्तक से प्रयागवाद का प्रारम्भ हुआ, यह मिथ्या है। वास्तुतः जय जी इस प्रकार की रचनाओं के सफलकर्ता हैं। आरम्भ में उनका इस प्रकार का कोई दृष्टि कोण भी नहीं रहा। द्वितीय तार सप्तक की भूमिका में उगाने जिसे बात पर सबसे अधिक धुमा फिराकर चचा की है वह यही है कि प्रयागवाद के प्रवर्तन का कार्य मेरे मत्वे मरना मरे साथ ज पाय करना है। मैंने उसका प्रवर्तन नहीं किया। हम भी यह स्पष्ट रूप से मानते हैं कि योजनारहित रूप से जय जी ने प्रयागवाद का प्रवर्तन नहीं किया। वास्तुतः १९३६ ई० में जब लदन में अतियथावधानी चित्रा की प्रदर्शनी हुई थी उसका चचा विश्व स्तर पर समाचार पत्रों में भी हुई थी उसी समय क. आस पास नलिन विलोचन शर्मा ने प्रतीक बहुल कुछ रचनाएँ लिखी थी। धीरे धीरे प्रतीकों की बहुलता के प्रति नये कवि आकृष्ट हुए और वे पश्चात्य आधुनिक विचारधाराओं से प्रभावित रचनायें लिखने लगे। इस कार्य में उनके व्यक्तित्व जीवन की असंतोष पूर्ण मन-स्विक निराशा उत्पत्ती और व्यक्तियों ने भाग दिया, पन्तु जिन प्रतीकों का उद्धान प्रयोग किया वे बौद्धिक उत्पत्ति और यौन भावनाओं से सम्बन्धित हो गये। इस प्रकार की अव्यवस्थितता और प्रयोगमूलकता अज्ञेय जी

तथा मुक्ति बोध जी के काव्य में पहले अधिक दिखाई दो, अतएव इनके माध्यम से प्रयोगवाद का प्रवर्तन भले न हुआ हो पर सूत्रपात अवश्य हुआ है जिसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

प्रथम तार सप्तक हिन्दी साहित्य में विशेष चर्चा का विषय रहा है और अज्ञेय जी के काव्य को देखकर लोग न इस प्रयोगवादी भनावृत्ति की तीव्र निंदा और विरोध किया है। अज्ञेय जी न इसीलिए द्वितीय तार सप्तक की भूमिका में लगाने लगे प्रायः सभी आरोपों का खण्डन करके अपनी सफाई पेश की है।

## दूसरा सप्तक (१९५१ ई०)

### [१४] प्रयोगवाद आत्म सत्य का अवेपण

प्रयोगवाद के सद्म में अज्ञेय जी कहते हैं कि प्रयाग का कोई वाद नहीं है। हम वादा नहीं रहे नहीं है। न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है। कविता भी अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हम 'प्रयोगवादी' कहना उतना ही साथक या निरर्थक है जितना हम 'कवितावादी' कहना। उनका कहना है कि कवि आत्म सत्य का अवपी है, कविता आत्माभिपक्ति करने का माध्यम है। इस माध्यम को अपनी आवश्यकता के अनुरूप श्रेष्ठ रूप में प्रयुक्त करने का उसे पूरा अधिकार है। वे यह भी कहते हैं कि बिना माध्यम की विशेषता उसकी शक्ति और उसकी सीमा का परखे और आत्मसात किए उस माध्यम का श्रेष्ठ उपयोग ही नहीं सकता<sup>१</sup>। उपयुक्त दोनों वस्तुएँ ही ऐसे हैं जिनसे साहित्यिक जगत में मतभेद नहीं रखा जा सकता। कविता का कोई वाद नहीं होना, यह बात भी सच है और वह मान्य है, इस भी स्वीकार करने में हिचक नहीं होनी चाहिए पर प्रश्न यही समाप्त नहीं हो जाता। कविता का लाकरजनकारी स्वरूप भी कुछ हाता है। व्यक्तित्व और प्रतीक बहुलता उसके नित्य लक्षण नहीं उसका अस्तित्व कवि सापेक्ष न होकर जन-सापेक्ष है, अतएव कविता रूपी माध्यम ऐसा हो जो मूल मनु को आवत न करके उस स्पष्टतापूर्वक और सुगम रीति में पाठकों तक पहुँचा सके। अज्ञेय जी इस पक्ष की ओर दृष्टिपात नहीं करते जबकि उनकी जालोचना का दृष्टिकोण उनके काव्य का यही पक्ष विशेष रहा है।

### [१५] परम्परा एक गहरा संस्कार

परम्परा की चर्चा करते हुए अज्ञेय जी कहते हैं कि 'जो लोग प्रयाग की निष्ठा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि परम्परा, कम से कम कवि के लिए, कोई ऐसी पोटली बांधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले। (कुछ आलाचका के लिए भूल ही

१ दूसरा सप्तक, भूमिका पृ० ६।

२. तदेव।

बैसा हो ।) परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है, जब तक वह उस ठोक बजाकर तोड़े मरोड़कर देखकर आत्मसात नहा कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा सस्कार नहीं बन जाती कि उसका चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर उसका निर्वाह करना आवश्यक न हो जाय । कवि तो निरंकुश हात हैं वे स्वयं अपनी लीक और परम्परा का स्वयं निर्माण करते हैं यह एक सामान्य तथ्य है । परम्परा एक जड़ नहीं समाज के साथ क्रियमाण वस्तु है । प्रश्न पुरानी परम्परा के त्याग से उतना सम्बन्धित नहीं है जितना नई बनन वाली परम्परा के समाज द्वारा ग्रहण से अनुबन्धित है । कोई भी चार कवि या साहित्यिक भिन्नकर नई परम्परा का निर्माण नहीं कर सकते, नई परम्परा वह है जो जनता द्वारा जात्मसात कर ली जाय यदि वह जन सामान्य के द्वारा समर्थित और गहीत नहीं होती तो वह व्यक्तिक विचार धारा हो सकती है परम्परा का स्वरूप धारण नहीं कर सकती । यहाँ कई प्रश्न एक साथ उठाने जा सकते हैं । क्या सामान्य जनता को नई संस्कृति का प्रतिमापक माना जा सकता है ? सामान्य जनता का अर्थ क्या है ? क्या यह सम्भव नहीं है कि तत्कालीन समाज नयी परम्परा को न समझ सके पर कुछ समय में लोग अपने सस्कारों का परिभाजन करके उसे ही मान्यता देन लगे ? इस प्रश्न को अज्ञय जी ने भी उठाया है और छायावाद के उदाहरण दिया है । अपने प्रौढ़ और वभ्रवकाल में छायावादी काव्य जनता द्वारा ग्रहीत नहीं किया गया किन्तु वही काव्य आज महत्वपूर्ण और अपूर्व माना जान लगा है । क्या प्रयोगवादी काव्य के विषय में भी यह बात सत्य नहीं हो सकती ? इस अंतिम प्रश्न पर हम किंचित गहराई में जाकर विचार करेंगे । छायावाद का प्रमुख विरोध हुआ था उसकी छत्रगत स्वच्छन्दता, परम्परा से हान अपस्तु योजनाओं तथा नूतन पदावलियों के कारण । विरोध कर्त्ताओं में द्विवेणी युगीन सस्कारों के व्यक्ति और आचार्य । ये काव्य को उपयोगितावाद की कसीटी पर देखना चाहते थे पर छायावाद में भावात्मक सौन्दर्य का निरूपण प्रमुख माना गया था स्थूलता का परित्याग करके सूक्ष्मता वायवीयता और मानवीकरण की प्रवृत्तियों के साथ आत्माभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया था । एक दृष्टि से काव्य के वस्तु और शिल्प दोनों ही परम्परागत पक्षों का छायावादी काव्य में कायाकल्प हुआ पर क्या उसकी मूल मवदना बदली ? परम्परामिद्वि भावात्मकता के स्थान पर कोई अन्य वस्तु आई ? उत्तर है नहीं । पान, और शाखाएँ बढ़नी हैं पर जो मूल वस्तु रसात्मकता है उसका तिरोभाव कभी नहीं हुआ ।

### [१६] बुद्धि रस

प्रयोगवादी रसात्मकता की जगह बुद्धि रस की अनोखी बात करस है । बुद्धि रस की भास्वादनियता के लिए अभी तक हमारे सस्कार नहीं बन, हो सकता है आगे

बन जाय या स्वयं यह विभक्त जन निरपेक्ष होकर मर जाय, जो कुछ भी हा, जब तक हमारा सस्कार नहीं बाले, जब तक हम प्रयोगवादी काव्य पढन स किसी प्रकार का आह्लाद प्राप्त नहीं होता, एक बार से द्वितीय बार पढन की इच्छा नहीं होती, तब तक ता हम इस विलक्षण वस्तु का विरोध निस्सकोच भाव स कर सकत हैं। जहा तक इसके वस्तुगत और कलागत उपकरणों का प्रश्न है यदि इनम किंचित भी सवेदनशीलता है अथ स्फीति का सामध्य और श्लीलता है, तो हम ऐसे प्रयोगों का सह्य स्वागत करेगे। हम अज्ञेय जी के इस कथन से पूणत सहमत है कि "प्रयोग निरंतर होत आये हैं और प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई भी कला, कोई भी रचनात्मक काय, आग बढ सका है। किंतु यहा प्रयाग का अथ रचनात्मक काय से ही है, असफल प्रयोगों से नहीं सफल प्रयोगों से है जिसे स्वयं अनेय जी स्वीकार करत हैं। प्रयोगवाद का जब भी विरोध किया जाता है, तब उसके सफल प्रयोगों के कारण नहीं, प्रत्युत असफल प्रयोगों के कारण ही किया जाता है। १९४३ से १९५३ ई० तक प्रयोगवादी रचनाओं का प्रयागकाल रहा है, जब असफल प्रयोग अधिक और सफल बहुत कम हुय है। १९५३ ई० के आसपास नयी कविता प्रयोगवाद की क्रीड स पन्ना हुई जिममे प्रयोगों का नयापन है किंतु उनमे सायकता अधिक असायकता कम है। स्वयं अनेय जी क काव्य म इस तथ्य के प्रमाण मिलते है। नयी कविता क समीक्षकों तथा कवियों न भी स्वयं प्रयोगवाद की १० वष की यह जीवन यात्रा प्रयोग-मूनक ही मानी है।)

### [१७] प्रयोग एक दुहरा साधन

अनेय जी न स्पष्ट लिखा है कि प्रयोग का हमारा कोई वाद नहीं है। प्रयाग अपने आप मे इष्ट नहीं है वह साधन है और केवल प्रयोगशीलता ही किसी रचना को काव्य नहीं बना देती। इसी और ऐसे कई आधारों पर व अपने 'आपको प्रयोगवादी' कहलाना पसंद नहीं करत। किंतु प्रयोगवाद नाम अब इतना अधिक साहित्य म प्रचलित हो गया है कि कई अब उसे मिटाना भी चाहे तो असम्भव है। फिर इस नाम की कुछ दूरी तक सायकता भी सिद्ध की जा सकती है। स्वयं अनेय प्रयाग को काव्य का दुहरा साधन मानत हैं। उही क शब्द म 'प्रयोग द्वारा कवि अपने सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है, और अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्ति कर सकता है। वस्तु और गिला दोनों ही क्षत्र म प्रयोग फल प्रद होता है। जब प्रयोग की इतनी अधिक महत्ता है तो निश्चित रूप स कवि को कवि सत्य जानने क पूव प्रयोग सत्य जानने वाला बनना पडेगा। इस तरह न सही 'प्रयोगवादी' पर प्रयोग की वस्तु ल परिधि के बाहर वह नहीं जा सकता। प्रयाग से इसे युक्ति नहीं, फिर वह प्रयोगवादी नहीं तो और क्या हुआ? केवल प्रयोगशीलता ही इन कवियों के काव्य



का सृजन भले ि करे पर जिना प्रयागशीलता के वे एक पग खागे भी नहीं बढ़ सकते । ऐसी स्थिति में उन्हें कोई प्रयागवादी कहता है तो चिढ़ना नहीं चाहिए । हम कुछ दूर तक ही अन्य जी का यह कथन ठीक मानते हैं कि 'प्रयाग का महत्त्व कर्ता के लिये चाहे जितना हो सत्य का योज, लगन उसमें चाहे जितनी उत्कट हो सहृदय के लिए वह सब अप्रासंगिक है । किन्तु यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि कवि सत्य का जानने का साधन होने के कारण प्रयोग तो इस काव्य की रचना प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग ही बन जाता है, सहृदय को भी पहले प्रयोग की आत्मा ही समझनी होगी तभी वह कवि सत्य के स्तर तक पहुँच सकता है, बिना प्रयोग को समझे कवि सत्य का आस्वादन सम्भव नहीं फिर गहीता पक्ष में भी प्रयोग का उपक्षणीय कस मान लिया जाय ?

अनेक जी प्रयोग का महत्त्व न देकर उसका द्वारा की गई शोधा के परिणाम को देते हैं । वे यह भी कहते हैं कि अभी हम अवेपी है कवि सत्य के खोजा हैं । उन्हीं की इन उक्तियों को आधार बनाकर हम—यह निष्कर्ष सरलतापूर्वक निकाल सकते हैं कि उनका इस प्रारम्भिक काव्य में कवि सत्य का अभाव है और असफल प्रयोगों की अधिकता है कर्ता के लिये इनका जितना चाह महत्त्व हो सकता है किन्तु सहृदय के निकट ये सब अप्रासंगिक है ।

### [ १८ ] साधारणीकरण अतर्विरोध

अनेक जी साधारणीकरण का भी प्रश्न उठाते हैं और कहते हैं कि न केवल मध्यक के कवि उस मानकर चलते हैं प्रत्युत इसी से प्रयागों की आवश्यकता भी सिद्ध करते हैं । उन्होंने लिखा है कि युग के साथ राग वही रहने पर भी रागात्मक प्रणालियाँ बदल गई हैं । उनकी दृष्टि से इसलिये आज साधारणीकरण की कवि के लिए महान समस्या है । या तो वह यह प्रयत्न ही छोड़ दे सीमित सत्य को सीमित क्षेत्र में सीमित मुहावरे के माध्यम से अभिव्यक्त करे—यानी साधारणीकरण ना करे पर साधारण का क्षेत्र संकुचित कर दे—अर्थात् एक अतर्विरोध का आश्रय ले या फिर वह बहुरक्षेत्र क्षेत्र तक पहुँचने का आग्रह न छोड़ और इसलिये क्षेत्र के मुहावरे से बंधा न रहकर उससे बाहर जाकर राह खोजने का जोखिम उठाए । इस प्रकार वह साधारणीकरण के लिए हाँ एक संकुचित क्षेत्र का साधारण मुहावरा छोड़ने का वाक्य होगा—अर्थात् एक दूसरे अतर्विरोध की शरण लेगा ?—इसी द्वितीय अतर्विरोध का वर्णन करना अन्य जी कवि के लिए आवश्यक मानते हैं । इसी का वे एक उदाहरण और 'यापक दृष्टि भी कहते हैं । वस्तुतः यह निष्कर्ष एक काल्पनिक वस्तु है कवि के सामने यद्यपि युग के अनुरूप कोई साधारणीकरण की समस्या है तो उस उ होने अपने दुर्बोध प्रयोगों के माध्यम से सुलझाने की जगह उस उलझाई ही ज्योता है ।

## [१९] शब्द की नयी रागोत्तेजक शक्ति की खोज

वे भाषा के प्रश्न का भी छेड़ते हैं और कहते हैं कि निरंतर प्रयोग से शब्दों का 'चमत्कार भरता रहता है और उनका चामत्कारिक अथ अभिधेय बनता रहता है। या वह कि कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार की सृष्टि की समस्या बनी रहती है—वह शब्दों को निरंतर नया सस्कार देता चलाता है और वे सस्कार क्रमशः सावजनिक मानस में पठकर फिर ऐस हो जाते हैं कि—उस रूप में—कवि के काम के नहीं रहते।' कवि नित्य नये शब्दों का प्रयोग करे, पर शब्द भी तो साधन है, उनका लक्ष्य चमत्कार की सृष्टि करना नहीं है जबकि प्रयोगवादी कवि शब्दों के साथ चमत्कारिक क्रीड़ा करते हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि 'जब चमत्कारक अथ मर जाता है और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागात्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक सम्बन्ध नहीं स्थापित होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुनः राग का संचार हो पुनः रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है। किंतु साधारणीकरण का यह ध्रामक निरूपण भी है। साधारणीकरण के लिए आवश्यक यह नहीं होता कि अनजान नये दुर्बोध प्रतीकों और नये अस्तित्वों की भीड़ खड़ी कर दी जाय यह काय बौद्धिक व्यायाम की जरूरत रखता है, जब तक उन प्रतीकों और नये प्रयोगों का अर्थ न समझ लिया जाय तब तक उनके साथ साधारणीकरण हो ही नहीं सकता इस प्रकार यहाँ साधारणीकरण भावात्मक नहीं प्रत्युत एक बौद्धिक प्रक्रिया हो जाती है। साधारणीकरण के लिए आवश्यक होता है कि प्रतीकों या नये प्रयोगों सुपरिचित हो वे परम्परा से ठिण्ड भिन्न न होकर उससे अनुबोधित हो, वे व्यक्तिक न होकर सावजनिक या बौद्धिक न होकर भावात्मक हो, तो उनके साथ जनता या सहृदय वर्ग जल्द ही तादात्म्य स्थापित कर सकता है। सुगम गीतों तथा राष्ट्रीय गीतों में इसी प्रकार के उपमानों का प्रयोग आवश्यक होता है। इस तरह के परिचित उपमानों का प्रयोग नये परिवेश में हीन के कारण उनमें आवृत्ति का प्रश्न नहीं उठता। हमारा यह कहना है कि काव्य में परम्परा से बाहर के एक भी उपमान न हो हम परम्परावद्ध उपमानों का आग्रह भी नहीं करते सिर्फ यह कहना चाहते हैं कि जिन नए प्रतीकों का प्रयोग किया जाय वे हमारे जीवन में चुने गये हों जिन्हें हम गत दिन देखते हैं जिनकी विशेषताओं में परिचित हैं। अपरिचित और दूर की कौड़ी को प्रस्तुत करने वाले बुद्धि प्रसून प्रतीकों का साधारणीकरण में विघातक होता है।

## [२०] विभाजित सत्य को समूचा देखने का प्रयत्न

आधुनिक युग का विशेषीकरण की प्रवृत्ति का जिक्र करके अन्त में कवि के नये साधारणीकरण की समस्या को और अधिक जटिल बताया है। उन्होंने लिखा

है कि आज कवि का काव्य समूच ज्ञान विज्ञान की विशेषाकरण की प्रवृत्ति का उलाहकर उससे उपर उठकर, कवि को उसके विभाजित सत्य को समूचा देना और दिखाना है। पर सत्य यह है कि प्रयोगवादी कवि अवेपी ही रहे हैं, सत्य उह मिना ही नही, जिसका वे साधारणीकरण करते इसलिए वे इम सबस्वीकृत परम्परा को ही सन्नेह की दृष्टि से देखकर और उस जटिल बहकर अपने काव्य पर आवरण डालने का काय करत है। स्वयं अनेय जी ने यह स्वीकार किया है कि य (दूसरे सप्तक के) कवि भी विराम स्थल पर नही पहुचे हैं, लकिन उनके आगे प्रशस्त पय है और एक आलोकित क्षितिज रखा। हम उनके इस कथन को आप्त वाक्य मानकर चल रहे है। इस सप्तक के कविया क विषय म उहोन जो जय बातें बही है उन्हे भी हम स्वीकारते हैं। उहान लिखा है कि यद्यपि सब कविणो म भाषा का परि माजन और अभिव्यक्ति की सफाई एक सा नही है और अटपटे पन की त्याकी यूना धिक् मात्रा म प्रत्येक म मिलगी तथापि सभी का एसी उपलब्ध हुई है जो प्रयोग का साधक करती है।”

### दूसरे सप्तक के कवि

दूसरे सप्तक मे निम्नांकित सात कवि हैं—सब श्री भवानी प्रसाद मिश्र, शत्रुन्तला माथुर हरिनारायण व्यास शमशेर बहादुर सिंह नरेश कुमार मन्ता रघुवार सहाय और ध्रमवार भारती। अपनी भूमिका म अजय जी ने लिखा है कि इन सात म मे काई भी हिंदा जगत का अपरिचित हा एसा नही है लकिन किसी का कोई स्वतन्त्र कविता सग्रह नही छरा है जत यह कहा जा सकता है कि प्रकाशित कविता ग्रन्थ के जगत म ये कवि इसी पुस्तक क साथ प्रवेश कर रहे है।

✓ प्रथम तार सप्तक स लेकर द्वितीय सप्तक तक प्रयोगवाद का प्रयोगकाल रहा है। दूसरे सप्तक क सभी कवि प्रयोगवादी का य के रचयिता हैं इनम प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविया का प्रथम सप्तक की भांति मिश्रण गही है किंतु प्रत्येक कवि का अपनी व्यक्तिक विशेषताय हैं। ये कवि अपन सत्य का बहूत लक्ष्य म विनापित कर सक हैं। यहाँ सत्य स हमारा मत नव प्रयोगवादी सत्य स नही है अपितु मानवीय जीवन की मार्मिक सबदनाजा स है। हमारे जीवन की परिचिन पर का य म अपरि चिन अनुभूतियों को इहोने नूतन और जयवान समय और शाभन प्रतीका क माध्यम स यक्त किया है यह बात हम क चुक है कि ऐसे प्रयोग सबन्न नहा मिनत किंतु जितन भा हैं वे प्रयोगवादा का य की उपलब्धिया हैं। यहा हम एम कुछ का यात्मक यशा को उलाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रह हैं जिनक माध्यम म प्रयोगवाद का विक सित सबदनीय और साधारणीकृत स्वरूप देख सकत है।

श्री भवानी प्रसाद मिश्र का एक कविता बूद टपकी एर नभ से म आकाश

सू दो व टपकन पर अनक उत्प्रेक्षाये का गइ हैं ये अप्रस्तुत अपन आप म एव एक स्वतंत्र विम्ब का निर्माण करन म सक्षम हैं, प्रतीक अथ को व्यक्त करन म उल्लयन न डानकर उस व्यापक और सुग्राह्य तथा चित्तात्मक बना दत हैं—

वूँ टपका एक नभ स  
 किसी ने झुककर झराखे से  
 ✓ कि जस हँस दिया हो,  
 हँस रहा सी जाण ने जस  
 किसी का कस दिया हो  
 ठगा ना कोई किसी की आछ  
 देमे रह गया हो  
 उस बहुत से रूप को रोमाच राके  
 मह गया हो ।

इम रचना के सारे प्रतीक यौनवादा हैं किंतु फिर भी कुण्डा, जतप्ति, निराशा उपासा का वातावरण न हाकर नाम एक सहज प्रसन्नता है प्रतीको म अनगदता नहीं है । मामा यत रचना सबेश है । भवानी प्रसाद जी की सारी रचनार्यो स्पष्ट हैं, अथगत दुराव और प्रताको की तुर्वोधता कही नहीं मिलती ।

प्रतीको की ताजगी और शक्तिमत्ता का एक अय उदाहरण में धमधोर भारती की कविनाआ म स दे रहा हूँ । उनका चुम्बन' शीपक मुक्तक देखिए—

✓ रघु दिय तुमने नजर म वादता की साध कर,  
 आज माथ पर, सरत सगीत मे निर्मित अघर,  
 आरती के दीपका की विलमिलाती छाह म,  
 वासुरी रक्खी हुई ज्या भागवत के पठ पर । ~

यहाँ सरत सगीत स निर्मित अघर और भागवत क पठ पर रक्खी वासुरी क अप्रस्तुत विशेष मार्मिक और सबध हैं । यहा प्रयाग का कवि सत्य क उदघाटन म समय रसम्प दिखाइ दता है । सगीत स निर्मित अघर कहने म अनक व्यजनार्यो— सरसता, गुन गुणाह, श्रनि मधुरता आदि निहित हैं । नजर म बाण्डा को साधन म सरसता सिन्ध और प्रेममयी दष्टि बोधित होनी है । भागवत के पठ पर रक्खी वासुरी स पवित्रता उपात्त और आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना भी हा जाता है । आरती क दीपका की निर्गमिता छाह स दिगुद्ध प्रेममयी निष्ठा और स मयता की व्यजना हा रही है । मुक्तक जाघर्ग मक नहीं सौकिन्न प्रेम की व्यजना करता है किन्तु उगम प्रेम की व्यापनता, उपात्ता, पवित्रता, स मयता आदि भावानाय प्रतीका के माध्यम म व्यजित हा रही हैं ।

यहाँ मैं नरेशकुमार महता की 'चाहता मन शीघ्रक रचना सभा कुछ पक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ। इनमें भी प्रतीका की नई चहल पहल देखिए, केवल बलरव ही नहीं, उनमें अथ दाप्ति भी दृष्टव्य है—

गोमती तट

दूर पैसिल रख सा वह चास झुरमुट

शरद दुपहर के कपोली पर उड़ी वह घूप की सट

जल के नग्न ठंडे बदन पर कुहरा झुका

सहर पीना चाहता है

तुम यहाँ बठी हुई थी अभी उस दिन।

सब सी बन लाल

चिक्ने चीठ सी वह बाह अपनी टेक पध्वा पर यहाँ।

कौन जाने घूप उस दिन की कहाँ है

जा तुम्हारे कुतना म गरम, फूनी धुली, धोली लग रही थी।

चाहता मन

तुम यहाँ बठी रहा

उड़ता रहे निडियो सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आचल।

उपयुक्त प्रगीत में अनुभूतियों की सवदना कम नये प्रतीकों का आकषण और विम्ब विधान अधिक है। रखाकित उपमान हिन्दी में नये हैं शासन है और अथ स्फीति में सहायक हैं। ऊपर हमने तीन कवियों की तीन रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। इनमें जा आस्वाद्यनीयता के तत्त्व हैं वे शिल्पगत अधिक हैं, वस्तुगत कम, इसीलिए ये रचनायें सुन्दर होती हुई भी हमारे हृदय पर अक्षय प्रभाव नहीं डालती। किन्तु फिर भी प्रयोगवाद की इह हम उपनधिष्या कह सकते हैं। जिस बौद्धिकता नीरसता जम्बिता, और खुरदरेपन की चर्चा प्रयोगवाद के सद्भावितक विवेचन में की जाती है वे बातें हमें व्यावहारिक रूप से प्रयोगवादी काव्य में कम ही मिलती हैं। इसका आशय यही है कि काव्य रचना किन्ही विशेष पूर्व निश्चित प्रतिमानों के आधार पर नहीं हो सकती जहाँ जहाँ ऐसा हुआ भी है, वहाँ वह नीरस जटिल दुर्बोध और उपेक्षणीय हो गया है। प्रयोगवाद ने छद्म शिल्प विम्ब, प्रतीकादि क्षेत्र में जा नवनिर्माण का काय किया है उनका प्रकय हम नयी कविता के रूप में दिखाई देता है। वस्तुतः नयी कविता के लिए प्रयोगवाद ने भूमिका और खाद्य का काय किया है।

## पारम्परिक अनुबन्ध

नयी कविता के स्वरूप और विशेषताओं पर चर्चा करने के पूर्व यहाँ प्रयोगवाद पर जो परम्पराहीनता का आरोप लगाया जाता है, उस पर विचार कर लेना चाहते हैं। इस सद्मम में अनेक जी का मत हम ऊपर दे चुके हैं। उनकी दृष्टि से परम्परा का क्या अर्थ है, यह भी स्पष्ट किया जा चुका है। हम तो यहाँ केवल यह विचार करना चाहते हैं कि क्या प्रयोगवादी काव्य पूणतः परम्पराहीन है, या परम्परा के मूल्य तत्तु उसमें विद्यमान हैं? इसके फूलने फलने में बाह्य प्रवृत्तियाँ सक्रिय रही हैं, कवियों की मन स्थितियाँ भी तदानुकूल वातावरण के अनुष्ण थी, अतएव इस प्रकार के साहित्यिक आन्दोलन को विवसित और युग प्रतिनिधित्व रूप धारण करने में सरलता हुई यह बात कही जा चुकी है। यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो प्रयोगवादी काव्य की एक दर्जन से भी अधिक ऐसी विशेषताएँ हैं जो हम छायावादी हालावादी तथा प्रगतिवादी काव्य में इतने रूप से मिल जाती हैं। उदाहरणार्थ, वैयक्तिक चेतना, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण, अपने सुख दुःख का इतिहास पलायनशीलता, निराशा, उदासी आदि का चित्रण, परम्परागत रूढ़ियों का तीव्रतम विरोध, नवीन भाषा और छंद का निर्माण-मुक्त छंद का प्रवर्तन और अनुवर्तन, नए प्रतीकों और "अप्रस्तुतों" का प्रयोग, प्राचीनों की उपेक्षा आदि प्रवृत्तियाँ छायावादी काव्य में हमें कमाधिक मात्रा में दिखाई देती हैं। इसी प्रकार भौतिकवादी दृष्टिकोण, यथायवादी शली, वग, विशेष का आग्रह-बौद्धिकता, जन सामान्य और अनगढ़ भाषादि का प्रयोग हम प्रगतिवादी काव्य में पाते हैं। क्या यह संभव नहीं है कि परम्परागत काव्य की ये ही प्रवृत्तियाँ प्रयोगवादी काव्य में अनुकूल परिवेश पाकर उदबुद्ध हुयी हों? उदबोधन में सहायक परिस्थितियाँ और प्रेरणाएँ बाहर की थीं, जिनका स्वरूप हम देख चुके हैं! जब इतनी अधिक प्रयोगवादी काव्य की मूल प्रवृत्तियाँ क्रमागत काव्य में मिल जाती हैं, तब यह कहना कि यह परम्पराहीन है कोई अर्थ नहीं रखता। यह बात अवश्य है कि छायावादी काव्य तथा प्रगतिवादी काव्य में ये प्रवृत्तियाँ अपना-सिर नहीं उठा सकी हैं, परन्तु उनका अस्तित्व था, इस अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता। प्रयोगवाद आसमान से उड़कर नहीं आया और न वह अचानक बिजली की बौघ ही है वह काव्य में अनेक वर्षों से अवदमित प्रवृत्तियों के समयानुकूल विस्फोटन का प्रतिफल है जो कि पूर्ववर्ती काव्य की एक प्रतिक्रिया के रूप में उदय हुआ। पहले उसका स्वरूप असंगठित और अलक्षित था, पहला सप्तक इसका प्रमाण है किंतु दूसरे सप्तक में वह व्यवस्थित हुआ और शिल्पगत निर्माण की ओर से संवेदनाओं की ओर प्रत्यागत हुआ और १९५३ ई० में यह अपने प्रयोगवादी आवरण को त्यागकर नयी कविता के रूप में हमारे सामने आया। यदि इन तर्कों के बावजूद भी कोई यह मानने को तयार न हो कि प्रयोगवाद की जड़ें छायावादी, हालावादी और प्रगतिवादी काव्य चेतना में विद्यमान हैं, तो इससे कोई भी मुह नहीं बिचका सकता कि नयी कविता

और प्रयोगवाद के पीछे आज लगभग २५ वर्ष की गुटाघ परम्परा है, इतनी लम्बा परम्परा हिन्दी काव्य इतिहास में न तो छायावाद की है, और न प्रगतिवाद का। हाँनावाद तो चार पाँच वर्षों में ही अपनी चिर मस्ती छोड़ चुका है। इसलिए नये काव्य के विषय में परम्पराहीनता का प्रश्न पढ़ने ला उठाया जा सकता था पर आज वह निरर्थक हो गया है। नये काव्य की अपनी एक नींव बन चुकी है भले ही वह अच्छी न हो पर उस नींव का कोई आज मिटाना भी चाह तो भी नहीं मिटा सकता अतएव अब आवश्यक यह हो गया है कि हम इस नींव की परीक्षा तटस्थ हानर करें। विद्वाना न यह साहित्यिक परीक्षण काय विपुल मात्रा में आरम्भ भी कर दिया है और वृत्तमय मथन से जहाँ नये काव्य का विशेषतायें प्रकाश में आ रही हैं वहाँ नया काव्य भी अपनी अटपटा चाल छोड़कर अधिन गम्भीर और वयस्कता की ओर अग्रसर हो रहा है। यहाँ हम अब नयी कविता के सद्भावित प्रतिमानों को देखने के पश्चात् उसकी विशेषताओं और सामाज्य पर विचार करेंगे।

### नयी कविता

प्रयोगवादा काव्य का प्रमुख पत्रिका प्रतीक थी जिसका प्रकाशन इस शताब्दी के छठे दशक के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ। १९५३ ई० में नये पत्त नाम से एक नये पत्रिका निकली। इसका संपादन पहल में रामस्वरूप चतुर्वेदी ने किया था म लक्ष्मीकान वर्मा ने भी इसके संपादन में सहयोग दिया। १९५४ ई० में नया कविता शीपक पत्रिका निकली। इन पत्रिकाओं के द्वारा हिन्दी साहित्य में पहला बार नयी कविता का आधिकारिक रूप प्रयुक्त हुआ। प्रथम तार सप्तक से प्रतीक तक प्रयोगवाद की उपलब्धि यात्रा है, नये पत्ते में इसा शिल्पात्मक उपलब्धि के आधार पर नयी कविता की प्रथम अनुभूति हुई और नयी कविता से उसका गौड स्वरूप दिखाई दिया। नयी कविता के सभी कवि समाक्षकों ने यह बात स्वीकार की है कि प्रयोगवाद नये लेखन की भूमिका मात्र है। उसकी प्रकृति में बहुत कुछ अस्थिरता के तत्त्व थे। उसका तत्त्वावधान में नये प्रयोग किए गये हैं। इनमें से कुछ सफल प्रयोगों के आधार पर नयी कविता की नींव पड़ी।

इसके पश्चात् लक्ष्मीकान वर्मा ने नया कविता के प्रतिमान' शीपक एक समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखा। इसमें उन्होंने विस्तार के साथ नयी कविता की विशेषताओं का जानपन किया है। १९६० ई० के आसपास रामस्वरूप चतुर्वेदी जो न भी हिन्दी के लेखन के नाम से एक पुस्तक लिखी। इसमें १९६० के पूर्व तक के प्राय सभी नयी कविता नवग्री प्रतिमानों और विशेषताओं का परीक्षरूप से आलेखन हुआ गया है। अतएव इस कृति को हम नयी कविता की सद्भावितक मायताओं के निरूपणाथ एक प्रामाणिक कृति मान सकते हैं। चतुर्वेदी जो नयी कविता के सद्भावितक प्रतिमानों

स आरम्भ से हा सबद्ध रहे हैं अतएव इस क्षेत्र में किसी की आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

१९५६ ई० में अनेक जी व संपादन में ही 'तीसरा सप्तक प्रकाशित हुआ । इसकी भूमिका में भी उन्होंने नयी कविता की प्रमुख विशेषताओं और समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है । अपनी 'आत्मनेपद' शीपक कृति में भी उन्होंने 'नयी कविता' पर विचार किया है । डॉ० धर्मवीर भारती की 'मानव मूल्य और साहित्य' कृति भी नयी कविता की महत्वपूर्ण समस्याओं और विशेषताओं पर प्रकाश डालती है । हम नयी कविता की विशेषताओं के अनायन करत समय यथास्थान नया कविता के इन कवि समीक्षकों की सामग्री का भी उपयोग करेंगे । नयी कविता पर इधर हिंदी में प्रायः सभी समीक्षकों ने भी विपुल मात्रा में विचार किया है जो नया कविता सकारण स सबद्ध नहीं है । इस सबद्ध में इन नये पुराने समीक्षकों का मत भी विचारणीय है । इस उपलब्ध सामग्री को भी हम अपनी विवेचना का अंग बनायेंगे और अंत में इस मतवादी चर्चा को छोड़कर हम 'नयी कविता' की व्यावहारिक समीक्षा प्रस्तुत करेंगे ।

### नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प० रामस्वरूप चतुर्वेदी जी ने 'हिंदी नव सदन' में 'नयी कविता' की जिन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं

(१) नयी कविता नितात आधुनिक है । आधुनिकतम होना उसकी प्रथम अनिवाय शक्त है ।

(२) एन पूणत नवीन, मुनिश्चित तथा रामात्मक दृष्टिकोण होना उसकी दूसरी अनिवाय आवश्यकता है । पूणत नवीन होना, इसलिए कि परम्परागत दृष्टिकोण सारहीन जड़ तथा खोखला है ।

(३) नयी कविता में सामान्य वस्तुओं तथा अकिंचन परिस्थितियों से रागात्मक सम्बंध होना बहुत जरूरी है ।

(४) उसमें गहरे तथा तीखे व्यंग्य (सटाइज आयरनी) की प्रवृत्ति भी हो, किंतु व्यंग्य ऐसा हो जो जीवन के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण दे सके ।

(५) नयी छंद-याचना, शब्दों के ध्वनात्मक प्रयोग तथा आंतरिक ज्यों का समन्वय भी नितात अपेक्षित है ।

(६) बिखर भाव चित्रों तथा मुक्त साहचर्य का निम्नकोच रूप में प्रयोग होना चाहिए ।

(७) उसमें एक नये व्यापक तथा उदार मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने का अर्थक प्रयत्न होना बहुत आवश्यक है ।

(८) सामान्य जन जीवन के प्रति एक अनिवाय कर्तव्य है ।



## १५० । आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ एक पुनर्जागरण

(१०) नयी कविता का घरातल काफी हद तक बौद्धिक हो । बौद्धिक होना ही आधुनिक युग की अनिवार्यता है ।

(११) नयी कविता म वतमान से असंतोष तथा भविष्य म अस्था हो ।

(१२) आवग, आवेश उत्साह, दया—नयी कविता मे अनावश्यक हैं ।

(१३) शिल्प की दष्टि से खुरदरापन अनगडपन,—कक्करीट के पलस्तर की तरह—नयी कविता म बहुत आवश्यक वस्तु है ।

(१४) नयी कविता— गद्य कविता हो । उसम जीवन की स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हो ।

(१५) व्यक्तिगत भाव चित्रों की योजना करना नये कवि के लिए अनिवार्य शत है ।

(१६) नयी कविता की सप्रक्त अनुभूति के लिए पाठक का कुछ प्रशिक्षित होना आवश्यक है ।

(१७) नये कवि के लिए कविता का रचना प्रक्रिया यथेष्ट जटिल होती है और वह बौद्धिकता से सप्रक्त होती है ।

(१८) गृजन के क्षण उतने विशिष्ट नहीं, जितने नयी कविता के आस्वादन के क्षण महत्वपूर्ण और विशिष्ट होते हैं ।

(१९) नयी कविता म क्षण का महत्व होता है । उसम गये नतिक प्रतिमान है और नया सौंदर्य बाध होता है ।

(२०) नये कवि अनिवार्य होते हुए भी आधुनिकता को धरनज मानत हैं ।

(२१) प्रेम और शृंगार की जा गमता और अश्लीलता का प्रदर्शन परम्परा से अनैतिक अथवा कुठाग्रस्त माना गया है, उसे नये कवि नतिक मानते हैं ।

(२२) ककटस नये कवियों की सौंदर्य चेतना का प्रतीक है जो ऊपर से देखने पर कटीला होता है कि तु भीतर रस प्लावित रहता है ।

(२३) सामान्य तथा अकिंचन क्षणा को उनकी सपूर्ण असगति म अंकित करने की चेष्टा नयी कविता का आधुनिकतम भाव बोध है ।

(२४) डा० जगदीश गुप्त अथ की लय नयी कविता की अनिवार्य वस्तु मानते हैं । अल्पानुप्रास और कविता की आभ्यंतरिक शाब्दिक लय योजना का वे उपेक्षित करने का आदेश देत हैं ।

(२५) डा० धमवार भारती क प्रयास से इधर पिछले दिनों से धुरी हीनता का आंदोलन या क्रुद्ध युवक की एक नयी स्थिति भी नयी कविता की एक अनिवार्य विशेषता के रूप म जुड गई है ।

(२६) नय कवि और समीक्षका का कहना है कि नयी कविता का विकास अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समान रूप से हो रहा है ।

अभी नई कविता की इन सैद्धांतिक विशेषताओं की सख्या को और भी बढ़ाया जा सकता है किंतु ये भी अपर्याप्त नहीं हैं । आचार्यों ने सत्काव्य के जो जो लक्षण बताये हैं ठीक उनके विपरीत नई कविता की उपयुक्त सैद्धांतिक मायतार्यें हैं । या दूसरे शब्दों में कहें, कि प्रगीत काय का विरोधी रूप नई कविता है । यहाँ हम अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए प्रगीत काय और नयी कविता की परस्पर तुलना के कुछ पक्ष उपस्थित कर रहे हैं ।

### प्रगीत काव्य और नयी कविता

प्रगीत काव्य में भावात्मकता अनिवाय वस्तु है नयी कविता में उसे कोई स्थान नहीं । अपरिमित भावावेग दीप्त प्रगीत काय का एक दूसरा तत्व है नयी कविता में वह भी उपेक्षित है । भावाविवृति प्रगीत का एक अर्थ महत्वपूर्ण तत्व है नयी कविता उससे भी रिक्त है । वहाँ अविवृत नहीं विखराहट को महत्ता दी जाती है भावावेश के असामान्य क्षणों में जहाँ प्रगीतकार पुरातनता आधुनिकता का विभेद भूल जाता है, वहाँ आधुनिकता को यत्न रूप से प्रस्तुत करना नये कवि का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है । प्रगीतकार की रचना प्रक्रिया सहज स्वाभाविक और अभिहित कोटि की होती है वहाँ नयी कविता में वह दुर्गम, जटिल और मिश्रित होती है । प्रगीत काय के साधारणीकरण में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती, पर नयी कविता में साधारणीकरण के क्षण विशेष महत्वपूर्ण होते हैं उसके लिए पाठका या श्रोताओं को प्रशिक्षित होना आवश्यक होता है । प्रगीत में जीवन की विशेष मामिक अनुभूतियाँ और भावनायें अभिव्यजित होती हैं ये भावनायें उदात्त और विश्वात्मक होती हैं । उसमें व्यक्ति वैचित्र्यवाद नहीं होता पर नयी कविता में क्षणों का महत्व है । नया कवि अपने जीवन के हर क्षण की वस्तु का काय में अमर कर देना चाहता है, विश्ववात्मकता नहीं यह व्यक्ति वैचित्र्यवाद को महत्व देता है ।

प्रगीत काय में संगीतात्मकता एक अनिवाय वस्तु है किंतु नयी कविता में उसकी पूर्णतः उपेक्षा है । अन्तःप्रवास, शाब्दिक अनुरणन और सुनिश्चित लय योजना और छन्द विधान को भी नयी कविता प्रथम नहीं देती वह अर्थ की लय की पोषक है । अर्थ एक अमूर्त और निराधार वस्तु है वह चाक्षुष और श्रुतिपरक न होकर मानसिक वस्तु योजना है वह लय की सत्ता मानना नई कविता की विलक्षण सूत्र है । लय जीवन का एक प्रकृत तत्व है । भावनाओं के उद्रेक काल से लेकर उनकी अभिव्यजना काल तक वह विद्यमान रहती है भावनायें या अनुभूतियाँ स्वात्मक ही होती हैं किंतु नई कविता में उनका महत्व ही नहीं है, फिर लय वहाँ से आयगी ?

प्रगीत काय का शिल्प पक्ष भावानुभूतियों के अनुसार मृदुल, कोमल और श्रुति माधुर्यपूर्ण होता है । उसके शब्द सांगीतिक होने के कारण हृदय में

तक प्रतिगुंजित हात रहत हैं किंतु नयी कविता गद्यरती है उमका शाब्दिक पन धुरदरा होता है—कवरीट की भांति और उमक प्रतीक और सौंदर्य बाध केवटस की भांति पटीने होत हैं। उमक भातर भल हा रम हो (जिसम सप्त है) किंतु उसे निगलन की प्रतिया ही अमभव नही तो कष्टसाध्य जयष्य है।

इम तुलना रा काई यह न समझे कि मैं नई कविता का विराधा हूँ और यह सिद्ध करन का प्रयास कर रहा हूँ कि भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वाना न प्रगीत काव्य के जो सब स्वीकृत तत्त्व मान हैं और जा परम्परा स अनुमोदित है उनका नई कविता म अभाव ही नही विराधा स्वल्प भी है। नयी कविता का जा बुद्ध स्वरूप है वह तो सभी देख रहे हैं मुन इस प्रमन म यही कहना है कि नई कविता की सारी भूमिका और मायतायें नई हैं परम्परागत स्वीकृत तत्त्वा क प्रति उमम विद्रोह भावना है और जब नयी कविता पर परम्पराहीनता का आरोप लगाया जाता है तब इसक मूल म यहा नष्टिकोन निहित रहता है।<sup>१</sup> परम्परा निश्चित रूप स अन्य ची क शाना म गठरी नहा है जिसे नये कविता पर छाट दी जाय किंतु यह भी सत्य है कि नय कवि निरे गय को कविता कहकर जनता को धोखा भा नही दे सकत।

### अन्तर्राष्ट्रीयता

नय कवि समाक्षको का यह कथन है कि आज इम प्रकार का कविता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लिखा जा रहा है। हमारा यह कहना है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसका विराध भी हुआ है और हा रहा ह। इस सदभ म एथानी ध्वट न लिखा ह कि आधुनिकता को भ्रष्ट दना एक वृत्रिम मनोवृत्त है। कोई भी कवि काव्य प्रणयन क समय यह नही कह सकता कि मैं नया लिखू गा या पुराना। इसी प्रकार जीवन का विखराण्ट भी नये काव्य क निय धातक वस्तु सिद्ध हा रही है। उसकी परिधि भीमिन स सीमित तट होती जा रही है। गद्य और पद्य का भाषा म भी तात्त्विक अन्तर है जिस कोई भी सहूल्य अस्वीकार नहा करेगा।

### बुद्धि विशिष्टता

नयी कविता का बौद्धिकता का भी विश्वव्यापी विराध हुआ है। पश्चिमी समाज बुद्धिजीवी है अतएव वहा के काव्य म बौद्धिकता का प्रवेश जाश्चय जनन नही

१ प्रयोगवाद के सदभ म मैं परम्परा क प्रश्न पर विचार किया था और कहा था कि इस काव्य की कतिपय प्रवृत्तियाँ हम छायावादी, हातावादी और प्रगतिवादी काव्य म मिल जाती हैं किंतु यह कथन कतिपय प्रवृत्तियों की परम्परा स सम्बन्ध बाधत है नई कविता या प्रयोगवाद का सद्भातिक स्थापनाआ स नही। प्रयोगवाद और नई कविता क प्रतिमान तो प्राचीन काव्य का एकत्र विरोध करके बले हैं।

कहा जा सकता कि भारतीय जीवन कभी भी बौद्धवादी नहीं रहा, यहाँ अभी इतनी भौतिक समझ भी नहीं हुई कि 'यक्ति आत्मकेन्द्रित होकर अपने आप में एक द्वीप बन जाय और उसे दूसरे के अस्तित्व का बोध भी न हो। दूसरों के प्रति यह उदासीनता और उपेक्षा की भावना इन्ट्रिन्सिक में सत्य हो सकती है किंतु भारत में इतनी जन निरपेक्षता अभी नहीं आई और उसका न आना ही सौभाग्य का लक्षण है किंतु नये कवियों ने अपनी बुद्धि के द्वारा उसे कल्पित अवश्य कर दिया है। यह तथ्य उसी प्रकार का है जिस प्रकार मास्को में पानी बरसने की खबर सुनकर विश्व के बटुए माक्सवाद पानी न बरसने पर भी छाता लगाकर निकल पड़ते हैं चाहे उनके यहाँ पानी बरसे या नहीं इसका कारण यह है कि न मही, यहाँ-वहाँ तो बरस रहा है। ठीक यही वस्तु प्रयोगवादी कवियों की रही है। ये पश्चात् जीवी कवि पश्चिम की हर बात की नकल करना चाहते हैं, चाहे वह अच्छी हो या न हो ममयोचित हो या न हो। यह कथा उनका प्रति नहीं है जो पश्चात्य प्रेरणायें ग्रहण करके अनुकरण और अनु-वनन का भूमिका से ऊपर उठकर अपना कुछ देने में मग्न हुए हैं, जैसे अज्ञेय जी धर्मवीर भारती जानि।

बौद्धिकता भी बुरी न कहा जाती, यदि कवि अपने चिंतन में द्वारा कुछ नई वस्तु इस ससार को प्रदान करते। प्राचीन भारतीय और पश्चात्य प्रायः सभी समीक्षा शास्त्रियों ने तो इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि कवि को दार्शनिक होना चाहिए हमारा यहाँ उस पर धूम स्वयंभू भविष्यद्रष्टा ब्रह्मा आदि कहा गया है। इन राजाओं के द्वारा काव्य की बौद्धिक चिंतन का ही विशिष्टता का शासन किया गया है किंतु नये कवि इस धर्म में नहीं आते। उनकी बौद्धिकता की छानबीन करते हुए डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि नई कविता की बौद्धिक चेतना का दोष यह है कि वह विचार का इंद्रिय बोध से मयुक्त करने भावना से अनुप्राणित करने मात्रिक और प्रभावशासक बनाने के बदले उन्हें कथन मात्र रहने देती है। नया कवि साच साचकर बहुधा दूसरों की रचनायें पढ़कर विचार ही नहीं करता, वह भावा का भी सोचता है साचकर उसकी भावसत्ता नष्ट कर देता है, किन्तु उपमानों से उन सोचे हुए भावों को संजोय, यह भी साबना है और इस सोच विचार में रस अंतर्धान हो जाता है। भावानुभूति के बदले उसके पास साच विचार ही रह जाता है। यदि नयी कविता में सम्भार चिंतन होना जगद हान पर भी उसमें दार्शनिक विचार हों, व्यक्ति अथवा समाज की समस्याओं का चित्रण होता तो भी साहित्य को उसकी दम महत्वपूर्ण होती। कठिनाई यह है कि बौद्धिकता की दहाइ देने पर भी उसमें कच्चा अथवा क बारनाम ज्यादा लिखाई देते हैं चिंतन का नाम पर दूर की कौड़ी लाने का प्रयास ही अधिक होता है।

नई कवितावादियाँ को छाड़कर शायद ही कोई शर्मा जो क उपयुक्त कथन व प्रति अपनी अनास्था प्रगट करेगा। जिस कवि सत्य की चर्चा अनेक जी बार बार करत रहे हैं उसकी कलाई भाँ उपयुक्त वक्तव्य से धल जाती है।

### तीसरा सप्तक

#### [१] पूर्वाग्रह रहित अध्ययन की भाँग

तीसरे सप्तक की भूमिका में अनेक जी ने नयी कविता से सम्बन्धित जो बातें कही हैं उह भी हम यहाँ विचाराय प्रस्तुत कर रहे हैं। उहाँ लिखा है कि नई कविता को शास्त्रीय आलोचको से सहानुभूतिपूर्ण तो क्या पूर्वाग्रह रहित अध्ययन भी नहीं मिला है यह आवश्यक हो गया है कि स्वयं उसके आलोचक तटस्थ और निमग्न भाव से उसका परीक्षण करें। दूसरे शब्दों में परिस्थिति की भाँग यह है कि कविगण स्वयं एक दूसरे के आलोचक बनकर सामने आवें।<sup>१</sup> इसी प्रसंग को उहोंने और आगे बढ़ाकर लिखा है कि नई कविता अगर नए काल की प्रतिनिधि और उत्तरदायी रचना प्रवृत्ति है और समकालीन वास्तविकता को ठीक ठीक प्रतिबिम्बित करना चाहती है तो उसे यह विगुण दायित्व स्वयं जाग बढकर धाढ़ लेना होगा। वृत्तिकार के रूप में नये कवि को साथ साथ बकीर और जज दानो होना होगा (और मपादक हाने पर साथ साथ अभियोक्ता भी।)<sup>२</sup>

#### [२] के द्रीयकरण आत्ममूल्यांकन विश्लेषण

इस प्रकार नये कवि का जाज रचना करने का ही काय नहीं है अपनी रचना को बकालत करना विश्लेषण और मूल्यांकन करने का भी दायित्व आ गया है। स हित्यिक दायित्व का यह के द्रीयकरण आत्म मूल्यांकन और विश्लेषण-बेधल नई कविता की ही विशेषता हो सकती है सत्ता य का लक्षण नहीं है। अपनी आवश्यकता के समय हाँ कविगण अपना रचनाओं के विश्लेषण का काय करत है। यदि रचना अपना मूल मत य नहीं कह पाती तो निश्चित ही यह रचना का दाप और कनात्मकता का अभाव है इस अस्वीकार नहीं किया जा सकता। नये कवि नसे जानने है और उस पर आवरण ढालने के लिए उसकी काख्या क तार स्वर झकृत करत हैं। कविता वह है जो एक कहे और दूसरा समझ जाय पर नयी कविता की स्थिति यह है कि स्वयं कवि को ही उसकी स्पष्टता के प्रति सदेह है।

#### [३] नये शब्द नये अर्थ सस्कारों की आवश्यकता

नयी कविता की प्रयोगशालता क भाषा सम्बन्धा पहल जायाम पर चचा करत

हुये अनेय जी ने लिखा है कि वह "भाषा सम्बन्धी प्रयागशीलता को बाद की सीमा तक नहीं ले गई है—दलिक ऐसा करने को अनुचित भी मानती रही है। यह माग 'प्रपञ्चवादी' ने अपनाया जिसने घोषणा की कि चीजा का एक मात्र सही नाम होता है और वह (प्रपञ्चवादी कवि) प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छन्द का स्वयं निर्माता है। वे यह भी कहते हैं कि शब्द अपने आप में सम्पूर्ण या जात्यतिक नहीं है, किसी शब्द का कोई स्वयंभूत अर्थ नहीं है। अर्थ उसे दिया गया है वह संकेत है जिसमें अर्थ की प्रतिपत्ति की गयी है प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ प्रयोक्ता उसे नया संस्कार देता है। इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है—यही उसका कल्प है जिन्होंने शब्द को नया कुछ नहीं दिया है वे नीक पीटने वाला से अधिक कुछ नहीं है—भले ही जो लीक यह पीट रहे हैं वह अधिक पुरानी न हो। इस वक्तव्य द्वारा अनेय जी का भाषा सम्बन्धी दृष्टि काण स्पष्ट है। वनय शब्दा का निर्माण पर, उसके नये अर्थ संस्कार पर बल देते हैं और जो ऐसा नहीं करता उसे लीकवादी कहते हैं। कृत्तित्व का क्षेत्र उठोने लाञ्छनवाद और अलाञ्छनवाद की सीमा रेखाओं के बीच का माना है और कहा है कि क्षेत्र बहुत बड़ा है और कोई इस छ्दार का निकट हा सकता है तो कोई उस छोर के।" अज्ञेय जी के इस दृष्टिकोण से असहमत नहीं हुआ जा सकता किन्तु यह उनका दृष्टिकोण है, अधिनाश नई कविता की भाषा का सत्य नहीं है। नयी कविता की भाषा यत्र तत्र कवल लीक का ही नहीं, उनके वक्तव्य का सीमा रेखाओं का भी अतिरेक कर गई है किन्तु उहोंने यह बहुरर इस बात का परिमाणन कर दिया है कि 'नये कविता में एसी की संख्या कम नहीं है जिन्होंने विषय को वस्तु समझने की भूल की है और इस प्रकार स्वयं भी पथभ्रष्ट हुए हैं और पाठकों में भी नया कविता के बारे में आक भ्रातियों के कारण वन हैं।

### [४] विषय 'नये' वस्तु मौलिक"

काव्य विषय और वस्तु में पाथक्य करते हुए वे लिखते हैं कि 'विषय केवल 'नये' हो सकते हैं, मौलिक नहीं—मौलिकता वस्तु से ही सम्बन्ध रखती है। विषय सम्प्रेष्य नहीं है वस्तु सम्प्रेष्य है। नये (या पुराने भी) विषय की कवि की संवेदना पर प्रतिब्रिया और उससे उत्पन्न सार प्रभाव का पाठक श्राता ग्राहक पर पडते हैं और उन प्रभावों को सम्प्रेष्य समान का कवि का योग (जो सम्पूर्ण चेतन में हो सकता है अशत चेतन भी और सम्पूर्णतया अचतन भी)—मौलिकता की कसौटी का यही क्षेत्र है। यही कवि की शक्ति और प्रतिभा का भी क्षेत्र है—क्योंकि यही कवि मानस की पहुँच और उसके सामर्थ्य का क्षेत्र है। वस्तु की सम्प्रेषण की शक्ति प्रयोगवादी और नयी कविता में रितना सामर्थ्य है इसकी घर्चा हम कई स्थलों पर पहले कर चुके हैं, उसकी पुनर्शक्ति आवश्यक नहीं है।

### [५] नकली आलोचक नकली कसौटियाँ

अनेक जी आलोचकों पर ध्येय करते हैं और कहते हैं कि 'नवनयी कविया से कही अधिक सहया और अनुपात नकली आलोचकों का है—घातु उतना खोटा नहीं है जितनी कि कसौटियाँ ही झूठी हैं। जब अज्ञेय और उनका सवायवादी यह मान कर चलते हैं कि केवल उनकी नयी रचना और नय प्रतिमान ही एक मात्र सत्य हैं शेष झूठ हैं ता मुझे इस आरोप का उत्तर में कुछ नहीं कहना।

### [६] नयी शिल्प दृष्टि

शिल्प, तंत्र या टक्कीय के बारे में भी दो शब्द कहना अज्ञेय जी ने आवश्यक समझा है। वे लिखते हैं कि वास्तव में नयी कविता ने कभी अपने का शिल्प तक सामित रखना नहीं चाहा न वसा सीमा स्वीकार की और फिर इस वक्तव्य के आगे लिखते हैं कि नया कवि नयी वस्तु को ग्रहण और प्रेषित करता हुआ शिल्प के प्रति कभी उत्साही नहीं रहा है क्योंकि वह उसे प्रेषण सजाटकर अलग नहीं करता है। नयी शिल्प दृष्टि उसे मिली है यह दूसरी बात है कि वह सयमे एक ही गहरी न हो या सब देखे पथ पर एक ही सम गति से न चष सब हा। उनका इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि नए कवि ने शिल्प को अग्रणी सीमा भले न स्वीकार की हो किन्तु शिल्पा यह सब वह मुक्त भी नहीं रहा है।

### [७] काव्य कर्म के प्रति गम्भीर उत्तरदायित्व

अज्ञेय जी इस सवाल के कविया के प्रति भी लगभग वही बात दुहराते हैं जो वे द्वितीय और प्रथम सप्तक में कह चुके हैं। वे लिखते हैं कि ये कवि किसी सम्प्रदाय के नहीं हैं न सबकी साहित्यिक मायताएँ एक हैं न सामाजिक न राजनीतिक न हा उनकी जीवन दृष्टि में ऐसी एकरूपता है। वे यह भी लिखते हैं कि 'प्रयोजनीय यह है कि सकलित कवियों में अपने कवि कर्म के प्रति गम्भीर उत्तरदायित्व का भाव हो, अपने उद्देश्या में निष्ठा और उन तक पहुँचने का साधनों के मनुष्ययोग की लगन हो। जहाँ प्रयोग ही वहा कवि मानता हो कि वह सत्य का ही प्रयोग हाना चाहिए। या काव्य में सत्य क्योंकि वस्तु सत्य का रागाश्रित रूप है इसलिए उसमें व्यक्त चिन्त्य की गुजाइश तो है ही, बल्कि व्यक्त की छाप से मुक्त होकर ही वह काव्य का सत्य हो सकता है। ज़ादा और लीला भाव भी सत्य-हा सकते हैं—जीवन की ऋजुता भा उ ह जन्म देती है और सस्कारिता भी। देखना यह होता है कि सत्य का साथ खिलवाड या पनटेशन मात्र न हो।'

## [८] नयी कविता कवि व्यक्तित्व का मोक्ष

अथर्व अज्ञ य जी काय म रचयिता के 'यत्तित्व क महत्व पर प्रवाश डालते हुए कहते हैं कि उसका महत्व रचना करन की प्रिया की तीव्रता मे और कला की माध्यमिकता के परिष्कार मे है। उनके अनुसार काय म कवि का 'यत्तित्व नही, वह माध्यम प्रकाशित होता है जिसमे विभिन्न अनुभूतियाँ और भावनायें चामत्कारिक योग म युक्त होती है। काव्य एक व्यक्तित्व की नही एक माध्यम की अभिव्यक्ति है। टी एस इलियट के स्वर मे स्वर मिलाकर वे यह भी कहते हैं कि कविता भावो का उभोचन नही बल्कि भावो से मुक्ति है वह व्यक्तित्व की अभिव्यजना नही बल्कि 'यत्तित्व स मोक्ष है। इसे हम उनका निर्वैयक्तिकरण का सिद्धान्त कह सकते है। कलाकार का तटस्थता की यह चर्चा उन्होने आत्मनपद म कई स्थानो पर की है।

## [९] सौन्दर्य बोध बुद्धि का व्यापार-अज्ञेय जी

मूल्यो की भी चर्चा करने लगे हैं और लिखते है कि यदि यह कहना उचित है कि मूल्यो का स्रोत मानव का विवेक है। तो यह कहना ठीक है कि सौन्दर्य बोध मूलत बुद्धि का व्यापार है। उनकी दृष्टि स कलात्मक सौन्दर्य के मूल्य सामाजिक मूल्यो से अधिक गहरे और स्थायी होते हैं। लयमयता और वक्रता को उन्होने कना क मूल्यो के प्रमुख उपादान माने हैं जो अभिव्यक्ति पक्ष स सम्बन्धित हैं। श्लील-अश्लील क विषय मे आपका ध्यान है कि ये देश काल और समाज चद्र हैं। प्रत्येक समाज और सामाजिक स्थिति क अनुरूप इनक रूप बदलते रहते है अतएव इनके कोई स्थायी प्रतिमान नही है। यह सामाजिक नतिकता का प्रश्न है साहित्य का नही। साहित्य मे ये सु दर और असु दर रूप म प्रस्तुत रहते है। शिव और सुदर को आप पर्यायवाची मानते हैं और कहते है कि जो सु र है वह अनतिक नही होगा। साहित्य मे सत्य के प्रतिपादन पर आपका विशेष आग्रह है। मानव मूल्यो की भा आपने चर्चा की है पर कम। इस विषय पर डा० धमधीर भारती ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और आधुनिक युग क बदले हुए मानव मूल्यो का प्रस्तुत किया है। इन्हीं नय मानव और कलात्मक मूल्यो को नया कवि अपनी नई कविता मे प्रस्तुत करना अपना इष्ट काय समझता है। मूल्य प्रकरण के सम्बन्ध म मुझे यह कहना है कि जिह आधुनिक युग के मूल्य ठहराया गया है, उनके निरूपण मे सामाजिक मान्यताओं के प्रति विद्रोह की भावना निहित है। उनकी नैतिकता युगनद्ध न होकर बहुत कुछ वैयक्तिक चेतना की उपज है। वे यथाथ नही, आरोपित हैं। नये कवि जिह मूल्य कहकर अपनी कविताओ म प्रस्तुत कर रहे हैं व कवल उनकी दृष्टि स हा मूल्यवान है, जनता के लिए उनका कोई मूल्य नही। ऐसी स्थिति में क्या य मूल्य जन निरपक्ष



और कवि सापेक्ष नहीं हैं ? जब नयी कविता की नींव ही कमजोर है तब उम पर निर्मित होने वाली इमारत कितने दिन ख ख सकेगी ? नयी कवितायें समय के प्रवाह में ठहर रही पा रही हैं, वे बुलबुलों की भाँति पत्र पत्रिकाओं में प्रवाहित होते ही विलीन हो जाती हैं। किंतु भले ही इनका कालजयी अस्तित्व न हो अस्तित्व तो है ही, हम उसकी कमजोरियाँ और मद्भागित्व मत मतान्तरो पर ध्यान न देकर उसका विशेषताओं पर ध्यान देना है, और एक ऐसी ठोस सज्जनात्मक भूमिका का निर्माण करना है, जिसके आधार पर भविष्य की कविता की रचना की जा सके।

### तीसरे सप्तक के कवि और उनका काव्य

तीसरे सप्तक में जितने कवि हैं, उनके प्रयाग और सदेश-पिछल कवियों से बहुत कुछ ठोस है, किंतु य कविगण भी सिद्ध नहीं हैं साधक और श्रवण ही हैं। इस सकलन में प्रयाग नारायण त्रिपाठी कीर्ति चौधरी मान वात्स्यायन वेदारनाथ सिंह कुँवर नारायण विजय देव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सबसेना की कुल १४३ के लगभग कवितायें संगृहीत हैं। ये सभी कवि नयी कविता के प्रमुख स्तंभ मान जाते हैं। यहाँ हम इनमें से २-३ कविताओं के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं ताकि प्रायोगिक रूप से नयी कविता की विशेषताओं पर प्रकाश पड़ सक। एक कविता है 'चाँद की चाह' जिसे मैं बिना किसी चुनाव के यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ कहना चाहिए कि बस यी ही बंद पुस्तक खोलकर उसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ—

सुनिये जनाब  
मेरी एक दिवक्त है,  
एक मिनिट दीजिए  
इतना बल कीजिए  
मुश्किल में जान है,  
आप भी इनसान हैं  
सुन तो लीजिए !

× ×  
इधर तीन दिनों से  
लटते ही खाँ पर  
तीव्र इच्छा होती है—  
शून्य को पकड़कर  
मुठ्ठियों में माँच लूँ ।  
नारंगी से चादूँ को  
रसभरी से तारों को

केवडा म बसी हुई किरनो को  
 पजो म पकडकर  
 कस कर निचोड  
 सारा रस खीच लूँ । —  
 गटता हथेली म जो  
 नही कुछ बाहरी  
 केवल मेरी ही उँगलियो का नाखून  
 क्या कहें ?

× ×  
 खुदा के वास्त  
 मुह न बनाइय  
 कोई रास्ता बताइये !

कविता विजय देव नारायण साही की है और इसमें आंतरिक विवशता भरी ऊमस का मार्मिक और सवेद्य चित्रण है। चाँद को नारंगी तारा को रसभरी और बँवडे म बसी हुई किरना व प्रयोग मे नयापन और स्पष्टता है। रचना भावात्मक और आवश्यकमयी है। बौद्धिक चेतना इसमें नयी है। शिल्प भी नयात्मक और प्रवाहमय है उसमें खुरदरापन नहीं है। नयी कविता के सारे प्रतिमानों पर या तो यह कविता खरी नहीं उतरती, या फिर वे इसके मूल्यांकन व लिए अपर्याप्त हैं। इसका विषय भी नया है और संप्रेष्य वस्तु भी माघारणीकृत है जतिरिक्त व्याख्या और वकालत करने की भी कवि को जरूरत नहीं पड़ती। सामाजिक मूल्यों की भी अवहलना नहीं है और सौंदर्य बोध बौद्धिक भा नहीं है।

एक दूसरी नयी कविता देखिए—शीपक है असुरपुरी म दस से छ इंच। कविता लम्बी है पूरा काव्य रूपक है। हम यहाँ मशीनों के उवाच के ही कुछ कुछ अंश प्रस्तुत कर रहे हैं—

हम ईश्वर हैं आटोमेटिक  
 पोर पोर मे घुस अदृश्य ही  
 स्मूल्ड जगत जाकित करत हैं।  
 हम हलधर हैं हरकयुलीज हैं  
 अरणि हस्त अनिरा राम हैं

—

विचुञ्जना अयस त्रिशूल धर  
 प्रलय मूर्ष्टि का ताण्डव करते

सिम्बन मूत्र विचरते

डम-डम-डम

डम डम डम डम डम । आनि

यह रचना मदन वात्म्यावन की है। यत्र शाला रूपी असुरपुरा का यह प्रत्यक्षदर्शी और भुक्तभोगी चित्रण सवथा मशीनी सम्पत्ता के अनुरूप है। मशीन क जीवन म सरसता कहा ? बौद्धिकता, स्पीत शब्द विधान और सद्भममयता तथा निराला क कुकुरमुत्ता की तरह आत्मस्तवन, एक नीखा न्यम्य ही है। य सब कविता को मार्मिक बनान म सहयोगी सिद्ध हुए हैं। इसी रचना क आरम्भ म कवि न धक धक खच खच, धक धक खच खच पटावली की कई बार आवृत्ति से मशीना की चलन की आवाज की ध्वन्यात्मकता प्रस्तुत कर दी है। बीच-बीच म भी शाब्दिक अनुरणन से मशीनें बोलता हुई सी प्रतीत हान लगती है।

जब एक नयी कविता म नय साल के उपनक्ष म वितरित की जान वाली शुभ कामनाआ का स्वरूप भा देखिए—

नय साल की शुभ कामनायें ।

छतो की भडो पर धूल भरे पावा का,

कुहरे म लिपटे उस छोटे स गाव का,

गाते क गीतो का बला की चाल का

करघ का कोल्हू का मछुआ के जाल का,

इस पकती राटा का बरखा क शार का

चौक की गुन गुन का, चूल्ह की भार को, —

घाट क गुनाब जीर जूड़े क फूल का

हर नन्ही याद का हर छाटी भूल का

नय साल की शुभ कामनायें ।

कदाचित यह कविता भा नय कविता क निवप पर चाखी न उतरगी, क्योंकि इसम वह सब नहा है जिस अज्ञय जी तथा नय कवि समीक्षक का य म आधुनिक बाध की दुर्बोधना के नाम से अवतरिन करना महित ह। यह रचना सर्वेश्वर दयाल सक्त्ता की है। उनकी सभी कविताआ म जास्था का स्वर लकृत ह। जन चेतना का वस्तुगत और शिल्पगत स्वरूप तो उनकी उपयुक्त कविता म दखा ही जा सकता है। उपर उद्धृत सभी कवितायें नयी कविता क शुभ विवासा की सूचक है और उनक सम्मुख निश्चित रूप स मगलमय भविष्य ज्ञानता हुआ लिखाई देता है।

नयी कविता के नये स्वर

(१) शिल्पसत्र की अतिरेकता

नयी कविता पढन का श्रम-परिहार ही नही करवा कही कही मनोरजन भी

करती है एन उपाहरण दखिए—

प्रेम की टंजेडी  
 → Δ →  
 ( हाय ! )  
 ← Δ ←  
 ( नहीं चन  
 जागते ही बट गयी रन )  
 → ←  
 (प्रेम यानी इश्क यानी लव ! )  
 !'  
 !!'  
 Δ+Δ  
 — — — — —  
 ?  
 (अरमानो के गान पर चाटा  
 परवरी का बाटा)  
 ← ? →  
 ( मुह बन म घाटा !! )

यह तीर त्रिभुज आश्चर्य बोधक चिह्न और प्रश्न चिह्न की सूत्रात्मक कविता है। श्री सयन्शफीउद्दीन को इस लिखत समय क्ताचित जद्वविराम, पूण विराम कौलन, समीकौलन ऋण गुणा भागात्ति के चिह्न स्मरण नहीं आय नहीं तो इनका प्रयोग भी इसम किया जा सकता था। यह है शिल्प की अतिरेकता का दृश्य जिसक आधार पर नयी कविता का नरुनामी मिली है। इसके अतिरिक्त नयी कविता की जिन विशिष्टताका पर विकृति के आरोप लगाये जात हैं, उह भी इसी प्रसंग म देख लना चाहिए तानि इसके उभय पक्ष हमारे सामने स्पष्ट हो सकें।

## (२) यौन प्रतीको की बहुलता

सो रहा है योप अधियाला  
 नयी की जाघ पर  
 डाह से सिहरी हुई यह चादना  
 चोर परा से उलक कर  
 झाक जाती है।

इन पक्तियों में यौन प्रतीकों की अधिकता है। चित्रण अधिकार और उसमें धीरे धीरे आने वाली चान्दनी का है किन्तु यहाँ रूपक है कि अधियाला रूपी नायक नदी रूपी परकीया की जाघ पर सो रहा है। स्वकीया चादनी डाह से सिहरी हुई उसे चुपके चुपके झाक जाती है। यहाँ विम्ब तो निर्मल हुआ है किन्तु इतना स्पष्ट नहीं है जो वस्तु को सप्रेम्य बना दे। इस प्रकार के यौन प्रतीकों का प्रयोग अज्ञेय जी ने अपने काव्य में विपुल मात्रा में किया है।

प्रातः धूप की जरतारी जोड़नी लपेटे

अभा अभा जागी

खुमार से भरी

नितात कुमारी घाटी

इस कामातुर मेघधूम क

औचक आलिंगन में पिसवर

रति धात्ता सी मलिन हो गई।

—भारती—सात गीत बर्ष ५० ५३७

भारती जी की उपयुक्त पक्तियों में प्रातः कालीन बल्ग में एक घाटी का चित्रण है। इसमें भी यौन प्रतीकों का चुनकर प्रयोग है।

(३) जलते माथे पर सूने कुहरे की छाया निराशा

बलते माथे पर सूने कुहरे की छाया

टूटती पसनियाँ मरीता गूजता दद

खाली जेबों में हाथ दिए सामर्थ्यहान

बिल्कुल यों खोकर

हम सभी उतर कर आय हैं इस घाटी में।

—नयी कविता, ५० ६२ अथ २

इन पक्तियों में जीवन के प्रति निराशावादी नृष्टिकोण द्रष्टव्य है।

मैं हूँ नन्ही तन की रेत

अपित दू

लकिन किसी भी क्षण पावो तले से

वह जाऊगा।

—भारती, सात गीत बर्ष

धमवीर भारती की इन पक्तियों में भी निराशा उदासी अनास्था, विवशता और असहाय्य मनावृत्ति अंकित है। यही बात उनकी निम्न पक्तियों में भी देखिए—

मैं चला जा रही हूँ ऐसे

जैसे लहरों पर विवश लाश बहती जाय।

—ठंडा लोहा।

### (४) पथ हो जाय उज्ज्वल नयी आशा

निराशा ही नयी कविता का सत्य नहीं है उसमें आस्था, विश्वास और स्वर्णिम भविष्य की झाँकी भी है—

'राग जाय दिशाओं में बिखर

पथ हो जाय उज्ज्वल

और उस पल स्वर्ग का गंधव आए उतर

बस इतनी प्रतीक्षा मुझे भा है तुम्ह भी है।

—अजितकुमार—दो बात और एक तक।

### (५) इन्द्रधनु रोड़े हुए ये

अन्य की कविता का श्रद्धाभाव भी उनके यौन प्रतीको और क्षणभंगुर निराशावादी दृष्टि में न हाकर आस्था में है। 'इन्द्रधनु रोड़े हुए ये,' 'आगन के पार द्वार तथा अरी आ कदना प्रभामय में उनके यत्कित्व की तटस्थता, कलात्मकता और आस्थावादी जीवन दृष्टि की सुकर अभिपयना हुई है। उनकी कल्पना की पहुँच को अन्य कवि नहीं पा सके हैं। अनेक आरोपों के रहते हुए यह मानना ही पड़ता है कि वे एक प्रतिभा सम्पन्न, बहुअध्ययनशील और चिंतक कवि हैं। जीवन की वर्तमान नीहारिकाओं को भेदकर उनकी दृष्टि अंतराल तक पहुँची है और वहाँ मातियों का संचयन किया है, यह दूसरी बात है कि मातियों के साथ कभी कभी कीचड़ भी आ जाती है, पर महत्व कीचड़ का नहीं, मातियों का ही हाता है, अज्ञेय जी के काव्य का मूल्यांकन उनकी कमजोरियाँ के आधार पर न हाकर उनका अच्छाईयों के आधार पर ही होना चाहिए। कवि में अभवता और निद्राद्वन्द्व भी है। वैसे नये कवियों का एक यह सहज गुण है, जिस बात का अन्य व्यक्ति सामाजिक शीलवण नहीं कहना चाहते, यद्यपि उससे अभिन्न हैं उन जशलील और अप्राप्त वस्तुओं को भा इन कवियों ने इसके की चोट पर कहा है। ये वस्तुएँ जीवन का यथाय तो हा सकती हैं, किन्तु कला का सत्य इनसे परे हैं। कला दुग्ध और विहृतिपूर्ण वातावरण के यथाय चित्रण में न होकर उसके उदात्त पक्षों को प्रस्तुत करने में निहित है। किन्तु यथाय को यथाय रूप में प्रस्तुत करना, ये कवि अपनी ईमानदारी का तकाजा मानते हैं और यही मनोवृत्ति काव्य का छायावाद और प्रगतिवाद के बग़ारों से धींचकर समान और व्यक्ति के हृदय की दुबलताओं के निरे चित्रण तक ले गई है—

### (६) मदेसपन यथार्थानुभूति

मेरे मन की अधिपारी कोठरी में

अतृप्त आकाशा की वेश्या

बुरा तरह घास रही है।

—जगदीश गुप्त

अथवा त्वचा तनती गई ।

गमस्य शिणु

बनून की तरह फूलता बना गया ।

—निकट, प० १७३ अ० ३, ४

या निकटतर धगती हुई छन आड म निर्वेद

मूल सिंचित मूर्त्तिका के वस्तु म

तीन टागा पर खटा नन ग्रीव

धय धन गन्हा ।

—अज्ञेय ।

ऐसे चित्रणों में यथायथा हो सकती है पर क्या वे बना के शिव और सुंदर तत्वों के भीतर परिगणित किये जा सकते हैं ? पति का अपनी पत्नी के प्रति सरोधन भी देखिये—

अब तुम ढल चुकी,

अब तुम चार चार दच्चा की मा हो

अब तुम -

—शरद देवडा ।

यह भी आज क कतिपय नये पारिवारिक जीवन का यथाय हा सकता है पर बना म तो यह भ्रमोत्पन्न ही है । पारिवारिक जीवन का वास्तविक सौन्दर्य इसमें निहित नहीं है । ऐसी रचनार्यों पढने वाला पर शुभ संस्कार नहीं डाल सकतीं, उनके हृत्पय का उदात्त नहीं बना सकती । नयी कविता को इस दुवन्ता से ऊपर उठना ही होगा । जब तक जीवन का विधायक संदेश नये कवि नहीं देने, तब तक उनकी कविता जन मानस का अंग नहीं बन सकती दुर्लताओं से तो 'यूनाधिक रूप में सभी ग्रस्त हैं, महत्व उनका नहीं है महत्व है उस शक्ति का जो उह दुवलताओं में ऊपर उठाने में योग दे सकें नयी कविता इस शक्ति और संदेश से बहुत कुछ विरहित है । ऐसी स्थिति में नये कवियों को अज्ञेय के आस्थावादी पथ का अनुसरण करना चाहिए—

हमम तो आस्था है कृतज्ञ होत

हम डर नहा लगता कि उखड न जावें कहा

—इंद्र धनु रौंदे हुए म ।

'आगम के पार द्वार में जनय जी ने एक कविता में कवि और काव्य का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट करने हुए जो कुछ लिखा है उससे वर्तमान जीवन की विषमता पर अच्छा प्रकाश पडता है । कविता इस प्रकार है—

मैं कवि हूँ

द्रष्टा, उमेष्वा

सघाता

भयंवाह,

मैं, कृतव्यय ।

मैं सच लिखता हूँ

लिख लिखकर सब

झूठा करता जाता हूँ ।

तू काव्य

सदा वेष्टित यथाथ

चिर तनित

भारहीन, गुरु

अपय ।

तू छलता है

पर हर छल में

तू और विशद, अध्रान्त

अनुठा होता जाता है ।

—(पृ० ५७)

इस दृष्टि से नये कवि के लिए नया काव्य एक भानुमति का खेल होता जा रहा है । यह चिन्त्य दृष्टि है । नये कवियों को इसके भी ऊपर उठना होगा ।

(७) कहीं कोई ठौर नहीं अनुास्था

नयी कविता की अत्य प्रमुख प्रवृत्तियों में एक नास्तिकता और आस्थाहीनता है । यह बोद्धिकता की अतिरेकतापूण उपज है । धर्म और ईश्वर हमारे जीवन में दो ऐसे कत्र रहे हैं जहाँ मानसिक दृष्टि ने मानव समाज घण्ड-घण्ड होता हुआ भी अघबट रहा है किन्तु अब यह आधार शिला न होने के कारण वह निराधार हो गया है ।

— लगाता है, कहीं कोई ठौर नहीं,

आज का मनुष्य

गर्भ से घबके देकर निकाला हुआ

श्रुति पुत्र”

—राजेन्द्र विश्वर स्थिनिया अनुभव तथा अय कवितार्ये ५०११

यह ठौरहीनता न तो नयी कविता के लिए शुभ वस्तु है और न मानव को । यदि सबमुच आज का समाज निराधार है तो कवि का दायित्व है कि उसके लिए किसी न किसी आश्रय का निर्माण करे, ताकि वह डूबने और रसातल जाने से बच सके ।

“नहीं नहीं भय होगी रे जय, घूल जायेगा द्वार

अरे सुम्हारी बघन बोरी टूटेगी हर बार ।

आज निराधारता और आस्थाहीनता के विषम क्षणों में नये कवि को



नाय की उपयुक्त पक्तियों (हिन्दी रूपान्तर—हंसकुमार तिवारी) के स्वरा को दुहराना होगा यदि वह ऐसा नहीं करता तो मानव समाज तो ठीर पा ही लेगा नयी कविता को नहीं ठीर नहीं मिलेगा ।

### (८) क्षण के जीवन में ही त मय

अथ महत्वपूर्ण वस्तु क्षणवादी दृष्टि है । यह भी क्षणभंगुर है । जीवन की क्षणों के सुख में नहीं, साधना में देखना है । यह अस्तित्ववादी मनोदृष्टि ब्यक्तित्वाती है । क्षण अपने आप में संपूर्ण, स्थायी, और सत्य नहीं हैं । फिर क्षण के जीवन में त मय' होने का संदेश (अज्ञेय) समाज विरोधी है ।

छग युगल, करा सपन्न प्रणय  
क्षण के जीवन में ही त मय ।

यह भोगवादी जीवन—दृष्टि है । इसी कारण भाग उपासना का नयी कविता में आधिपत्य है—

आह ! मेरी श्वास है उत्तप्त  
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार—  
प्यार है अभिशप्त  
तुम कहा हो नारि !

—अज्ञेय तार सप्तक ५० ७७

या तुम्हें किस तरह बाध सकूँगी  
सुख की सीमा है  
तुम्हारी राह में सदा ये  
दो उरोजा के शिखर  
न तान सकूँगी ।

—सफेद चिड़ियाँ—विनोदचन्द्र पाण्डेय

वासना का प्रकृत स्वरूप भी देखिये—

मुझे तो वासना का विष  
हमेशा बन गया अमृत  
धरातल वासना भी हो  
तुम्हारे रूप से आवाद ।  
मेरी जिदगी बरवाद --  
इन फिरोजी होठों पर -- ।

—भारती, द्वितीय सप्तक ।

इस प्रकृतवादी दृष्टि के कारण नयी कविता में विरूपता आ गई है जिसकी चर्चा हम कर चुके हैं ।

## (९) साप तुम सम्य तो हुए नहीं—न होंगे ध्यग्य

नयी कविता म ध्यग्य सृष्टि भी उल्लेखनाय है—व्यग्य प्रतीत म अज्ञेय जी  
की साप तुम सम्य तो हुए नहीं, न हाग वाली रचना दष्टव्य है ।

यह दीप अकेला स्नेह भरा  
है गव भरा ममाता, पर  
इसकी भी पक्ति को दे दो ।

अज्ञेय जा की उपयुक्त रचना को नयी कविता का मनीफेस्टो कहा जाता है ।  
इसम समष्टिवाद की यजना की गई है । नये काव्य का उपलब्धि म इसकी भी  
परिगणना की जायगी । कीर्ति चौधरी की निम्नांकित कविता भी इस प्रसंग म देखी  
जा सकती है—

मैं मानू तो  
अभिपक्त मुझे करनी है  
जत मन की वाणी  
मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी  
ता दद हर सुख सौख्य भरे  
यही नहीं कि अपने तन क, मन के  
दुख दर्दों म  
लिए भर ।

—कवितायें कीर्ति चौधरी, पृ० ८७

## (१०) मौलसिरी की गाछ की ओर

नयी कविता म यत्र-तत्र अतिययग्यवादियों की मुक्त अनुपग लखन पद्धति का  
भा प्रयोग मिलता है—

मदान के किनारे वाली पटरी क उस  
मौलसिरी क गाछ का ओर  
जिसके नीचे की खुडही घास म घठकर  
एक दिन दो आने की विलायती मलाई की  
बफ खाई थी ।

यहा भावधार प्रवाह उखडा, असम्बद्ध और स्वचालित भावनाओं की द्योतक  
है । प्रपद्यवादी इस शली को विशेष प्रयुक्त करते हैं किंतु यह पद्धति मनोविश्लेषण क  
लिए तो उपयुक्त हो सकती है कला के क्षेत्र म यह विकृतियों का ही सृजन करती है ।  
काव्य मे मुक्त अनुपग पद्धति उपेक्षणीय है यह बात मैं नही कहता, किंतु यदि इसका  
प्रयोग सृज भाव बोध के रूप म किया जाय, तो यह पद्धति उत्कृष्ट प्रगीतो के सुष्ण

मे साधक होती है। कीट्स की Ode to Nightingale एक ऐसी ही उत्कृष्ट रचना है जिसकी मौलिक प्रति में शायद ही कहीं एकाध शब्द परिवर्तित किया गया हो। पर नयी कविता में इस पद्धति के द्वारा सहज सौंदर्य और भाव बोध को प्रस्तुत न करके अवचेतन मन की स्वप्नावलियों को अंकित करने की चेष्टा की जाती है। यह भी प्रकृतिवाद की कला के क्षेत्र में एक अनधिकार परिणति है।

तीसरे तार सप्तक की भूमिका में अज्ञेय जी ने यह तथ्य स्पष्ट कर दिया है कि नई कविता में प्रतिभा सम्पन्न कृतिकारों का अनुधावन करने वाली स्वल्प पूँजी वाला 'प्रतिभायें अनेक हा गई हैं, जिनके कारण उसका वास्तविक स्वरूप भ्रातिया से भर गया है। हमें उनके इस वक्तव्य पर सतोष है कि कम से कम वे भ्रातिया का अस्तित्व स्वीकार तो करते हैं।



## ६ | साठोत्तरी काव्य : अकविता, युवा-लेखन

[१] बदलते सन्दर्भों में नये मानव मूल्य

आज युग-बाध, आधुनिकता, युवा लेखन की समस्यायें जादि विषयो पर जब चर्चा की जाती है तब उमका सीधा सा अर्थ होता है—इस युग के मानव की समस्यायें । इन्हे दूररे शब्दा में हम यो कह सकते हैं—बदलते हुए सन्दर्भों में मानव के नए मूल्य सुगान जावन मूल्यो और वस्तु स्थितियों का निम्नांकित कविता में अच्छा चित्रण किया गया है—

हम बरगद के झूमते हुए तनें  
हम अनबुझी चिनगारी से भीतप्रस्त  
हम गधहीन अगरबत्ती,  
हम धूल धूल जलने वाली एव मोमबत्ती,  
हम गुलदस्ते में सजे हुए फूल,  
हम सरिताओ के डूबे हुए कूल  
हम मीठी नीम की टूटी डगाल,  
हम मूरत से खसी हुई माल  
सहरों पर लहरें, जीवन गति मन्द  
सीपियों में पल रहे घोघे और शख  
जीवन में खून से नाखून आज लम्बे हे  
हम सब मीनारा के टूटे हुए खम्बे हैं,

आज का मानव आधुनिकता, अनन्त भावनाओं और वासनाओं को सजोमे, जावन की आधा में टूटा, ससित, शुधित, अनन्त भावनाओं और वासनाओं को सजोमे, हिसक और खण्टित व्यक्तित्व वाला है । उसका यह विकास या रूपांतरण सहसा नहीं आधुनिक जीवन की विकासशील यात्रिक स्थितियों व कारण हुआ है । काव्य कभी जावन निरपेक्ष नहीं रहा, बह सापेक्षित वस्तु है अतएव उसमें इस प्रकार का चित्रण उसक जीवित होने का लक्षण है ।

काव्य के यही स्वर विविध रूपों में विभिन्न युवा कविता की कविताओं में हम आज आत्यंतिकता के साथ प्राप्त होते हैं । युवा पीढ़ी का वाक्य साठोत्तरी

पीढ़ी से लिया जाता है। इन कवियों के सामने आधुनिक युग बोधों की विचारासता अधिक तेजी के साथ प्रगट हो रही है। आज अधिक तेजी के साथ यात्रिकता, बौद्धिकता, शिथिल बेकारी असंतोष, शोष, घ्रष्णाचार, पक्षपात, शोषण, मानसिक, दस ताप्य और व्यक्तित्व का विघ्नजनक बढ़ रहा है। प्रयोगवादी कवियों को इनका सामना इतनी तेजी के साथ नहीं करना पड़ा था। व तो राहों के अन्वेषी ही रहे, नये कवियों को राहों मिसी पर जीवन की अस्थिरता तथा ऊबड़ धाबड़ता आदि के कारण ये कवि 'अधे युग' के 'आगम के पार द्वार नहीं खोज सके और जब ये द्वार छुल तो उनके हाथ से नयी कविता निकल चुकी थी। उन्हें प्राप्त हुआ—अकविता का परिचय।

### [२] अकविता आत्मा की अमुक्तावस्था

सैद्धांतिक रूप में अकविता या एंटी पोएट्री का अर्थ है—वह रचना जो वस्तु और शिल्प योजना की दृष्टि से परम्परागत अर्थ में कविता नहीं है। यह कविता है क्षणिक संवेदनाओं में। यह आत्मा का अमुक्तावस्था का दूसरा नाम है। उसमें रस के स्थान पर असंतोष है सविद्ध विधाति की जगह शोष और रचना के नाम पर विघ्नजनक और विद्रोह के स्वरो का ऊहापाह है। यह घुरीहान टूटी, पगु या परम्पराहीन पीढ़ी अपने विचलन का ही जीवन की समग्रता मानकर चला है, यह आत्मरत पीढ़ी अपने को ही सृष्टि का मूल केन्द्र समझने लगा है।

### [३] नित नये धादों का आन्दोलन

अकविता के युग में जितने कवि आय के अपने साथ अपना एक धाद लेकर आए। धादहीनता का नारा लगाने वाले ये कवि हीनवादी बने और धादों का एक नया आन्दोलन हिन्दी काव्य के क्षेत्र में उमड़ा है। यह कभी ठोसवादी बनी कभी ताजी या टटकी, कभी प्रतिबद्ध कभी सचेतन कभी अचेतन, कभी दिग्दर्शवादी, कभी भ्रूषीपीढ़ीवादी, कभी आत्मरतिवादी कभी समुत्सावादी कभी अकारवादी और कभी अपन्थी। इन अकवियों के लिए फटे ट्यूब का फट पट या टाइपराइटर की अनर्गल टिपिंग ही मधुर संगीत और अनजाने छन्दों की गुन गुन बनी और इन्होंने अर्थ व्यञ्जना या समुक्त यजनो की अनवरत पुनरुत्तियों के द्वारा अजीब गरीबवादी अकविताओं की रचना की। धन श्रृण विराम पूणविराम, रिक्त चिह्न अवतरण चिह्न आदि को लेकर मनोरंजक चित्र काव्य भी लिखे गये जहाँ इस कविता की एक प्रमुख विशेषता बनी एन केन प्रकारेण पाठकों को भडकाने की प्रवृत्ति।

निश्चित ही आज युग बोधों को नकारने की सामर्थ्य किसी में नहीं है पर समझदारी ही विशेष हो गई है। यह बात भी नहीं है।

### [४] सूर्य की नयी लालिमा नया युग बोध

बुद्ध युवा कवियों ने विवेक के साथ युग चित्रों को प्रदर्शित किया है जिनके

माध्यम से हम आज की वस्तु स्थिति का बोध करन के साथ साथ कल की आने वाली कविता का भी पूर्वानुमान कर सकते हैं ।

कित्तोबो के पहाडो स घिरे  
लालटेन की रोशनी म  
अभरा पर झुके, ओ सिर ।  
जरा पूरव की खिडकी तो खोल  
देख  
आकाश रग गया है  
सूरज की लालिमा से ।

श्री किरण जन का यह 'नया युग बोध' है । उनका कवि जक्षरो के ससार से परे, दिमाक की खिडकिया खोलकर पूव म उदित होन लाले बाल रवि की अरुणिमा को देखन का आत्माद्बोधन कर रहा है । खिडकी खोलकर पूव की ओर रगे हुए आकाश को देखना ही उसका नया युग बोध है । यही वह नया आयाम है जो युवा पीढी को विकास की नई निशा दृष्टि प्रदान करता है । आज सचमुच युवा पीढी को पूव म अर्थात् भारतीय सस्कृति के सद्बभ म उदित हान पाव नए सूर्य का स्वागत करना है । सूर्य जो आस्था का प्रतीक है, अघे युग को समाप्त करन का सकल्प है, भटको को राह देन वाला, वेकारा का काम और शिथिल भुजाओ तथा बन्द पखो को मुक्त आकाश प्रदान करने वाला है । वर्तमान के प्रति असतोष की भावना और नए मोडा को आशा की दृष्टि स दखना—यह आस्थावाद नए बाध्य को सजावनी प्रदान करने म कृतवाय हा सकता है ।

### [५] हम मरणासन्न मनुष्य के प्रतिनिधि

एक अर्थ कविता म हम का विश्लेषण देखिए—

हम आतक, विप्लव पडयन्त्रो और  
कालावजारी म सानेदार  
यात्रिक हैं हम हमारे फण भी  
दूसरों को निगलने के लिए  
हरदम उठे रहते हैं  
पर क्या होगा उस भगवान का  
जो हमारे सबके हृदय मे मरणासन्न पडा है  
कही हम उसकी लाश भी  
मदिरो को नीसाम न कर दें ।

अर्थात् आज हम वह रुभी कर रहे है जो एक अन्मुख कर सकता है । हमारे ।

सबके हृदय में मनुष्यता मरणासन्न स्थिति में है। कम से कम हम उसकी लाश मदिरोँ में नीलाम कर पसे वसूल न करें। हम मनुष्यता की लाश ढो रहे हैं म यह अवबोध होना जीवन रचना की एक दिशा है। सम्भव है, सजीवनी मिलने पर वह हमारे जीवन में पुनरुज्जीवित हो सके। वर्तमान जीवन को स्वीकारते हुए भावी आशा की यह सूक्ष्म किरण नए काव्य का विकास क नए सोपान प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हो सकती है।

### [ ६ ] अब कहीं कोई यात्रा नहीं—गतिहीनता

वर्तमान जीवन की गतिहीनता और निरर्थकता का चित्रण करते हुए सर्वेश्वर दयाल सबसेना ने एक जगह लिखा है—

अब कहा हाई यात्रा नहीं है,

न अथमय, न अथहीन,

गिरने और उठने के बीच में कोई अंतर नहीं।

मनुष्य आज अपने केन्द्र पर बड़ी तेजी के साथ घूम रहा है, इतना तेजी के साथ कि हर वस्तु फा ग तो गया है और वह भी दूसरा के लिए अपना रंग और आकार खो चुका है पर उसकी ये परिश्रमायें उसे वहाँ से जा रही हैं? विकास कहाँ हो रहा है? मनुष्य जहा का तहाँ है कोई अथमय उपलब्धि उसके पास नहीं। उही की एक दुघटना कविता देखिए—

### [ ७ ] एक त्रिकालिक दुघटना

एक अदृश्य इमारत मेरे ऊपर गिर पड़ी है

जो 'नहीं है' उसके योज से मैं दब गया हूँ।

एक अदृश्य नदी मुझ पर फल गई है

जो 'नहीं होगा' उमकी धार में मैं वह गया हूँ।

एक अदृश्य सड़क मेरे नीचे से निकल गई है

जो 'नहीं था' उसकी चपेट से मैं कुचल गया हूँ।

अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीनों की निरर्थक सम्भावनाओं से आज का मानव कुचल रहा है। जो न था, न होगा और न है—फिर भी त्रस्त आज का मनुष्य केवल सम्भावनाओं के कारण शक्ति प्राप्त नहीं कर पाता। यह अस्थिर मन स्थिति युवा पीढ़ी के लिए घातक सिद्ध होगी। हम असमयताओं के नहीं व्यय सम्भावनाओं के पाटो में पिस रहे हैं।

### [ ८ ] सारे सदमों से कटे हुए

इसी बात को कुछ बदले हुए सदमों में शेरजग गय ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

सारे मसूबे रख आए हैं ताक पर  
हम सूने आगन से  
धूल ढके दपण से जीनें हैं ।  
एक वक्त गुजर गया,  
अपने से बात नहीं कर पाये  
मरने को मिलता अवकाश नहीं,  
हम ऐसे जीवन से भर आये  
या ही दुघटना से घटे हुए  
सारे सन्दर्भों से बटे हुए जीते हैं ।

यहां बतमान जीवन के प्रति शोभ है, ऐकात्मिकता और अतिशय यस्तता है । जीवन से ऊब और सन्दर्भों से कटन की अकुलाहट है । युवा कवि और आगे बढ़कर इन बटे सन्दर्भों का जाड सक्ने म समय हा सकते हैं । उनके समक्ष अभी इस दिशा म भी पर्याप्त अवसर है ।

### [ ९ ] नागदेश के अधिवासी-व्यग्य

अवविता की एक और सशक्त विशयता है उसकी व्यग्य क्षमता । जहा व्यग्यकार निर्व्यक्तिकता क गुण से युक्त हैं वहा निश्चित ही उनके व्यग्य प्रभावशाली और तिलमिलाने वाले बन गये हैं, शेष स्थानों पर उनम रूखापना और गद्यरत्मकता है । यहा हम कुछ स्वस्थ व्यग्य कविताआ के उदाहरण दे रहे हैं जिनसे युवा कवियों को इस दिशा म नई दिशा सकेतो का अवबाध हो सके ।

आज हम सब नागदेश के अधिवासी  
हमारे चारो ओर नाग ही नाग हैं  
कुछ काले हैं कुछ कवर कुछ अजर  
हम उन्हें दूध देकर पाल रहे  
टेककर माथा सिर पर उठा रहे ?

यहा नाग भ्रष्टाचार का प्रतीक है । भ्रष्टाचार का विरोध न करना, चुपचाप विपपान करना भी एक भ्रष्टाचार है । इस तरह आज हम प्रत्यक्षत भने ही भ्रष्टाचार न करें, किंतु सक्रिय रूप स उसका विरोध न करने के कारण उसे प्रोत्साहन अवश्य दे रहे हैं ।

पाक के सन्दर्भ म विमलेश का अधोलिखित व्यग्य भी युगीन जीवन की बिड म्बनाओं को अच्छा तरह प्रस्तुत करता है—

जाओ, दो आने का तेल लाओ,  
और टूटी कमर पर मालिश कराओ



यद्योकि तुम्हारे हिमायतियों ने  
 पट्टी तुम्हारी बमर पर बाधने के बजाय  
 अपनी आखा पर बांध ली है  
 अपने पन में भी देखो कितनी घाघली है ।

आज का अपनापन भी विसंगतियाँ से भरा हुआ है और साठोत्तरी काव्य  
 इसी के विप्लेवण का प्रयास है ।

### [१०] आत्महत्या के विरुद्ध

डा० देवराज की 'आत्महत्या' का एक प्रसंग यहाँ और दुष्प्रसंग है । ६ छोटी  
 कविताओं में विभक्त यह आपकी एक लम्बी सी कविता है जिसका अंतिम अर्थात् उप  
 संहारात्मक अंश यहाँ प्रस्तुत है—

तुम्हारी खुदकुशी करने की बात मेरे दोस्त,  
 न मुझे पसन्द है न तुम्हारी भाभी को ।  
 फिर भी कानूनी पाबंदियों के बावजूद  
 यह मानना ही पड़ेगा  
 कि एक जनतन्त्री नागरिक होने के नाते  
 अपने जीने मरने के जिम्मेदार तुम हो  
 न कि इस या उस लोक की सरकार ।

इन पक्तियों द्वारा आज के आदमी के बीच औपचारिकताहीन सम्बन्धों और  
 सवेरनाहीन बौद्धिकता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है । अगर दोस्त आत्महत्या करता है,  
 तो कवि की पत्नी को नाहक ही दुख होगा उसे कितना कुछ राता पड़गा, महज इसी  
 लिए वह आत्महत्या न करे यह तक भी कम बजनदार नहीं । यह व्यंग्य युगीन मान  
 कीय सम्बन्धों की विकलाग स्थितियों को अनावत कर रहा है । यह इसे हम बौद्धिकता  
 कह सकें, तो यह साठोत्तरी पीढ़ी की एक प्रमुख विशेषता मानी जा सकती है ।

### [११] कुछ भी सही न होने की पीड़ा

साठोत्तर युग में न सही होने की स्थितियों के भी जो चित्र अंकित किये गये  
 हैं वे भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं—

लोग देश के उत्तर से दक्षिण तक, और पूरव से पश्चिम तक  
 कुछ भी सही न होने की तनी हुई रश्मियों में  
 लटके हैं । लटके हैं । लटके हैं । । ।

भूख से मरते तड़पते, छोगों को  
 कहा गया वे लोग अधिक अन्न उपजाने के महान  
 काय से लगे हैं, आन्दोलन नहीं करते हैं

और ये रम रोगानदार मुखड़े  
 चाँद के टुकड़े अपन लिए पूरी घणा तयार कर चुके हैं  
 और लोग उन पर बेक्षिप्तक नाक साफ करते हैं  
 'नाक साफ करते हुए लोग' भ्रून दिये जाते हैं गोलियों से  
 व्यवस्था, कानून और अनुशासन के नाम चढ़ाकर  
 आफेह सर दर्द करता है क्या यह देश  
 उ हैं सोंप कर हम बही नन जायें ? —कुतल कुमार जन ।

कुछ भी सही न होने की यह पीड़ा गलत भाषणवाजी, चानी के चाँद से टुकड़े मुखड़े, अनुशासन के नाम पर अत्याचार, छासा के भीतर त्रास, तमाम आदर्शों के नकावों के पीछे-पीछे झूठा के द्वारा फँसाई गई अव्यवस्थायें और हर मन की अधी सहमी बदमूदार गुफायें अत्र आज किसी का भी अजनबी नहीं हैं साठोत्तरी पीढी उन्हें अपना इष्ट बना कर चल रही है किन्तु यह कहना नितान्त भ्रम है कि उसमें जीवन दृष्टि का अभाव है, वह कोरी समवाचीन है, आधुनिक नहीं, उसमें ऐतिहासिक चेतना नहीं—उसका सारा सघष एक अच्छे मानव के लिए ही है, उसका यह आत्म सघष एक ऐसा महाभारत है जहाँ युद्ध के बिना मुक्ति नहीं कौरवों की विशाल बाहिनियों के बीच सैकड़ों अभिमन्यु आज कुचले जा रहे हैं किन्तु यह कम गौरव की बात नहीं कि वे सघषरत तो हैं ।

पौराणिक सदमों और ऐतिहासिक चेतना सम्पन्न कीर्तिलता की ये पक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—“जल में उषजे और उसके कीचड़ का घूसकर पनपने वाले ओ कमलकुल श्रेष्ठ ! शेषनाग पद पर सुशोभित हो मन्त्रिया की तरह क्या तुम भी जन विदेह बन गये ? तो अब मेरा अभिशाप लो कल ही दल्बदल काई अगस्ति, तुम्हारे इस सागर का अचमन कर जायेगा और तुम्हारा पाला हुआ घमचो सा शेषनाग, अवमर पाकर तुम्ह ही डम जायेगा । (आज तुम हो, कल इस सभ्या पर कोई दूसरा आ जायगा ।) इन सारी कविताओं को दखत हुए यह नहीं कहा जा सकता कि वे कवि कहे जाने वाले रचनाकार सदमों से कट ह, वे जावन विकास की शृंखला से जुड़े हैं, वे भुक्तिवादी नहीं, मुक्तिवादी हैं च्युत ससृष्ट नही ऐसा उन्हें मानने का भ्रम पाला गया है ।

### (१२) भूखी पीढी काम परिवेश में

कशन परस्ती, अध-अनुकरण, अज्ञान और जात्मप्रदर्शन के मोह में अ कविताके आ-दो सन में ऐसा भी बहुत कुछ लिखा गया है जो देष है कुत्सित है जीवन की अति-मथार्थ स्थितियों का नग्न वक्ष है, प्रतीकात्मक और फ टेसिया की असगतियों से भरा

हुआ है। विशेषरूपेण काम के क्षेत्र में भूखी पीढ़ी ने जिस नग्नता का इजहार किया है वह निन्दनीय है। यथा, शुभा के रजस्राव से कूटना करना, पतित रज (लिबर) में स्नान करने, उसकी एयरकंडीशंड ओदरी में सोने, फटिलाएज्ड होने और इससे भी अधिक खुले शब्द और चित्र साहसिकता के नाम पर भले ही किन्हीं की प्रशंसा के पात्र हो किन्तु व्यक्ति सत्य हाते हुए भी कविता के सामाजिक परिवेश में ये अनपेक्षित हैं। आक्रोशी मुद्राओं में भी कुर्सीधारियों को अश्लील गालियाँ देना न सो सवेगों का विवेकीकरण है और न भावों का बौद्धिकीकरण। अ कवियों का यह अ-यक्तित्व औ अ मानवीय रूप निश्चित ही साटोसरी पीढ़ी का एक प्रमुख स्वर रहा है किन्तु है वह उपेक्षणीय ही।

### (१३) एक कुत्ता रात भर रोता रहा

न जाने कहीं खो गई मेरी नदी जिसमें मैं नारें चलाई थी' (अपिता अप्रवान) में फिर दहकूंगा दलते सूरज की तरह और छाड़ूंगा अपनी रक्ताभा लहरो पर, पेड़ों पर, चट्टानों से निकल वहने झरनों पर (सुरेश श्रुतुपण) आदि में जो रामाटिक दृष्टिकोण और भावी जीवन के स्वप्ना की रूप रेखाएँ हैं (रोमानी) के भी परम्परा से जुड़ी हुई हैं कटी नहीं चिर परिचित प्रतीकों को उठाकर कही गई ये बातें भी सहज ग्राह्य हैं। एक कुत्ता रात भर रोता रहा, मेरे आसपास और मैं सोता रहा, फिर दिन भर मैं हाफता रहा, रोता रहा और वह कुत्ता कीचड़ में पूछ दबाय सोता रहा (अशोक अश्रवाल)—इस कविता में दिन में आदमी को कुत्ते के स्तर पर हाफना और रोना और फिर रात को कुत्ते का रोना—और इस तरह मानवीय जीवन की यह अनवरत क्रियाशीलता भी सहज ग्राह्य है। किन्तु बजरंग विशनोई जैसे अ कवियों की भी कमी नहीं जिनकी कविताओं का अर्थ (अ-नर्थ) समझाना सरल नहीं—आओ तम्हें दिखायें बिजली के लटकते से गरती रगीन रोशनियों की साजनों करवट के नीचे काठ के मच पर सामने से सरत रेखाओं सी उग आई दो घारी कटारों के इस चमचमाते हुए ज्वालामुखी वन को -

### (१४) केवल पर्याय हाथ मलने का

एक दूसरा कविता का उदाहरण देखिए—

एक इ च भूमि जहाँ रहन के लिए नहीं  
कोई कुल भी अपना बहन के लिए नहीं,  
सचाई पर पर्दा डालकर  
मैं अपना दश उस कहता हूँ  
घुए को गात बनाकर मैं न गाया है  
एक बार सुना झूठ अब तक दुहराया है

अथ कुछ नहीं दिन भर चलन का

केवल पर्याय हाथ मलन का

अपने हाथों दुःख को मारकर

रोज रोज नई मौत सहता हूँ

यह 'एक देश गीत' है। आधुनिक युग के अपने देश पर इसमें मार्मिक ध्वंग्य समाहित है। जिस देश में अपना कहने कायक कुछ भी नहीं, रहने को छप्पर नहीं तन ढाकने के लिए बसत्र नहीं, धाने को दानानही वही हमारा देश है। जहाँ 'कोई बात नहीं करता, बात नहा सुनता, कोई स्वजन नहीं, सब शोषण में मग्न हैं वह हमारा देश है। जहाँ के प्राचीन बभ्रव जीर जय स्मृतियाँ को दुहराता रहा, जिसे अनन्त को भी सहारा देने वाला रहता रहा, पर जो अपने देशवासियों को भी जीने की सुविधा न दे सका वही हमारा देश है। निश्चित ही ये ध्वंग्य आँखें खोलने वाले एव अंधविश्वासों पर पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करने वाले हैं। इस अर्थ में नयी पीढ़ी अथ युग को नयी वाणी और नय स्वर परिवर्षण प्रदान कर रही है। इस दिशा में आगे बढ़कर अभी बहुत कुछ ऐसा ही अर्जित किया जा सकता है।

युवा लेखक आज अपनी अधिकांश शक्ति विकल चीत्कार अत्मसंघर्ष, घुटन, कटु वातावरण से ऊब, छत्रपटाहट, अनास्थामयी जीवनी शक्ति तथा अतृप्त काम विपासाओं के चित्रण में लगा रहा है। निश्चित ही आज इनसे विद्रोह की आवश्यकता है। पर ये उपादान अपने आप में साध्य नहा अच्छे जीवन की लक्षि के साधन हैं। किन्तु हमारा आज का युवा वग पतझड की गध ग्रीष्म का उच्छवास मरुभूमि की तपन और जीवन की वितृष्णा का प्रतीक बन रहा है। वस्तुतः आज के जीवन की गति विधियाँ इतनी विकट नहीं हैं जितनी कि वे प्रकट की जा रही हैं। ये सुख दुख पहले भी आख और मन के खेल रहें हैं और आज भी सभव हैं। निश्चित ही आज शहरों के जीवन में अपूव परिवर्तन आया है किन्तु अभी उनके सुधार की सम्भावना है। अभी भी 'आगन के पार द्वार' खुले हुए हैं 'गाव के पार' टिकाने के लिए अभी भी जगह है, 'सूनी नाव अभी भी मनु के होने की सम्भावनाओं से भरी हुई है चाँद का मुख टेडा अवषय दिखाई देने लगा है किन्तु अभी भी अकेले बण्ट की 'पुकार' में शक्ति है काठ की घटियाँ अभी भी अज सरती हैं अभी भी 'आत्मजयी' आत्महत्या के विरुद्ध हैं और व इन विषय परिस्थितियों को अधिकार में कर सकते हैं। युवा लेखकों को केवल सनाहीन दशक नहीं बनना है वरन इसके आगे बढ़कर उन्हें अपने परिक्षेत्रों में नय आयामों की शोष करनी है। उनके द्वारा शोधा गई दिशाओं ही नये काय को विकास की सम्भावनाओं देंगी और युवा नविता को इतिहास में पन्नो में स्थान मिल सकेगा अथवा आज का समस्त लेखन परस्पर और आत्म संघर्ष में घुट पिंस कर समाप्त हो जायेगा।

युवा लेखक युगुस्ता की भावना को भी अधिक प्रथम दें पर यह भावना व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर अवमूल्यन, कथनी और करनी में विभेद, मोहभंग, असंतोष, किंवदन्तियों विबोध, अघेरापन, भटकाव, अनुत्तरता, सकीणता, यांत्रिकता, विद्रोह के छोललेपन, अतिपर्याप्तता आदि के विरुद्ध हो। आज का युवा लेखक एक बड़े हुए मुहावरे में भी बघता जा रहा है, उसे आगे बढ़कर इन सकीणताओं को तोड़कर सघनमयी पर निर्मल जीवन धारा की सजना में अपनी शक्ति व्यय करता है।

## परिशिष्ट

[ यहा पश्चिम की उन कलावादो काव्य-प्रवृत्तियो का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जिनका छायावादोतर हिन्दी काव्य-प्रवृत्तियो पर गहरा प्रभाव पडा है । ]

### अतश्चेतनावाद

सिगमंड फ्रायड (१८५६-१९३९ ई०) इसके जनक हैं। इनके अनुसार जीवन के सभी कामो के मूल में 'काम वासना' प्रमुख वस्तु है। बाल्यकाल में यह काम वासना मातृरति (Oedipus Complex) के रूप में परिणत हो जाती है। बाल्य कालीन ये ही अतृप्त काम-वासनायें आगे चलकर 'यक्ति का चरित्र निर्माण करती हैं। फ्रायड के अनुसार मनुष्य का मानस मुख्यांश में अचेतन है, और ईप्सु माता में चेतन। अचेतन मस्तिष्क में ही वे काम वासनायें छिपी पडी रहती हैं, जिनकी पूर्ति व्यक्ति अपने दैनंदिन जीवन में सामाजिकता, रीति रिवाज, धर्म या समाजभय के कारण नहीं कर पाता, अपने चेतन मस्तिष्क के द्वारा व्यक्ति इन सामाजिक और सांस्कृतिक बंधनों की विरोधी वस्तियों का दमन कर देता है किन्तु ये काम वासनायें मरती नहीं प्रत्युत अचेतन मस्तिष्क में जाकर अपने प्रकाशन का समुचित अवसर खोजने लगती हैं। सुअवसर पाकर ये ही मनो-याधियों, स्वप्ना, दिवास्वप्नों, साहित्य, कला आदि के रूप में व्यक्त हो जाती हैं। कला के रूप में जो काम वासनायें व्यक्त होती हैं उनमें और स्वप्ना मनो-याधियों के रूप में व्यक्त होने वाली दमित वस्तियों में कोई तात्त्विक भेद नहीं है, हा एक को सुशुचिपूर्ण और दूसरे को सुशुचिपूर्ण कहा जाता है। कला में कलाकार अपनी कल्पना द्वारा अपनी अतृप्त, कुठाओ को छद्ममय आवरण दे देता है जिससे उनका प्रकाशन बिना हिचक के किया जा सके। यह छद्ममय आवरण देना ही कलाकार की सज्जनशीलता का रहस्य है। यही छद्ममय प्रकाशन कला में उदात्तीकरण के नाम से पुकारा जाता है। यही छद्ममय आवरण कुठाओ, काम वासनाओ का कलात्मक रूप कलात्मक सौन्दर्य कहा जाता है जो पाठको के आह्लात् का कारण है। यह प्रेषणीयता भी दमित काम भावनाओ की पाठक में उपस्थिति के कारण रस पेशल होती है। पाठक या श्रोता अपनी ही दमित कुठाओ की छाया जब दूसरी जगह देखता है, तो वह आह्लादित हो उठता है। कलाकार अपनी अचेतन पापानुभूतियों से परिचालित होकर काव्य-संजना में लक्ष्य

माध्यम से वह अपनी दमित काम वासनाओं का प्रगटीकरण करके उनके दश से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार फ्रायड के अनुसार कलाकार का मानस रूग्ण रहता है और काव्य सृष्टि आत्मापचार का एक साधन है। इस प्रकार काम भावना या (लिविडो) को फ्रायड जीवन व्यापिनी शक्ति मानता है, जिससे छोटे बड़े सारे मानवीय क्रिया-व्यापार परिचालित होते हैं।

एडलर और काल युग भी अतश्चेतनावादी विचारक हैं किंतु ये फ्रायड से क्वचित् मतेभेद रखते हैं। एडलर विकृत काम वासना को मूलभूत शक्ति न मानकर हीनता की भावना (इनफारियर कामप्लेक्स) को सर्वस्व मानता है। यह शारीरिक या अर्थ हीनताओं के फलस्वरूप बाल्यकाल से ही व्यक्ति के अचेतन में बद्धमूल हो जाता है। उसी के निवारणार्थ, क्षतिपूर्ति के रूप में व्यक्ति के जीवन में सत्ता और महत्वाकांक्षाओं का सृष्टि होती है। साहित्य और विविध कलायें, हीन भावना की प्रथि से उत्पन्न क्षति पूर्ति का साधन हैं। बालक में बुद्धि विकास के मूल में भी यही वस्तु रहती है। अभाव की अनुभूति व्यक्ति को ग्लानि से भर-देती है प्रतिक्रिया स्वरूप व्यक्ति उस अभाव या हीनता की भावना को नष्ट करने के लिए अप्रसर होता है। एडलर के अनुसार जो व्यक्ति जितना अधिक मध्यावी या प्रतिभा सम्पन्न होगा उसके हृदय में उतनी ही अधिक ग्लानि या आत्महीनता की प्रथिया होती है। आत्म ग्लानि ही प्रभुत्व सत्ता को उग्र करती है। इस प्रकार व्यक्ति शक्तिशाली प्रतीत होते हुए भी वस्तुतः शक्तिहीन होते हैं। उसकी क्षतिपूर्ति का प्रयत्न व्यक्ति स्वयं परायणता और जह्कार का हतु होता है। इस प्रकार का लक्षक अधिक प्रतिक्रियावादी और स्वच्छन्नावादी होता है। एडलर का यह भी कहना है कि साहित्य कला, शिक्षा, मनोविज्ञान आदि का लक्ष्य व्यक्ति या कलाकार की भिष्या अहमूलकता को नष्ट करके विश्व बहुत्व या सामाजिक भावना का विकास करना भी है। दस्तोयेवस्की ने यही काय करके साहित्य सजना के क्षेत्र में महानता प्राप्त की।

युग जीवनेच्छा का मानवीय जीवन के विकास की मूल धुरी मानत हैं। उनके अनुसार जीवनेच्छा ही व्यक्ति में जीवित तथा अमर रहने की प्रबल भावना का सृजन करती है। यह वासना लोक धित्त और पुत्र-इन तीन मार्गों से अभिव्यक्त होती है। साहित्य और कलायें सदा जीवित तथा अमर रहने की लालसा के ही प्रतिफलन होते हैं।

युग ने काम वासनाओं तथा हीनता की प्रथिया को जीवनेच्छा में ही समाहित कर लिया है। उनके अनुसार जीवनेच्छा ही इन दो रूपों में अभिव्यक्त होती है। इन्हीं को आधार बनाकर उन्होंने आत्ममुखी और बहिमुखी व्यक्तियों का विभाजन भी किया है। अन्मुखी व्यक्तियों में प्रभुत्व कामना प्रमुख रहती है बहिमुखी में काम वासना। प्रथम शासक या नेता हाना चाहता है, दूसरा शासित। प्रथम, अपने को

सबसे अधिक महत्व देता है, दूसरा, दूसरो को। ये दोनों ही वासनाएँ प्रत्येक व्यक्ति में रहती हैं किन्तु किसी में कोई कम, कोई अधिक या प्रबल रहती है। इस प्रकार युग का मत सम-व्यवादी है ये काम-वासनाओं को फायड की तरह दमित न मानकर अविकसित मानते हैं। युग कलाकार के हृदय में दो विरोधी प्रवृत्तियों का द्वन्द्व मानते हैं। एक ओर उसका व्यक्तिगत जीवन और वैयक्तिक-सुख साधन है, दूसरी ओर सजना की उदात्त प्रेरणा है। इनके परस्पर द्वन्द्व से कलाकार विकल रहता है, कला में 'सामूहिक अचेतन' की मूल प्रेरणा काय करती है। यह 'सामूहिक अचेतन' व्यक्तिबद्ध न होकर प्राणि मात्र में सम्बन्धित कल्याण-भायना है। चेतना इसी सामूहिक अचेतन से उत्पन्न होती है। युग के अनुसार जब किसी व्यक्ति या युग की चेतना समय के अनुकूल नहीं रहती तो उसकी क्षतिपूर्ति के लिए सामाजिक अचेतन सजग रहता है।

इस मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित साहित्य में यथायवादी शली का अनुगमन करके जीवन की कुंठाओं, दमित काम वासनाओं, निराशा, उदासी, विश्व खलित मन स्थिति को काय का वर्णन बनाया गया। इस प्रकार यौन विचारों और दमित वासनाओं तक कलायें सीमित हो गईं। लेखक अपनी विलासिता की पूर्ति करना अपना वस्तुव्य समझने लगे और साहित्य के त्रमागत सभी प्रतिमान उपक्षित हो गये। जो काय अभी तक छद्मवेश में होता था अब वह खुले आम और नग्न रूप में होने लगा। फलतः दुबल, अतर्क्य प्रधान और चरित्रहीन पात्रों और नायकों की प्रश्रय दिया गया, उन्हें साहित्य का नायकत्व दिया गया और वैयक्तिक काम वासनाओं की पूर्ति को सर्वस्व मानकर क्षणवादी मनोदृष्टि को चरमता प्रदान की गई। क्षणों के सुखों में ही जीवन का सार समझा जाना लगा। कलाकार अचेतन रूप से नहीं प्रत्युत सचेतन होकर अपनी पापानुभूतियों का प्रकाशन करने लगे। कवि की सत्ता अत्यन्त ऐकात्मिक और मनो मयी हो गई। व्यक्तित्व और अवचेतन की दमित, सड़ी गली वस्तुओं को वाणी देना ऐसे कलाकारों का चरम लक्ष्य बन गया। फलतः इस साहित्य का देश-विदेश सर्वत्र गहरा विरोध हुआ। रोजेस फ्राई ने लिखा है कि फायड के सिद्धांत केवल अधम साहित्य का ही चर्चा करने में समर्थ है उच्च साहित्य उसकी पहुँच के परे है। यह एक कलावादी सिद्धांत है। हिन्दी के सभी प्रयोगवादी कवि इस मत से प्रभावित रहे हैं।

### प्रतीकवाद

प्रतीकवाद का जन्म फच काव्य में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में हुआ। बड़े ही समय में इस कलावादी सिद्धांत का प्रभाव साहित्य तथा कलाओं के सभी अंगों पर गहराई के साथ पड़ा। प्रतीकवादी फ्रेंच कवियों में बोदलेयर, बल्लेन, ग्लामों रेम्बो, एरीद रेये व्हॉरेन, गस्ताव बान, क्लोदल, प्रूस, वाल्सेरी आदि प्रमुख हैं।



इन कवियों का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा है। जर्मनी के रिल्के, रूस के ब्लोक, आयरिश कवि योत्स, अमेरिका के हायान और ब्रिटन तथा इंग्लैंड के टी०एस० इलियट उनमें से कुछ प्रमुख हैं। इलियट अमेरिका के थे पर इंग्लैंड में आकर बस गये थे।

जिस समय प्रतीकवाद आन्दोलन के रूप में जन्म ले रहा था उस समय फ्रांस में कतिपय दुर्घटनाओं के पश्चात् तीसरी गणतन्त्र (१८७० ई०) की स्थापना हो चुकी थी। शिन्हा का व्यापक स्तर पर निःशुल्क रूप से प्रचार हो रहा था। इस समय समाज आभिजात्य वर्ग तथा विस्तृत जन साधारण के रूप में विभक्त था। साधारण वर्ग नव चेतना के प्रकाश से पुरोहितवर्ग तथा उसकी दुबलताओं से पूर्णतः अभिन्न हो रहा था। इसमें आभिजात्य तथा पुरोहित वर्ग के प्रति प्रतिक्रियाएँ होने लगी थी। आभिजात्य वर्ग भी इससे सजग हो रहा था और अपना प्रभुत्व कायम रखने तथा जनता में समादर पाते रहने के लिए प्रयत्नशील था। उसने प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक धार्मिक स्कूल खुलवाये जिनके द्वारा उच्च धार्मिक शिक्षा का प्रसार कार्य प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार एक ओर जन सामान्य वर्ग था और दूसरी ओर पुरोहित वर्ग। साहित्य के रूप में जब ये वर्ग टूले तो उनसे एक ओर यथायवाद का प्रवर्तन हुआ और दूसरी ओर प्रतीकवाद का। एक के जनक थे एमिल जोना और दूसरे क मलार्मे। जोना न भौतिक विज्ञान का आश्रय लिया और स्थूल, भौतिक यथाय और प्रकृतवादी प्रवृत्तियों को जन्म दिया। मलार्मे ने यथायवाद या प्रकृतवाद का विरोध करते हुए सूक्ष्म अमृत सौन्दर्यपरक और प्रतीकवादी वृत्तियाँ का प्रथम दिया।

तत्कालीन जन सामान्य की मनोवृत्तियों का सबल लेकर प्रकृतवाद फ्रांस की धरती की उपज थी। वह आगस्त कौन त्रिंके तेन और रेनें जैसे समीक्षका तथा साहित्यिकों की मनावृत्ति का सहज विकास था। इसके साथ ही प्रकृतवाद समसामयिक शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान विकासवाद और भौतिक विज्ञान से सम्बन्धित नई शोधों से प्रभावित भी हुआ था। ईपत मात्रा में इसन इतिहास सम्बन्धी नये अनुसंधानों से भी प्रेरणा ग्रहण की। प्रकृतवाद ने यथायवादा शैली का अनुगमन किया। सामाजिक मनोवृत्ति की प्रमुखता के कारण यथायवाद ने कवियों की व्यक्तिनिष्ठता तथा उनके व्यक्तिगत संवेदनों को नहीं उभरने दिया।

प्रतीकवाद प्रकृतवाद के विरोध में प्रतिक्रिया स्वरूप विकसित होने के कारण उनकी सभी मूल प्रवृत्तियों का विखण्डन करके अग्रसर हुआ। उसने यथायवाद की जगह रहस्यवादी शैली को गृहीत किया और तत्कालीन पारनसनिज्म (Parnassianism) का विरोध किया। प्रतीकवाद में अपने देश से बाहर की विचारधाराओं से भी प्रेरणाएँ ग्रहण कीं। काँट फिच्छे, शौलिंग हीगल, शापेनहावर आदि उनकी प्रमुख

प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। पारनेशनिज्म धारा के कवि—गातिया लेकात, हरदिया आदि यथाथ वस्तुमूलकता को लेकर अपसर हा रहे थे। मलामे ने उनका विरोध तथा अपने प्रतीकवाद का समर्थन करते हुए लिखा है कि 'पारनेशन-कवि विषय वस्तु को उसके यथाथ रूप में ग्रहण करते हैं और उसी रूप में हमारे सामने प्रस्तुत भी कर देते हैं। इस प्रकार उनमें रहस्यबुद्धि का अभाव रहता है। रहस्य के कारण विषय वस्तु को समझने के प्रयत्न में धीरे धीरे विश्वास करने का जो समोहक आनन्द हम प्राप्त हाता है उससे हमारा मस्तिष्क वंचित रह जाता है। कविता का आनन्द तभी मिश्रता है जबकि हमें संतोष हो कि हम उसकी वस्तु का थोड़ा थोड़ा करके अनुमान लगा रहे हैं परन्तु स्पष्टतया कथन कर देने से कविता का तीन चौथाई आनन्द नष्ट हो जाता है। हमारी मनस चेतना को वही प्रिय है, जो संकेत करता हो सचेत करता हो।' मलामे के इस सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार के काव्य की सजना हुई, उसमें कथन स्पष्ट न हो कर अस्पष्ट रखा गया और प्रतीकों की बहुलता जान बूझ कर रखी गयी।

प्रतीकवाद का प्रारम्भ बोदलेयर के द्वारा हुआ था पर उसकी शली सम्बन्धी विशेषताएँ विल्लिर्स ( Villiers del Isle Adam ) की 'एसेल' ( Axel ) नामक कृति से प्रकाश में आयी। बोदलेयर एडगर एलन पो के सौन्दर्यवाद से प्रभावित हुआ है।

प्रतीकवादी अपनी सवेदनाओं तथा भावनाओं को प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते थे अतएव इन्होंने प्रतीक योजना की विविध शक्तियों का अनुवर्तन किया। इनके सिद्धान्त अतिविरोधा से भर हुए हैं। इनके अनुसार हमारी अनुभूतियाँ एक दूसरे से सश्लिष्ट, गतिशील और अप्राप्य होती हैं। इन्हें तो ठीक ठीक शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है और न स्मरण-शक्ति के द्वारा ही स्मृत किया जा सकता है। मलामे के अनुसार अभिव्यञ्जना की यह प्रक्रिया त्वरित होती है। इतनी त्वरित कि अनुभूति और अभिव्यञ्जना मूलतः दो पक्षक वस्तुएँ न रहकर एकमेव हो जाती हैं। इस प्रश्लिष्टता के कारण काव्य के वस्तु और शलीगत भेद नहीं किए जा सकते। फिर प्रत्येक कवि की सवेदनाओं तथा अनुभूतियों में भी पाथक्य रहता है अतएव उन्हें पूरे परिवेश में रूपायित करने के लिए कवि को नई शक्तियों का अवलम्बन भी लेना पड़ता है। नये विषय और नये प्रतीकों का बाहुल्य इसी कारण उसकी रचनाओं में हो जाता है। मलामे यह भी कहता है कि अनुभूत विषय अक्षयनीय अनुपम और त्वरित होने के कारण उसका ज्यो का त्यो प्रस्तुताकरण असम्भव है। कवि केवल उसका संकेत भर कर सकते हैं। वे अभिव्यक्त नहीं केवल व्यञ्जित हो सकते हैं। इस प्रकार अन्तमन की सूक्ष्म से सूक्ष्म सवेदनाएँ ध्वनियाँ, प्रतिध्वनियाँ और रहस्यपूर्ण संकेत ही उनके बाध्योपादान बनें और अस्पष्टता का यह गर्भ विशेष

पता मानी जान लगी। इन्होंने ध्वनि तथा सुगन्ध की अजीब-अजीब धारणाएँ भी व्यक्त की।

प्रतीकवादियों ने रोमांचो को अश्रेय महत्व दिया तथा अन्तर और बहिर्जगत की धारणाओं, भावनाओं और बौद्धिकचेतनाओं को उपेक्षित कर दिया। ये प्रकृति का प्रत्यक्ष स्वरूप मिथ्या मानते थे। वास्तविक सृष्टि उहीने अमूर्त और अपाण्डित्य मानो, अन जिस ससार की इन लोगो ने सृष्टि की वह हमारा जीता-जागता ससार न होकर—दुःखनताओं विघ्नमो निराशा गुण्डा, उदासीनता, शमित दुःखचेष्टाओं का असामाजिक ससार है। ऐंद्रिय चेतना इनकी प्रमुख वस्तु याजना है।

१८८५ ई० से लेकर १८९२ के बीच में विपुल मात्रा में प्रतीकवादी रचनाएँ लिखी गईं। इस समय अवेले पेरिस से लगभग एक सौ प्रतीकवादी पत्रिकाएँ निकलती थी जिनके माध्यम से Edouard Dugardin, Teodor de Wyzwa Remy de Gourmont आदि समीक्षक और प्रतीकवादी कवि इस आन्दोलन के मूल्यों और विशेषताओं का विनापन कर रहे थे। सबसे पहले १८ सितम्बर १८८६ को 'फिगरो' नामक पत्र में प्रतीकवादी आलोचक मोरोआज ने प्रतीकवादी के उदय की उदघोषणा की थी किन्तु आगे चलकर यह आलोचक प्रतीकवादी धारा को छोड़कर शास्त्रीयता की ओर लौट गया।

प्रतीकवाद के पुरस्कर्त्ताओं में से प्रमुख बोन्तेयर के अनुसार काव्य का नति कता से कोई सम्बन्ध नहीं है। नतिकता का अप्रह काव्य शक्ति की क्षीणता का कारण होता है। काव्य काव्य के लिए है और इसके बाहर उनका कोई प्रयोजन नहीं है।

'Poetry has no end beyond itself, if a poet has followed a moral end he has dismissed his poetic force and the result is most likely to be end'

प्रतीकवाद का एक अग्र कवि वर्लें ने भी काव्य में किसी भी उत्तरदायित्व का बंधन स्वीकार नहीं किया है। वह निर्बाध रूप से आत्मपीडन, परपीडन आदि 'यूरोसिस' के सभी लक्षणों का प्रदर्शन काव्य में करना चाहता था। इस सन्दर्भ में उसका कथन है कि स्नायु व्यतिश्रमक रोगी की भाँति मैं बयस्क जीवन के उत्तर दायित्व को अत्यन्त कठोर समझता हूँ और एक दूसरी बाल्यावस्था में पलायन पसन्द करता हूँ।<sup>1</sup>

प्रतीकवादी बन्तर व संगीत से भी प्रभावित रहे हैं। इस सम्बन्ध में मलार्ने का कथन है कि काव्य एक प्रकार का संगीत ही है। वह हमारी इन्द्रिय चेतना को जागृत करता है और मन की अमूर्त तरंगों को झटूत। मलार्ने एक ऐसे संगीत का

स्वप्नदर्शी या जिनके स्वर ग्रह उपग्रहों से झटुट होकर अनन्तरात्मा में सौन्दर्य-चेतना भर देते थे।

व्यक्तित्व का दृष्टि से सभी प्रतीकवादी कवि दुबल अप्राकृतिक, अधार्मिक, अस्वस्थ और आत्मकेन्द्रित रहे हैं। वे अनतिक कुत्सित और घणास्पद कार्यों में भी लिप्त रहे हैं। वल्लभ जीवन में शराब, कविता जल, अस्पताल और दुष्टतापूर्ण काय ही प्रमुख थे। प्रतीकवाद के ही एक समर्थ कवि रिम्बो ने एक बार उसे अपन पूर्व आघातों का प्रतिकार लेते हुए निद्रयतापूर्वक मारपीटकर एक गड्ढे में डाल दिया था। वाल्देयर भी चरित्रहीन था। गोरकी के शब्दों में फ्रांस को वह ऐसी विषाक्त और निराशा से परिपूर्ण रचनार्यों दे गया जिनके कारण वह अपने जीवन काल में विक्षिप्त और मरने के पश्चात् कवि कहनाया और बाद में विस्मरण कर दिया गया। दि माडन राइट्टर एण्ड हिज वल्ड' में जी० एस० फ्रेशर ने रिम्बो और मलार्मे के प्रति अपना अभिमत देते हुए लिखा है कि 'मलार्मे की तरह वह (रिम्बो) क्या कर रहा है, इसका न तो उसे ज्ञान था और न वह जानना ही चाहता था। वह शराबी की तरह मस्त होकर अव्याहृत रूप से बोलता जाता था और उसने काव्य तथा जीवन को एक तो किया पर विभ्रम और अव्यवस्था को जन्म देकर।'

लाफोग भी प्रतीकवादी निकाय का एक प्रतिनिधि कवि था। उसकी चतुर उक्तिवा आस्थाहीनता और वस्तुमौजी एके होशियार स्कूली लड़के के समान कही गई हैं। कोबियर भी इसी सम्प्रदाय का एक प्रमुख कवि है। विल्सन ने उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह दिन भर सोता और रात्रि भर जीवन की अनुभूतियाएँ करता था और कविताएँ लिखता था। परिस में, वेभ्याओ से उसकी विशेष मती थी क्योंकि जपन समान वह उन्हें भी समाज से बहिष्कृत समझता था।' साफाग और कोबियर दोनों तपदिक के मरीज थे और क्रमशः २७ और ३० वर्ष में मर गये।

फ्रांसीसी काव्य में इस आन्दोलन के पूर्व भी प्रतीकों का प्रयोग हुआ था। ईसाइ मत के परम्परागत प्रतीक थे किन्तु वे सरल सुगम और जन सामान्य थे किन्तु प्रतीकवादी कवियों ने अपनी रोमांचकारी अनुभूतियों की साकेतिकता के लिए जिन प्रतीकों का प्रयोग किया व पणल नवीन, बुद्धि विशिष्ट, दुरूह और जन निरपेक्ष थे। फिर यह हुआ कि प्रतीकवादा साहित्यिक जगत से जल्दी ही मर गया। इसी प्रतीकवाद का अनुग्रहण कर हिन्दी के प्रयोगवादी कवि अग्रसर हुए थे। फलतः उनका काव्य भी बुद्धि विशिष्ट प्रतीकात्मक, अस्पष्ट रोमांचपूर्ण और अमूर्त अनुभूतियों की साकेतिकता से भर गया और अल्प काल में ही काल क्वलित हो गया।

### विम्बवाद

विम्बवाद का प्रवर्तक एम. टी. एस. ह्यूम का नाम प्रमुख है। अंग्रेजी साहित्य

में इसका प्रचलन इजरा पाउण्ड के द्वारा हुआ। टी० एस० इलियट भी इसका उन्नायकी में एक प्रमुख कवि रहे हैं। बाद में राड और लारेंस जैसे कवि भी इस आन्दोलन में दीक्षित हुए हैं। विम्बवाद १९०८ में एक साहित्यिक आन्दोलन के रूप में प्रचलित किया गया था। पाउण्ड विम्बवादी (इमेजिस्टस) शब्द के आविष्कारक हैं। उनके अनुसार जिसके द्वारा निमित्त मात्र में बौद्धिक तथा सवेगात्मक जटिलता का प्रकाशन ही जाय, वह विम्ब है।<sup>1</sup>

सम इमेजिस्टस पीपटस गीर्षन से सन १९१४ में विम्बवादियों का पहला सकलन प्रकाशित हुआ इसमें उन्होंने अपने आन्दोलन से सम्बन्धित निम्नांकित मायताओं को उद्धोषित किया—

- (१) विषय का प्रत्यक्ष प्रतिपादन (हायरेकट ट्रीटमट आफ दी सबजेक्ट)
- (२) प्रस्तुतीकरण की मित-यमता (एवोनामी आफ प्रिजेटशन)
- (३) विम्ब का सिद्धान्त (दि डाकट्रिन आफ दि इमेज)
- (४) व्यवस्थित लय प्रयोग (दि मूज आफ आर्गेनिक रिदिम)

ये लोग सामान्य भाषा और सम्यक शब्दों के प्रयोग पर विशेष बल देते थे। सम्यक शब्द से इनका आशय उस शब्द तथा जिसका स्थान उसका कोई अन्य पर्यायवाची या समलक्ष्य शब्द ग्रहण न कर सके। य कठिन किंतु स्पष्ट कविताएँ लिखने के पक्षपाती थे। सुन्दरतम और ध्वन्यात्मक होते हुए भी विम्बवादी अनिश्चित विशेषताओं को प्रथम देने के पक्ष में नहीं थे। नवीन लयों के निर्माण पर य विशेष जोर देते थे और उनका यह भी एक सिद्धांत वाक्य था कि प्राचीन लयें पुराना मनादशाओं की छोटक हैं अतएव उनका प्रयोग कभी न किया जाय।

इन मायताओं के कारण विम्बवादियों की भाषा सक्षिप्त, सूक्ष्म और चित्रात्मक हो गयी है। टी० एस० इलियट के बेस्ट लण्ड में इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है पर इस प्रकार की कविताओं को लिखने में पाउण्ड तथा हिल्डा डूटिट को विशेष सफलता मिली है। य कवि क्षणिक मनोदशाओं को काव्य में व्यक्त करने की चंष्टा करत रहे हैं। अल्पमात्रा में इन पर प्रभाववादी चित्रकला का भी प्रभाव पडा है।

अनेक कमजोरियाँ कर रहे हुए भी विम्बवाद न भाषा तथा श्लोक के नवीन प्रयोग करके काय के रूपात्मक बंधनों की रुद्धिप्रस्तता से मुक्त किया है। अतुकांत तथा मुक्त छंदों की अवतारणा की। काव्य तथा संगीत में सामंजस्य स्थापित करने

1 'An image is that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time'

—Ezra Pound

का प्रयास किया और सौन्दर्यवाद की प्रतिष्ठा की। यह सिद्धान्त भी कला के लिए कला को मानने वाला सिद्धान्त है। यीटस, जेम्स ज्वायस, गर्ट्रूड रटीन, प्रुस्त, वेलेरी, रिल्के, ह्यूटमन, एलेक्जेंडर ब्लोक, सैंडबग आदि जैसे कवि भी इससे प्रभावित रहे हैं।

### टी० एस० इलियट

इलियट के आरम्भिक कवि-गुरु फ्रांसीसी प्रतीकवादी कवियों में से जूल लाफोग और कौवियर रहे हैं जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व के विषय में पिछले निवृत्त म संकेत किया जा चुका है। एडमंड विल्सन ने त्रिस्ता कौवियर को रोमांटिक कहा है जो 'उदास मन, अस्वस्थ दिमाग, तेजा से काम करता हुआ, कराहता हुआ, अश्लील मजाक करता हुआ, नम्बरी कदियों के बण्डे पहिनकर अपने को प्रसन्न किया करता था।' लाफोग भी जीवन का अस्वस्थ पक्ष लेकर आगे बढ़ रहा था। इन दोनों का अतिरिक्त इलियट गोतिए और इजरा पाण्ड से भी प्रभावित रहे हैं। गोतिए फ्रांस के प्रमुख रोमांटिक कवियों में से एक था जिसकी विचारधारा क्षयशील और उच्छ्वलता से भरी हुई थी। इजरा पाण्ड का एक लेखक ने 'अन्तरराष्ट्रीय आवागमन' की सज्ञा दी है जिसका डा० रामविलास शर्मा ने मुक्त स्वर में समर्थन किया है। दि क्रियटिव एक्स पीरिमेंट्स में सी० एम० बावरा ने पाण्ड के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा करते हुए लिखा है कि 'निस्संदेह पाण्ड में कोई ऐसी वस्तु है जो हमें उससे दूर ठलती है। उसका अगाध विद्वता का दावा उसके अपने निर्देशनों से सिद्ध नहीं होता। उसकी कविता में जिस व्यक्तित्व का दर्शन होते हैं, उससे सहानुभूति भी नहीं होती। उसके पद्य की गति अक्सर काना को अप्रिय लगने वाली होती है। उसकी रचनाओं पर नकला तटक भडक की छाप रहती है जो भद्दा लगती है मानो कवि सर्वज्ञ हो। उसके राजनीतिक विचार विधुग्ध और पाशविक हाते हैं और इनसे उसे गद्दर का नाम मिला है जिससे किसी को ईर्ष्या नहीं हो सकती। (आस्था और सौन्दर्य पृष्ठ २२६ से उद्धृत)

डा० रामविलास शर्मा जी के अनुसार पाण्ड जैसे लेखक पूँजीवादी सभ्यता की वह सड़ाह है जिन्हें इंग्लैंड और अमेरिका का साधारण पूँजीवादी लेखक भी सहर्ष नहीं कर पाते। इलियट पर ऐसे ही लेखकों का प्रभाव पड़ा है जिसको गुरु मानिकर हिन्दी के प्रयोगवादी कवि अक्सर हुए हैं।

डा० शर्मा जी ने इलियट के 'वेस्ट लैंड' का भी विश्लेषण किया है और अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि इलियट के स्वप्न उस पुरुषायहीन व्यक्ति के स्वप्न हैं जिसकी मिनती न जीवित व्यक्तियों में हो सकती है और न मतका म। इलियट ने यौद्धिकता की बड़ी हिमायत की है। सबके से अपने प्रकांड ज्ञान की घोषणा की है लेकिन इस

बजर प्रदेश से निकलने के लिए मिथा यात्राएँ करनी हैं और कुछ टाटका के उसके पास कुछ नहीं है। न तो उसकी कविता पूँजीवादी समाज की विषमताओं का चित्रण करने में समर्थ है न उसकी बौद्धिकता, समाजवाद की ओर एक भी कदम उठाने को नयार है।— इलियट रण कल्पना का कवि है। उस लन्दन-विज पर चलते हुए सब आत्मी मुद्दें लगते हैं। इस कल्पना में मानवता-विरोध के विपल कीटाणु हैं। इस कल्पना के सहारे वही भा स्वस्थ जीवों के चिह्न दिखाई ही नहीं देते। (आस्था और सौन्दर्य, पृ० २३२)

डा० गर्मा ने यह भी प्रमाणपूर्वक सिद्ध कर लिया है कि इलियट के *Prufrock and other Observations* (1917) नामक ग्रंथ के अनेक वाक्य हिन्दी में प्रयोग वादा कवियों के सिद्धांत वाक्य बन रहे। यथा

And Indeed there will be time

To wonder Do I dare ?

and Do I dare ?

And in short, I was afraid

× ×

It is impossible to say

What I mean !

इलियट के वेस्ट लड में विविध भाषाओं के अपरिचित सन्दर्भ आये हैं। विलुप्त सन्दर्भता के कारण वह ग्रंथ दुर्वोध हो गया है। पहली बार जब पाठक ने इसे काट छाट कर इलियट की दिया था तो स्वयं व भी उसकी नहीं समझ पाये थे। विलुप्तता, अस्पष्टता और प्रतीकात्मकता इस सीमा तक है कि ग्रंथ से अधिक पठ सन्दर्भों के विश्लेषण रूप में अंत में जाड़े गये हैं। वेस्ट लड का अंत शान्ति शान्ति इस भारतीय उपनिषद के वाक्य से होता है। यही पत्निया सम्पूर्ण कृति के खोजलेखन को एक नवीन आशा और आस्था में परिणित कर देती है। यह मानना पड़ेगा कि विविध प्राचीन भाषाओं का इलियट का गम्भीर अध्ययन था। संस्कृत के पुराण, भागम निगमों का भी उसने व्यापक रूप से पारायण किया था और व्यापक अध्ययन के आधार पर ही उसने अपने अनेक सन्दर्भगत प्रतीकों का संचयन किया था पर परवर्ती कवियों तथा हिन्दी के प्रयोगवादियों ने जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वे अध्ययन को विस्तृत भूमिका पर आधारित न होकर फशनगत रूप में ही सर्वाधिक रूप से व्यवहृत हुए हैं।

वेस्टलड में प्रथम महायुद्ध के पश्चात हारे थे, उदास, निराश यूरोपीय जीवन का छाछ नापन प्रदर्शित किया गया है। आदमी किन्तु अविमूढ़ है। कहा जाये ?

क्या करे ? यह स्वयं नहीं जानता । इलियट इसमें बिम्बात्मक शैली का प्रयोग करते हैं और एक के बाद दूसरा चित्र चल-चित्र की भांति चलता चला भाता है । इनमें परस्पर कोई भी ऐतिहासिक या किसी अवितिपूर्ण विषय वस्तु का क्रम-विधान नहीं है । सब कुछ अव्यवस्थित विश्व खलित, बीच-बीच में कवि विभिन्न कवियों के उद्धरण भी देता चलता है । इसमें इलियट ने तिरेसियस (Tiresias) नाम का एक अद्वितीय पात्र भी उपस्थित किया है । कविता के बीच-बीच में अनेक स्त्री-पुरुष स्वर श्रुति गोचर होते हैं जो 'यक्ति की अतश्चेतना के विभिन्न स्वरों के प्रतीक हैं । पूरी रचना व्यंग्य प्रधान है और दृष्टिकोण विघातक है । सजनात्मक या विघायक दृष्टिकोण यदि कुछ कहा जा सकता है तो अंतिम पवित्र ही है जिसकी ज्वाला ऊपर की जा चुकी है । इलियट की यह कृति अंग्रेजी में ही नहीं विश्व में चर्चा का विषय रही है और इसी कृति के माध्यम पर उन्हें विश्व-यापी यश और कीर्ति भी मिली है । उनके कृतित्व की अनेक दुबलताएँ हैं किन्तु उन पर ध्यान न देकर यदि हम उनके नाटककार और समीक्षक-रूप पर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि उन्होंने साहित्यिक सार को केवल खोजलापन ही नहीं दिया कुछ ठोस वस्तुएँ भी दी हैं ।

उन्होंने एक ओर आई० ए० रिचर्ड्स के समीक्षा सिद्धांत ( मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद ) की कमियों को निकालकर उसकी पथक रूप से समीचीन व्याख्या की, दूसरी ओर कवि और कलाकार के लिए परम्परा का ज्ञान आवश्यक सिद्ध किया । उनका कथन है कि प्राचीन साहित्य के अध्ययन से परिष्कृत समीक्षात्मक संवेदन का उदभव होता है, साथ ही आग आन वाली पीढ़ियों की रचनात्मक प्रतिभाओं को मूल्यवान प्रेरणाएँ भी मिलती हैं—

'No poet nor artist of any art has his complete meaning alone His significance his appreciation is the appreciation of his relation to the dead poets and artists'

Selected Essay P 15

इलियट ने काव्य सृजना के विकास में कवि व्यक्तित्व के पूर्ण विलयन या निर्व्यक्तिकता को पूर्णतः अनिवाय मानते हैं । इस सम्बन्ध में उनका कथन स्पष्ट है—

The progress of an artist is a continual self sacrifice, a continual extinction of personality "

Selected Essay P 17

वे अतिशय भावुकता और व्यक्तिनिष्ठता को काव्य का विघातक तत्व मानते हैं । आपके अनुसार श्रेष्ठ कवि रचना प्रक्रिया में समय अपना स्व' को निमूल्य कर उस व्यापक समष्टि में मिना देता है । यह सारा कार्य कवि की भावना की सुनीचा वस्था में सहज ही हो जाता है, कवि को कोई चेतन प्रयास नहीं करना पड़ता ।



इलियट ने काव्य में शुद्ध तथा भावना के सतुलित संयोग की भी चर्चा की है। काव्य को वह सवेगों की अभिव्यक्ति न कहकर उनका पुनः सृजन कहता है। आत्माभिव्यक्ति न कहकर उस 'आत्म' का उदात्तीकृत या सशोधित रूप कहता है। अपने वस्तुमूलक प्रतिरूपता (आवजेक्टिव कोरिलेटिव) सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए आपन कहा है कि आत्मगत सवेगों का अधिक से अधिक निरपेक्ष, निर्लिप्त और वस्तुमुखी चित्रण हो। सवेगों का विवरण न देकर उनका अभिनयात्मक चित्रण किया जाय, इससे पाठक की आस्वाद्यनीयता पर कोई कलात्मक प्रभाव नहीं पड़ेगा।

काव्य व्यापार को इलियट चिंतन विशिष्ट या बुद्धि प्रसूत न मानकर रागात्मक वस्तु कहता है—

The fiction is not intellectual, but emotional

Selected Essay P 138

कविता की भाषा के लिए उसने सवेद्यता तथा अप्रस्तुतों विम्बों प्रतीकों आदि की योजना के पीछे युग की जीवित समसामयिकता का आलोक आवश्यक प्रतिपादित किया है। वह अभिव्यक्ति-विद्यान को काव्य के लिए आवश्यक वस्तु मानता है। उसके इस विचार पर फ्रांस के प्रतीकवादियों का गहरा प्रभाव पड़ा है।

अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ—'ह्याट इज क्लासिक' शीर्षक निबंध में उसने महान कलाकार की महत्ता का निर्देशन करते हुए यह स्पष्ट विज्ञापित किया है कि वह देश काल की सम्पूर्ण चेतना का प्रतीक होता है। वर्तमान का उपासक होते हुए भी वह अतीत का ममज्ञ और भविष्य का स्वप्न द्रष्टा होता है। उसके अनुसार महान कृतियों की रचना तभी सम्भव है जबकि एक उन्नत सभ्यता हो समृद्ध भाषा हो और स्वयं कवि या कलाकार उन्नत और सवेदनशील हो।

इस प्रकार वचारिक जगत में इलियट का प्रदेय निश्चित ही मूल्यवान है। मौलिक चिन्तन के क्षेत्र में उसे नव युग का सुकरात' कहा गया है। अग्रजी काव्य में उसके आगमन से एक युगांतर हुआ है। किन्तु हिन्दी के प्रयोगवादीयों ने उसके कृतित्व का ठोसपन ग्रहण न करके 'वेस्टलण्ड' का खोखलापन, दुर्बोधता सदसमयता और अस्पष्ट प्रतीकगमता ही ग्रहण की है।

### अतियथायवाद

अतियथायवाद का जन्म भी अय विचारधाराओं के समान फ्रांस में ही हुआ था। यहाँ के कवि और कलाकारों से प्रभावित होकर इंग्लैंड में भी इसे प्रश्रय दिया गया। इसके उदभव और विकास के कारण पर प्रकाश डालते हुए एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक समीक्षक एफ० एल० लूक्स स लिखा है कि प्रथम महायुद्ध की राजनीतिक तथा सामाजिक चहल—पहल के पश्चात् फ्रांस में लगभग ७० वर्ष से चले आने वाले पलायनवादी और रोमांटिक लेखकों ने अपनी क्षरम सीमा पर पहुँच कर अतियथाय

वाद को जन्म दिया। १९१६ में प्रथम महायुद्ध के काल में दादावाद का जन्म हुआ। इसमें कला तथा जीवन के प्रति पूणत विद्रोह की भावना थी। अपनी व्यक्तिगत कुण्ठाओं और समाज निरपेक्षता के लिए यह बदनाम था। यही प्रवृत्तियाँ जब और अधिक उग्र हुईं तो कुछ व्यक्तियों ने दादावाद का अतिक्रमण करके १९२२ में अति यथाथवाद की उदघोषणा कर ली।

इसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए हवट रीड ने लिखा है कि हीगल के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के द्वारा यह ज्ञात हो जाता है कि जीवन और समाज का विकास किस प्रकार प्रत्येक क्षण होने वाले दो वस्तुओं के परस्पर द्वन्द्व से हो रहा है। इस द्वन्द्वात्मकता को कलायित करना ही अतियथाथवाद है। रीड ने यह भी उदघोषणा की कि द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के सहारे हम एक ओर अतीत की कला के विकास को समझ सकते हैं दूसरी ओर वर्तमान युग की विद्रोहिणी कला की तात्त्विकता भी देख सकते हैं।

अतियथाथवाद परम्परा का विद्रोह करके चलता है और बिगत चार शताब्दियों के साहित्य और कलाजगत् कायों को तो वह सामन्तवाद और पूँजीवाद का प्रतीक कह कर घृणा की दृष्टि से देखता है।

इसकी द्वितीय विशेषता यह है कि यह वाद काय कला को बौद्धिक बना देने का विरोध करता है। काल्पनिक तत्वों की उपस्थिति को अनिवाय प्रतिपादित करने के कारण यह वाद कलाकार को पूणत स्वतन्त्र मानता है। इसका सिद्धान्त वाक्य है कि कवि या कलाकार की भावना धारा पर किसी भी प्रकार का वस्तुगत या शिल्पगत बंधन नहीं लगाया जा सकता। कला को वह कवि की सवेदनाओं और चिन्ताओं का अवरुद्ध प्रकाशन मानता है।

फिलिप सौपोल (Phillipe Saupault) तथा आन्द्रे ब्रेतन (Andre Breton) ने प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड के मनोविश्लेषण का विवचन करते हुए यह उद्घोषित किया कि यदि बिना किसी सोच विचार के स्वगत ( Monologue ) के रूप में लगातार अटूट क्रम में व्यक्ति अपनी सवेदनाओं को शब्द रूप में प्रस्तुत करता जाये तो इस असम्बद्ध शब्द-रचना के द्वारा उसके अवचेतन मस्तिष्क पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। ये शब्द चित्र एक ओर भाव-विश्व के रूप प्रकट होंगे और दूसरी ओर व्यक्ति के अन्त जीवन के सानुकूल हाथे। वस्तुतः यह फ्रायड के समीहन (हिपनाटिज्म) प्रक्रिया की व्याख्या थी। इसी प्रक्रिया के अनुसार १९२१ ई० में अग्रजी में दि मग्नेटिक फील्ड शोधक रचना का प्रकाशन हुआ जिससे प्रेरणा-ग्रहण करके वहाँ अति यथाथवाद का प्रचलन तेजी से हुआ।

फ्रांस में अतियथाथवादी आन्दोलन का सबल अनुभूति बोदलेयर की 'बोवैज' शोधक रचना की अंतिम दो पक्तियों के द्वारा हुई। वैसे यहाँ के सभी **अतीतवादी**

कवि काव्यमेत रिव्या मनार्मो आत्ति अतिथथायवात्नी रचना प्रत्रिया वा प्रथय दवर क ही षते हैं और १८७० ई० से हो यहा इस यान क स्पष्ट सवेत मिल जात है । किन्तु अतिथथायवादी श० का प्रयाग पहन यहा अपीलनियर म प्रभावित होकर किया गया । इसने यह शब्द एक ऐसी वस्तु के लिए प्रयुक्त किया था जो भौतिक यात्रिक तथा साधन गोचर वास्तविकता क ऊपर हो । आद्र जनन इस आंदोलन क परिचालक रहे हैं और उनके सहयोगियो म फिनिप, गुपोल, लुई आरागा जानी ह्यूने रेनब्रबल, ई० मेसस पाल ऐलुबर आदि विरूप रूप म उल्लेखनीय हैं ।

इन लोगो के प्रसार और प्रचार का प्रमुख पत्र नितर स्यार था । सबप्रथम १६१६ ई० म रिवोल्यूशन सुररियलिस्त की स्थापना की गई । यही १६३० म सुरिय-निज्म तथा सर्विस दला रवाल्यूशन के रूप म परिणत हो गया ।

अद्रे व्रतन ने १९२४ तथा १६३० म अपन दो धायणा-पत्रो क द्वारा अतिथथायवाद के मौलिक सिद्धान्तो की उदघोषणा की । उसने सबप्रथम द्वद्वात्मक भौतिकवाद का अनुसरण किया । वह इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण (मटेरियलिस्टिक कंसेप्शन आफ हिस्ट्री) प्रमुख मानता था और सामाजिक जाति की आवश्यकता का प्रतिपादन करता था किन्तु मार्कम ऐंजिल्स का भाति कवल अधिक दष्टि बाध का जीवन विकास का प्रस्थान बिन्दु मानता वह एक जाति मानता था । इस तरह एक ओर वह मार्क्सवाद का समर्थन करता है और दूसरी तरफ उसका विरोध । हून ने भी श्रेतन के विचारो का समर्थन किया है । उसक अनुसार द्वद्वात्मक भौतिकवाद क अनुसरण के द्वारा एक ओर अतिथथायवाद का काय क्रातिकारा कायो के द्वारा सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोण का सामन रखकर बुज्रावग का विरोध करना है और दूसरी ओर जावन क उत्पादन और अनुत्पादन म विश्वास करना है । उसन अतिथथायवाद की अक्षण्डता का भा विज्ञापन किया है कि उसका कोई अश पथक नही किया जा सकता । अपन विभिन्न काय-यापारा को मिलाकर वह एक है और इसी सखिलष्ट स्थिति म उसको महत्ता है । उसन यह भी लिखा है कि लखक क उद्देश्य को ध्यान म रख बिना अतिथथायवादो कविता का रसास्वादन नही किया जा सकता । अतिथथायवाद के लिए-यक्ति और कला अ यो यात्रित है अक्षिप्त है । अपनी सामाजिक मनोवृत्ति के द्वारा अतिथथायवाद मानव की मुक्ति चाहता है और इस काय क लिए अपन समस्त साधनो का प्रयोग करता है ।

इस प्रकार अतिथथायवादी कम्मुनिज्म स प्रभावित हाते भी उसस अपना सब पथक रखत हैं । इन दोनो के परस्पर सम्बन्ध का स्पष्ट करत हुए ज्या पाल साख न लिखा है कि इनका सम्बन्ध कवल बौद्धिक धरातल पर है । अतिथथायवादी स्वत चालित लेखन प्रत्रिया तथा समोहन अवस्था विशय को ही महत्व देकर चलत हैं । उनक अनुसार इसी प्रक्रिया के जवन बन द्वारा मध्यम विकेद्रित हो सरता है ।

अतियथाथवाणी आत्मगत तथा वस्तुगत सभी प्रकार का वस्तुओं को नष्ट करने का प्रयास करता है। जा कुछ है उस मक्का विनाश करके एक महान् शक्ति की ओर अग्रसर होना उनका लक्ष्य है। इनका मत है कि जय जन मरण, सुख दुःख, सत्य मिथ्या भूत-व्रतमा प्रपणीय अप्रेषणीय सभी अपना विरोधी भाव त्याग दगे, सभी मानवता के सभी अनविराधो का उपसंहार होगा। यह स्थिति परम होगी। इसी के लिए सामाजिक क्रान्ति या आशाजित की जाती है। अतियथाथवाद की सामाजिक शक्ति का यही स्वरूप है। प्राचीनता कला मस्कृति जादि के उपादाना के प्रति शक्ति करने उह नष्ट कर्न का नारा मानववाद का भी है किन्तु विनाश के बाद निर्माण की ओर प्रत्यागत है। वगहीन समाज उसके अनुसार आदर्श समाज है। अतियथाथ-वाल इसका कर्न प्रथम विनाशवाता अश ही ग्रहण करना है निर्माण वाला नहीं।

अतियथाथवादी अनुभवा का चतुर्थ आयाम भी कहा जाता है जो मूलतः मानविक विवृतियों में सम्बन्धित वस्तु है। १९२८ ई० में अतियथाथवादियों ने आर्मानि चारकोत के उपाद सम्प्रदायी ज वेपण के प्रकाशन को पचासवीं जयन्ती मनाकर उसे अपन गुरु का एक मर्मथ लेखक स्वीकार किया था।

१९३६ ई० लंदन में अतियथाथवाणी चित्रा की एक प्रदर्शनी की गई। इसका परिचय-पत्र संप्रस्तुत करते हुए हबट रीड ने कहा कि 'इतनी अधिक अपरिचित विशेषताओं से युक्त आत्मालन का महत्व समझने में असमर्थ समाचार पत्रों ने मजाक घणा और अपमान का सेना चकर इसका सामना किया। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस समय तक अतियथाथवादो विचारधारा का अभाव विश्व व्यापी हो गया था और उसने कला की अन्य शाखाओं को (चित्रादि को) प्रभावित कर लिया था। इन सभी माध्यमों से अतियथाथवाणी कलाकार स्वतः चालित लेखन शली का सहारा लेकर अपने मन की अवस्थित और असंगत कल्पनाओं को स्वप्ना दिवाम्बुजो तथा फोटेसीम का यथावत रूप में प्रकट करना अपना धर्म मानने लग्ये।

अतियथाथवाणी कलाओं को मूलतः स्वप्न से सम्बन्धित किया गया है और स्वप्न को प्रकृति की अपरिहाय जावाज कहा गया है जिस पर व्यक्ति की इच्छा अनिच्छा कोई प्रभाव नहीं डाल सकती। यह भी कहा गया कि व्यक्ति की मूल चेतना जीव वास्तविकता का आवाम केंद्र स्वप्न ही है उही के द्वारा हम उसके व्यक्तित्व और कृत्तित्व की यथायथा को गमन संशत हैं। निगूड भावो और सवत्नाओं की यजना यक्ति के केवल स्वप्न ही कर सकत है। हबट रीड ने कला और स्वप्न की प्रशिक्षा को एक कहा और परस्पर तुलना करना भी कठिन माना।

उसने यह भी माना कि यदि हम अपने स्वप्न दूसरों से कह सकें तो हम नगातार रूप से ओतकर कविता लिखा सकत हैं। यह वक्त य रीड ने अपने मिथ, ड्रीम एण्ड पोयम्स शीफा निबन्ध में प्रस्तुत किया गया है। इसी बात को कुछ दूसरे

शब्दों में जागीं हूँ ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है। हम जानते हैं कि अतिथथायवादी कृतिरूप पूर्णतः विचारों के स्वभावानुसार पर आश्रित है और आत्मा स्वयं ध्वनि अवचनन की आवाज गुंती है। यदि या कलाकार इस बिना किसी तक का आधा पहचान हुए उस का त्याग उतार देता है। हूँ ने का यह कथन रीड द्वारा मयान्ति मूररिपलिन नामक कृति में अपने एक निबंध में प्रस्तुत किया गया है।

अतिथथायवादी उत्तम काव्य रचना के लिए नद्रा (नेम) की अवस्था का छोड़कर और कोई माननिक अवस्था उपयुक्त नहीं मानते। रीड ने यह स्वाकार दिया है कि उसकी मभा रचनाओं में नद्रा की महज अवस्था में ही रची गई हैं।

अतिथथायवादी यह मौलिक रूप से मानकर चलते हैं कि व्यक्ति की प्राकृतिक व्यापकताओं किसी भी प्रकार पाप से सम्बन्धित नहीं हैं। उनका दमन करना ही विकृति का कारण है। इसीलिए उनका कथन है कि व्यक्ति की आन्तिक और मौलिक प्रवृत्तियों के प्राधान्य पर कोई ध्यान न लगाया जाय। मौलिक कृतियाँ स्वयं ही प्रकाशित होकर, (एक दिन जायगा अथवा हाकर) नष्ट हो जायगी। इसी आधार पर नतिक मायताओं के एकदम विच्छेद हैं। उनका यह कथन विश्वास है कि आधुनिक युग में नतिकता एकलक घाघना वस्तु है।

अतिथथायवादी कविता की प्रयागात्मक शक्ति पर भी अमित का दता है और वह ध्वनि के किसी भी रूप को तब तक विकृत नहीं मानता जब तक कि यह कलाकार के आत्म प्रकाशन में बाधक न हो। आत्म प्रकाशन से तात्पर्य यहाँ कलाकार के व्यक्तित्व में निहित आन्तविरोधों के स्थापन से है। इन आन्तविरोधों का ही यथायत्न चित्रण अतिथथायवादी की मौलिक शक्त है। इन आन्तविरोधों का सामन्तक्य कलाकार अपने कल्पना लोक में करता है। इस तरह अतिथथायवादी में एकात्मक वास्तविक पक्षा की प्रकृति हो जाती है। इस काव्य की मयप्रता के लिए वह प्रचलित मिथ्य का भी सहारा लेता है जो मृज्ज नय तथा अभिव्यजना में साधक होती है। यही कारण है कि अतिथथायवादी काव्य में स्थानीय अवलोकन मालाभा (मिथ्य) की प्रचुरता मिलती है।

अतिथथायवादी को ह्वट रीड ने कला के क्षेत्र में रोमांटिक सिद्धांत कहा है। डेवीज इसका पूरा समर्थन करते हैं। डेवीज का यह भी कथन है कि वस्तुतः यह आन्दोलन इंग्लैंड में फ्रांस से न आकर यही जन्मा और विकसित हुआ है। हूँ साइकल डेवीज का इस प्रसंग में स्पष्ट कथन है कि इंग्लैंड का १९ वीं शताब्दी का स्वच्छन्दतावाद ही बीसवीं शताब्दी की परिस्थितियों और मन स्थितियों के अनुसार अतिथथायवादी में ढल गया। उन्होंने लिखा है कि अतिथथायवादी ऐतिहासिक शक्तियों द्वारा स्वभावतः एक अनिनायरूपेण यही पर उदभूत हुआ। यह प्रेरित नहीं हुआ किया गया है। यह सहसा किसी दबी प्रकाश से उत्पन्न नहीं हुआ वरन अथ सभी

मूल्यवान् जादोलनो की भाँति इन समस्याओं के एक निश्चित स्पष्टीकरणों के द्वारा जन्मा है जो हम ऐतिहासिक क्रम से उभर सञ्चति द्वारा प्राप्त हुई हैं, जिसमें हम पैदा हुए हैं 'हिन्दी में प्रयोगवादी भी अपने को बहुत कुछ अप्रभावित कहकर यही की परिस्थितियों से उदभूत रोमांटिक काव्य चेतना का अग्रदूत कहते हैं। किंतु जिस प्रकार इंग्लैंड में यह विचारधारा फ्रेडरिक सॉर, तद्वत हिन्दी में भी यह वही की वस्तु है। अंग्रेजी में इसे पहले सुपर रियलिज्म कहा गया किन्तु जो शब्द प्रचलित हुआ वह फ्रांसीसी 'सुरारयलिज्म ही है, यद्यपि अतियथायवादी आन्दोलन की प्रायः सभी विशेषताएँ 'सुपर रियलिज्म' पद के द्वारा ही व्यक्त होती हैं। मूलतः प्रेरणा फ्रांस की ही रही है इंग्लैंड की कतिपय परिस्थितियों का समान वातावरण पाकर वे वहाँ पलनविन जल्दी हो गईं। पर भारत में जिस 'नकनवा' पर अतियथायवाद का गहरा प्रभाव पड़ा उसे पलनविन होने के लिए अनुकूल परिस्थितियों का अभाव ही रहा है इसीलिए उसमें क्षणिकता रही है। हिन्दी काव्य में यह एक उमाद था जो आधी की भँति आया और बसा ही चलना बना।

अतियथायवाद की दुबलताओं को स्पष्ट करने के पूर्व हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे अनियथायवाद का सिद्धांत और व्यवहार दोनों ही रूपों में देखा जा सके। जो कविता में यथा उद्धृत कर रहा हूँ उसे जाफ़े ने अपनी टोड आफ माइन पोयट्री में उद्धृत की है। कविता इस प्रकार है—

'There is an explosion of genaniums  
in the ballroom of the hate'  
There is an extremely unpleasant odour  
of decaying meat  
arising from the depetalled flower  
growing out of her ear  
her arms are like pieces of sand paper  
or wings of leprous birds in 1915  
and where she sings her hair stands on end  
and lights itself with a mill on  
Little lamps like glow-worms  
You must always write the last  
two letters of her christian name  
Upside down with a blew pencil'  
—Gascoynes—And the  
Seventh Dream in the Dream of 1915 "

इस कविता में शुद्ध मानसिक स्वचालित (प्योत्र साइबिक आटोमेटिज्म) शाली का प्रयोग किया गया है और कवि का उद्देश्य है अचेतन में छिपी हुई विवृतियों को प्रस्तुत करना तथा जगम्बद्धत विम्ब योजना द्वारा पाठकों को आतंकित करना।

इस प्रकार की रचनाओं का इतना ही मगन पहले बड़ा विरोध किया गया। विरोधकर्ता ये प्रीस्टले। आरम्भिक अवस्था में अनिश्चयवादियों रचनाओं का यह बणा उपेक्षा आदि की दृष्टि से दया गया जिसकी चर्चा स्वयं ह्यूट रीडन की है। उनके कथन को हम पहले उद्धृत कर आते हैं। स्वचालित लेखन, लोक कथाओं तथा प्रचलित अवधानों का सहारा लेने का कारण अतिशयवादियों रचनाएँ स्वयं में अवस्थित हो गई हैं। उन्हें पढ़कर पाठक का हृत्प पर काइ समाहित प्रभाव नहीं पड़ता। किसी विशिष्ट और अतिवृत्तपूर्ण सवर्णा भी जागत नहीं होती। विम्ब योजना जननी क्षण स्थायी है कि उनमें किसी मृत वस्तु की कल्पना जगम्भव नहीं ता कष्ट साध्य और बौद्धिक अवश्य हा जाती है। डाली नामत न अपनी विम्ब योजना की विक्षेपताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है कि मैं अपनी कल्पना में एक सरगात्मक विम्ब उत्पन्न देता हूँ (यह विम्ब अतिसचेतना से सवर्ग की तीव्रता का कारण उठता है) तब उम विवक पर परछता हूँ। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरा, तीसरा, विम्ब बनना जीर मिटता जाता है। मेरी रचनाओं में छट छट विम्ब किसी एक के द्वय विम्ब के चारों ओर नहीं घूमते अपितु एक के बाद दूसरे विम्ब में परिणत होत रहते हैं। एक विम्ब और दूसरे विम्ब में निर्माण पुनर्निर्माण और विनाश तथा विरोध का सम्बन्ध होता है। विम्ब योजना की यह निमाणात्मक प्रक्रिया अस्पष्टता और अव्यवस्था की जननी सिद्ध हुई है। इस प्रकार अतिशयवादियों ने कला के क्षेत्र में अराजकता को प्रथम दिया है। इसी कारण य न तो लोकप्रियता प्राप्त कर सके है और न समाज में श्रद्धा सम्मान और स्थायित्व ही अर्जित कर सकें हैं। इनके विद्व और सवेदनार्थ अस्पष्ट और दुर्बोध होने के कारण साधारणीकरण का स्तर भी प्राप्त नहीं कर सकी है।

अतिशयवादियों मस्तिष्क के बाह्य प्रकाशित भाग का अयवस्था का ठोस रूप कहते हैं। इस प्रकार मूलतः यह आन्दोलन काव्य में जगम्बद्धता का विरोध करके उनके स्थान पर अयवस्था उत्पन्न करने वाला आन्दोलन रहा है। प्राचीन और परम्परागत वस्तुओं के उन्मूलन का भी अतिशयवादियों द्वारा लगाकर चल है। यह भी उनका विद्रोही कार्य है। समाज के भाष्य नियमों, रीतियों, नीतियों और नैतिक प्रतिमानों में भी इन्हें कोई आस्था नहीं यह तथ्य भी उनकी अराजकतावादी मनावृत्ति का द्योतक है।

कविता का स्वप्न से घनिष्ठ सम्बन्ध जोड़ना भी अतिशयवृत्तिपूर्ण कार्य है। ईषत मात्रा में भले ही स्वप्न काय प्रेरणा का कारण हो जाय पर यह एक साविक्रक सत्य नहीं है। कालरिज को 'कुवना छा की रचना करने के लिए प्रेरणा स्वप्न लोक

स मिली थी पर सभी कवि तो स्वप्न से ही प्रेरणायें ग्रहण नहीं करते। इसी प्रकार तन्द्रा की अवस्था विशेष म की गई रचनायें कवि की वैयक्तिक मन स्थितियों की ही अभिव्यक्ति करेगी, सामाजिक दृष्टि से वे स्वस्थ और उदात्त हों, यह आवश्यक नहीं है। मूलतः यह अतिव्यक्तिक प्रयास है। अतिव्यथावादी आंदोलन एक गुट तक ही सीमित रहा है और अग्रजी के अतिव्यथावादी कवियों की रचनाएँ 'द न्यू एपोकैलिप्स' (The New Apocalypse) के नाम से १८३९ तथा १९४१ में उसी प्रकार से आई हैं जिस प्रकार हिन्दी में प्रमाणवादी कविता का 'तार सप्तक' आया है।

### अस्तित्ववाद

अस्तित्ववाद यूरोपीय जगत की एक अत्याधुनिक साहित्यिक प्रवृत्ति और दार्शनिक विचारधारा है। इसके आरम्भिक स्रोत हम जर्मन दार्शनिक हेसरल और हेडेगर तथा डनिश विकगाड (१८१३-१८५५ ई०) की निम्नना धारा में दिखाई देते हैं। साहित्यिक क्षेत्र में सबसे पहले इसका अवतरण फ्रांस में ज्या पाल सात्र (१९०५ ई०) ने किया। १९४३ ई० के आस-पास अस्तित्ववाद एक आन्दोलन के रूप में प्रचलित हुआ।

यह भी एक भौतिक और निरीश्वरवादी सिद्धान्त है। इसके अनुसार मानव जीवन निरुपाय अवश और निरर्थक है। उमम यदि कोई वस्तु मूल्यवान है तो वह क्षण है। प्रत्येक क्षण ही अतुलनीय है। जब मनुष्य पूर्णतः विवश और यत्नहीन हो जाता है तभी उसका जीवन में वास्तविक अस्तित्व का बोध प्रारम्भ होता है और इस निरुपायता को नष्ट करने के लिए अस्तित्ववाद मानवीय स्वतंत्रता का प्रबल समर्थन करता है।

इसका सिद्धान्त वाक्य है 'Existence precedes essence' अर्थात् अस्तित्व स्थिति तत्त्व के पूर्व रहता है। यहाँ अस्तित्व से तात्पर्य मानवीय क्रम समूह है जो निरुपायता की स्थिति के बोधक हैं और तत्त्व उसकी मौलिक प्रकृति के बोध के लिए आया है। अस्तित्ववाद की ओर भी कई परिभाषायें प्रस्तुत की गई हैं। यहाँ हम उनमें से दो तीन उद्धृत कर रहे हैं ताकि इस वाक्य का मूल स्वरूप अच्छी तरह से समझ लिया जा सके।

जुलियन बन्द्रा के अनुसार अस्तित्ववाद भाव तथा विचार के प्रति जीवन का विद्रोह है। एमानुएल मीनियर की दृष्टि से भावों और वस्तुओं के अतिवादी दृष्टान्त के विरोध में मानवीय दृष्टान्त ही अस्तित्ववाद है। एलेन अस्तित्ववाद को परम्परागत दृष्टान्त की दृष्टि न कहकर अभिन्नता की दृष्टि कहता है। इसका आशय यह है कि अस्तित्ववाद में जीवन की समस्याओं पर विचार भुक्त-भोगियों की आरंभ से होता है।

अस्तित्ववादी यह मान कर चलते हैं कि व्यक्ति के ~~समूह~~ उसके जीवन की



सबसे बड़ी चुनौती मृत्यु है। जन्म के साथ उमरवा भी जन्म हो जाता है। मनुष्य उसका बुद्धि भा नहीं कर सकता। मनुष्य उसके सम्मुख लचर और प्रयामहीन है अतएव मृत्यु और जन्म के बीच के अल्प काल में ही वह अपने जीवन को एक पूरा मूल्य प्रदान करने की चेष्टा करता है। मृत्यु बंध आ जाय इसका भी तो कोई टिकाना नहीं अतएव जीवन के प्रत्येक क्षण को चरम मानकर उसका आस्वादा करना उसका सलक्ष्य हो जाता है।

जीवन को पूरा मूल्य प्रदान क प्रश्न का लेकर अस्तित्ववादी २-३ भागो में विभक्त हो गये हैं। एक वग है जो ईश्वर में निष्ठ रखने वाला है और मानवीय जीवन को उसके साथ एकाकार करके जीवन की चरम लक्ष्यता प्रतिपादित करता है। विकगाड, यास्पस आदि इसी वग के प्रतिनिधि अस्तित्ववादी हैं। उनका इस मत को त्रिषिचयन अस्तित्ववाद कहा जाता है। 'Existentialism from within' में एलेन ने इसकी विस्तृत याख्या की है।

दूसरा वग ईश्वर में आस्था नहीं रखता। वह पूणत निरीश्वरवादी है। इसका प्रतिनिधित्व सात्र करते हैं। इसकी याख्या उन्होंने ह्याट इज लिटरेचर में ता की ही है, उनका समस्त साहित्य इसका भाष्य है।

अस्तित्ववाद का एक पक्ष वह है जो राजनीति से सम्बद्ध रहता है। स्वयं सात्र अस्तित्ववाद के राजनीतिक मन्त्र के प्रति स्पष्ट नहीं हैं किंतु इसकी विस्तृत याख्या अल्बर्ट कामुअज़ ने अपनी सुख्यात कृति ल होमे रिवास्त में प्रस्तुत की है।

अस्तित्ववाद का स्वरूप समझने के लिए यहाँ हम संक्षेप में सात्र के साहित्यिक काय पर एक दृष्टिपात करेंगे। वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उनके प्रबुद्ध व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण उन्हें १९६४ का नोबिल पुरस्कार भी दिया गया किंतु इसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। एक अच्छे उपन्यासकार के साथ-साथ वे कहानीकार और नाटककार भी हैं। मौलिक रूप से वे प्रभावान चिंतक तो हैं ही। कुछ समय तक सम्पादक और अध्यापन काय भी करते रहे हैं। आपके नाटको में इन कमरा 'द पलाइज' रिसपेक्टिविल प्रास्टीटूट, 'लूसीफर एण्ड लि लाड इन लि मेस कीन जादि विशेष प्रसिद्ध हैं। दि रोड टू फ्रीडम आपकी प्रसिद्ध उपन्यास माला है। इसमें आपने १९३८ से ६० तक की फ्रांस की पतितावस्था का चित्रण किया है। 'इ-टमेसी आपकी बहुचर्चित कहानियों का संग्रह है।

आपके साहित्य में जितने भी पात्र आये हैं वे सभी लगभग एकाकी निष्प्रिय जड़ हारे शके उदास-हताश हैं। सात्र ने मानव प्रकृति को मौलिक, आदिम और पार्थिव रूप में अंकित किया है। आपकी शली यथायवादी है जो प्रवृत्तवादियों से मिलती जुलती है। प्रकृत शला का अनुसरण करने के कारण सात्र अपने साहित्य में

यौन सम्बन्ध का खुला चित्रण किया है। इस क्षत्र में वे मनुष्य और पशु के बीच कोई अंतर नहीं रखते। आपके लिए य सारी मूल प्रवृत्तिया अतियथायवादी कवियों की तरह ही जीवन की प्रकृत आवश्यकतायें हैं जिन पर किसी प्रकार का नियमन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सात्र पात्रों के चेतन नहीं अचेतन मन का चित्रण क्रम बद्ध रूप से करत हैं। यह क्रमबद्धता इतनी विशुद्धल धीरे अवस्थित होती है कि पाठक उसे समझ ही नहीं पाता। वही एक वाक्य परिस से सम्बन्धित है तो दूसरा म्यूनिय से तीसरा जय किसी स्थान से। उनके कथन कथा पुँजो व वृत्ताकार होत हैं। चित्रपट या प्लेशवक शिल्प योजना और जेम उदाइस के अंतकथन की पद्धति का उन पर विशय प्रभाव पडा है। आप निरंतर उपमाओ से खचित चित्रात्मक गद्य भाषा का प्रयोग करत है। यहा उदाहरण रूप में आपकी भाषा का कुछ अनुवाद रूप दिया जा रहा है—

ऊपर निजन स्टेशन एक बडे श्यामल बुलबुले के समान था, धूल और घुए स भरा शराब और पसीने की गंध जीर चमकती रल की पटरिया से भरा।'

यह यथाथ है कि जिस चित्रफलक को लेकर सात्र चले है वह विस्तृत और बहुरंगी होता है उदामी और निराशा की उसमें गहरी नालिमा रहती है। वस्तुत दो महायुद्धों के बीच के जीवन का वे अपन साहित्य में रूपायित करन की चेष्टा करत हैं।

आपका सभी पात्र शतरज के मुहरो की भाँति ही शिकजी में प्रस्त हैं जिनका बाइ स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। इटांमसी शीपक कहानी की नायिका इसी प्रकार की है। आपका पात्र मध्य आपके सघपमय जीवन का पूरा पूरा प्रतिरूप माना गया है। सात्र की ही तरह उसका भी ज म १९०५ में पेरिस में होता है। सात्र की ही भाँति उसका भी माता पिता का सीमा है और शिक्षा पीक्षा भी पेरिस में ही होती है। सात्र की तरह ही वह भी वही पर दशन का प्रोफेसर नियुक्त हाता है और द्वितीय महायुद्ध के आतप से तपकर वह बाहर निकलता है। मध्य सात्र की ही भाँति इधर उधर भटकन वाता असहाम दुख और उदासी के वातावरण से भरपूर है। भूलो, अटकावा, भटकाओ के रहते हुए भी सात्र अपने जीवन में प्रगतिशील शक्तियों का साथ त है किंतु मानवीय जीवन जीर समाज का तटस्थ चित्रण होने के कारण सात्र की कृतिया में विचित्र अवसाद और असहायता का चित्रण मिलता है। स्वयं मध्य अनिश्चित अतद्बद्धमय अधकचरा है। उसका आधा जीवन यो ही बीत जाता है और अमानवता के अनरु रोगों से वह उत्पीडित है। वह स्वयं सोचता है कि वह मनुष्य के समान दिव्यता है या नहीं? यह अवसाद की चरम सीमा है। जावन के विषय में सात्र इटीमैसी कहाना में अपन विचार प्रगट करत हुए कहता है 'कि बाइ तुम्हें बहा से जाती है। यही जीवन है। हम न समझत हैं न निणय दे सकते हैं। केवल वह सक्त है।'

सबसे बड़ी चुनौती मृत्यु है। जन्म के साथ उसका भी जन्म हो जाता है। मनुष्य उसका कुछ भी नहीं कर सकता। मनुष्य उसके सम्मुख लचर और प्रयासहीन है अतएव मृत्यु और जन्म के बीच के अल्प काल में ही वह अपने जीवन को एक पूरा मूल्य प्रदान करने की चेष्टा करता है। मृत्यु बंधा जाय, इसका भी ता कोइ ठिकाना नहीं, अतएव जीवन के प्रत्येक क्षण को चरम मानकर उसका आस्वादन करना उसका सन्ध्य हो जाता है।

जीवन का पूरा मूल्य प्रदान के प्रश्न को लेकर अस्तित्ववादी २-३ भाग में विभक्त हो गये हैं। एक वग है जो ईश्वर में निष्ठ रहने वाला है और मानवीय जीवन को उसके साथ एकाकार करके जीवन की चरम लक्ष्यना प्रतिपादन करता है। किंगगाड यास्पस आदि इसी वग के प्रतिनिधि अस्तित्ववादी हैं। उनके इस मत की त्रिचिन्तन अस्तित्ववाद कहा जाता है। Existentialism from within' में एनेन ने इसकी विस्तृत व्याख्या की है।

दूसरा वग ईश्वर में आस्था नहीं रखता। वह पूर्णतः निरीश्वरवादी है। इसका प्रतिनिधित्व सात्र करते हैं। इसका व्याख्या उन्होंने ह्याट इज लिटरेचर में ता की ही है, उनका समस्त साहित्य इसका भाष्य है।

अस्तित्ववाद का एक पक्ष वह है जो राजनीति में सम्बद्ध रहता है। स्वयं सात्र अस्तित्ववाद के राजनीतिक मत में के प्रति स्पष्ट नहीं हैं किन्तु इसकी विस्तृत व्याख्या अल्बर्ट केमुअरु ने अपनी सुख्यात कृति ल होमे रिवाल्ते में प्रस्तुत की है।

अस्तित्ववाद का स्वरूप समझने के लिए यहाँ हम सन्धेप में सात्र के साहित्यिक वाय पर एक दृष्टिपात करेंगे। वे एक बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उनके प्रबुद्ध व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण उन्हें १९६४ का नाबिल पुरस्कार भी दिया गया किन्तु इसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया। एक अच्छे उपन्यासकार के साथ-साथ वे कहानीकार और नाटककार भी हैं। मौलिक रूप से वे प्रभावान चिंतक तो हैं ही। कुछ समय तक सम्पादक और अध्यापन कार्य भी करते रहे हैं। आपके हाटको में इन कीमती, 'द फ्लाइज' रिसेप्टेबिल' प्रास्टीटूट, 'लूसीफर एण्ड लि लाड इन दि मेस कीन आदि विशय प्रसिद्ध हैं। दि रोड टू फ्रीडम' आपकी प्रसिद्ध उपन्यास माला है। इसमें आपने १९३८ से ६० तक की फ्रांस की पतितावस्था का चित्रण किया है। इटमेसी आपकी बहुचर्चित कहानियों का संग्रह है।

आपके साहित्य में जितने भी पात्र आये हैं वे सभी लगभग एकाकी, निष्क्रिय जड़ हारथक, उदास-हताश हैं। सात्र न मानव प्रकृति को मौलिक, आदिम और पार्श्विक रूप में अंकित किया है। आपकी शब्दी यथायवादी है जो प्रकृतवादियों से मिलती जुलती है। प्रकृत शब्दी का अनुसरण करने के कारण सात्र अपने साहित्य में

यौन सम्बन्ध का खुला चित्रण किया है। इस दल में वे मनुष्य और पशु के बीच कोई अंतर नहीं रखते। आपके लिए ये सारी मूल प्रवृत्तियाँ अतिथयाथवाणी कवियों की तरह ही जीवन की प्रकृत आवश्यकतायें हैं जिन पर किसी प्रकार का नियमन नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार सात्र पात्रों के चेतन नहीं अचेतन मन का चित्रण भ्रम बद्ध रूप से करते हैं। यह क्रमबद्धता इतनी विशृङ्खल और अव्यवस्थित होती है कि पाठक उसे समझ ही नहीं पाता। कहीं एक वाक्य पेरिस से सम्बन्धित है तो दूसरा म्यूनिख से, तीसरा जय किसी स्थान से। उनके कथन कथा पुजा के बर्ताकार होते हैं। चित्रपट या फ्लेशवेज शिल्प योजना और जेम ज्वाइम के अतकथन की पद्धति का उन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। आप निरंतर उपमाओं से छचित चित्कारमक गद्य भाषा का प्रयोग करते हैं। यहाँ उदाहरण रूप में आपकी भाषा का कुछ अनुवाद रूप दिया जा रहा है—

ऊपर निजन स्टेशन एक बड़े श्यामल बुलबुले के समान था, धूल और धुएँ से भरा, शराब और पसीन की गंध और चमकती रेल की पटरियों से भरा।'

यह यथाथ है कि जिस चित्रकर्ता को लेकर सात्र चल हैं वह विस्तृत और बहुगुणा होता है उदासी और निराशा की उमम गहरी नीलिमा रहती है। वस्तुतः दो महायुद्धों के बीच के जीवन का वे अपन साहित्य में रूपामित करने की चेष्टा करते हैं।

आपके सभी पात्र शतरज के मुहुरों की भाँति ही शिकजी में ग्रस्त हैं जिनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हाता। इटाभसी शीपक कहानी की नायिका इसी प्रकार की है। आपका पात्र मीथ्यू आपके सघनमय जीवन का पूरा पूरा प्रतिरूप माना गया है। सात्र की ही तरह उसका भी जन्म १६०५ में पेरिस में होता है। सात्र की ही भाँति उसका भी माना पिता फ्रांसीसी है और शिक्षा भी पेरिस में ही होती है। सात्र की तरह ही वह भी वहीं पर दर्शन का प्रोफेसर नियुक्त होता है और द्वितीय महायुद्ध के आतप से तपकर वह बाहर निकलता है। मीथ्यू सात्र की ही भाँति इधर उधर भटकने वाला, असहाय दुबल और उदासा के वातावरण से भरपूर है। भूला, अटकावा भटकाओं के रहते हुए भासात्र अपने जीवन में प्रगतिशील शक्तियों का साथ दत्त हैं किन्तु मानवीय जावन और समाज का तटस्थ चित्रण हान के कारण सात्र की वृत्तियाँ में विचित्र अवसाद और असहायता का चित्रण मिलता है। स्वयं मीथ्यू अनिश्चित अतद्वद्धमय अधकचरा है। उसका आधा जीवन मोही बीत जाता है और अमानवता का अनन्य रोगो से वह उतरीडित है। वह स्वयं सोचता है कि वह मनुष्य के समान लिखता है या नहीं? यह अवसाद की चरम सीमा है। जीवन के क्षिप्य में सात्र 'इटीमैसी' कहानी में अपन विचार प्रगट करते हुए कहता है कि वास्तुमें वडा से जाती है। यही जावन है। हम न समझते हैं न निणय दे सकते हैं। केवल वह

एक प्रकार का वस्तुमानवीय शक्ति का दुर्जन करत है, उक्त न  
 निराले है। व्यक्ति का भाग्यमाना यज्ञाने है। मध्यम न पत्रायन मिष्टान्त है।  
 की इमक कथा लना आ। आण उन्नीधन कलाकार का रूप म प्रगट न ह  
 आरिषो, विद्वानिया जीर जीवन का दुर्जनताओ का कलाकार है। आन्तिय एव  
 समीक्षक ने उक्त साहित्य का परिष्कार का परिष्कार कहा है। एका साहि  
 जान की प्रेरणा न मिलकर उसका विरक्त की भावनाओं का जागति हो। य  
 नाम पर जीवन की विरूपता का यत् विवर्ण साहित्य का विरक्त लक्षण नही  
 सक्ता। अस्तित्थवाए का इमी आधार पर अनक समीक्षकों न विराध किया

---

